जनवरी, 2014

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
जुगल किशोर

महत्वपूर्ण निर्णय

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 149 – बीमाकर्ता का दायित्व – पालिसी की शर्त के अतिक्रमण की प्रतिरक्षा – बीमा पालिसी की किसी शर्त का अतिक्रमण किए जाने पर भी बीमाकर्ता पर-व्यक्ति को प्रतिकर संदत्त करने संबंधी अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता क्योंकि पालिसी की शर्त का अतिक्रमण किए जाने पर बीमाकर्ता कतिपय परिस्थितियों में पर-व्यक्ति को संदत्त की गई प्रतिकर की रकम बीमाकृत व्यक्ति से वसूल कर सकता है ।

एस. अय्यपन बनाम **मैसर्स यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और एक अन्य** 110

संसद् के अधिनियम

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (20) क्रमश:

पृष्ठ संख्या 1 – 148 **[2014] 1 उम. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – जनवरी, 2014 [पृष्ठ संख्या 1 – 148]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

जनवरी, 2014

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
उत्तराखंड राज्य **बनाम** योगेन्द्र नाथ अरोड़ा	44
एस. अय्यपन **बनाम** मैसर्स यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और एक अन्य	110
कन्हैया लाल **बनाम** राजस्थान राज्य	66
कमल जोरा **बनाम** उत्तराखंड राज्य और एक अन्य	135
जॉयदेब पात्र और अन्य **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य	19
पांडिचेरी खादी और ग्राम उद्योग बोर्ड और अन्य **बनाम** के. अरूकिया राड्जा और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 25)	
प्रेम कौर **बनाम** पंजाब राज्य और अन्य	95
मनुभाई रतिलाल पटेल, द्वारा उषाबेन **बनाम** गुजरात राज्य और अन्य	1
मुख्य कार्यपालक अधिकारी, पांडिचेरी खादी और ग्राम उद्योग बोर्ड और एक अन्य **बनाम** के. अरूकिया राड्जा और अन्य	25
राजस्थान राज्य **बनाम** बाबू लाल (देखिए – पृष्ठ संख्या 66)	
राजस्थान राज्य **बनाम** मांगी लाल (देखिए – पृष्ठ संख्या 66)	
राजस्थान राज्य **बनाम** मोहन लाल और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 66)	
राजस्थान राज्य **बनाम** रेवदी लाल और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 66)	
सूगुरु सुब्रह्मण्यम **बनाम** आंध्र प्रदेश राज्य	53

संसद् के अधिनियम

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	(1) – (20)

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

उत्तर प्रदेश नगर निगम अधिनियम, 1959 (1959 का 2)

– धारा 8-कक – नगरपालिक परिषद् का विघटन – नगरपालिक परिषद् को विघटन से पूर्व सुनवाई का अवसर दिया जाना – चूंकि राज्य सरकार ने नगरपालिक परिषद् का विघटन करके नगर निगम का गठन करने से पूर्व नगरपालिक परिषद् के अध्यक्ष, पार्षदों और साधारण जनता से आक्षेप आमंत्रित करते हुए लोक सूचना जारी की थी और कई पार्षदों की व्यक्तिगत रूप से सुनवाई भी की गई थी इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि उन सभी व्यक्तियों को जिन पर नगरपालिक परिषद् के विघटन से प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना थी, वास्तव में सुनवाई का कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया था तथा नगरपालिक परिषद् का विघटन करने वाली अधिसूचना को भी नैसर्गिक न्याय के नियमों का अतिक्रमण करने वाली नहीं कहा जा सकता है ।

कमल जोरा बनाम **उत्तराखंड राज्य और एक अन्य** 135

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 154 – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट – विलंब – संदिग्धता – विलंब से अभियोजन पक्षकथन में कमी हुई है या नहीं और यह संदिग्ध है या नहीं, इसकी संवीक्षा तथ्य और परिस्थितियों के आधार पर विलंब को स्पष्ट करते हुए की जानी चाहिए और न्यायालय को अत्यंत सावधानी और सतर्कता से काम लेना चाहिए ताकि विलंब के संबंध में न्यायालय का समाधान हो सके ।

कन्हैया लाल बनाम **राजस्थान राज्य** 66

पृष्ठ संख्या

– धारा 167 और 309 तथा धारा 155, 156, 157 और 173 – अभियुक्त का रिमांड पर भेजा जाना – अन्वेषण पर रोक आदेश – विचारण न्यायालय की शक्ति – अन्वेषण न तो जांच है और न ही विचारण, अन्वेषण का कार्य पुलिस के एक मात्र कार्यक्षेत्र के भीतर आता है और इस पर मजिस्ट्रेट का कोई नियंत्रण नहीं होता, इसी प्रकार अभियुक्त को न्यायिक अभिरक्षा में भेजना एक न्यायिक कार्य है जो अन्वेषण की परिधि के भीतर नहीं आता, अतः, अभियुक्त को न्यायिक अभिरक्षा में भेजने संबंधी मजिस्ट्रेट का आदेश, अन्वेषण पर लगाए गए रोक आदेश द्वारा निष्प्रभावी नहीं हो सकता ।

मनुभाई रतिलाल पटेल, द्वारा उषाबेन बनाम **गुजरात राज्य और अन्य** 1

– धारा 354 – निर्णय – कारणों का अभाव – न्यायालय द्वारा विवेक का प्रयोग न किया जाना – निर्णय से यह दर्शित होना चाहिए कि वह विवेक का प्रयोग किए जाने और साक्ष्य का समुचित मूल्यांकन किए जाने के परिणामस्वरूप दिया गया है, अन्यथा ऐसा निर्णय विधिमान्य नहीं होगा ।

प्रेम कौर बनाम **पंजाब राज्य और अन्य** 95

– धारा 378 – दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील और दोषसिद्धि के विरुद्ध की गई अपील में अंतर – बहुत कम किंतु स्पष्ट – निर्दोषिता की उपधारणा का दोषमुक्ति के कारण प्रबलित होना – दोषसिद्धि के विरुद्ध की गई अपील और दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई अपील के बीच कोई भी सारभूत अंतर नहीं है सिवाय इसके कि जब दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई अपील पर विचार किया जाए तब न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि अभियुक्त के पक्ष में निर्दोषिता की उपधारणा उसकी दोषमुक्ति द्वारा प्रबलित होती है और

पृष्ठ संख्या

यदि उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत युक्तियुक्त है और उसके द्वारा निकाले गए निष्कर्ष पूर्णतया अभिलेख पर प्रस्तुत की गई सामग्री के आधार पर हैं तब दोषमुक्ति के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए ।

कन्हैया लाल बनाम **राजस्थान राज्य** 66

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 302 – हत्या – मृत्यु का कारण बताने में अभियुक्त की असफलता – अभियुक्तों पर भोजन में विष मिलाने का आरोप – रासायनिक परीक्षण की रिपोर्ट से विष दिया जाना साबित न होना – यदि अभियोजन पक्ष यह साबित न कर सके कि मृत्यु भोजन में विष मिलाने के कारण हुई है और विष न मिलाए जाने की पुष्टि रासायनिक परीक्षण से भी हो जाती है तब ऐसी स्थिति में अभियुक्तों की दोषसिद्धि कायम नहीं रखी जा सकती ।

जॉयदेब पात्र और अन्य बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** 19

– धारा 302 – हत्या – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में विलंब – बर्बरतापूर्ण और जघन्य अपराध से प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों का भयभीत हो जाना – विलंब का स्पष्टीकरण युक्तियुक्त पाया जाना – मनुष्य की प्रवृत्ति है कि वह पहले अपनी जान बचाता है और बाद में कुछ और करने के बारे में विचार करता है, इत्तिलाकर्ता पुलिस थाने जाने की हिम्मत नहीं कर पा रहा था, एक दिन बीत जाने के बाद प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई, इस प्रकार विलंब को स्पष्ट किए जाने पर अभियोजन वृत्तांत स्वीकार किया जा सकता है ।

कन्हैया लाल बनाम **राजस्थान राज्य** 66

पृष्ठ संख्या

– धारा 302 – हत्या – अभियुक्त-पति द्वारा पत्नी की हत्या – अपराध का हेतु पत्नी के चरित्र पर संदेह – अपराध के पश्चात् अभियुक्त का फरार होना – अन्यत्र उपस्थित होने का अभिवाक् न किया जाना – पत्नी के साथ बलात्संग किए जाने की पुष्टि न होना – पत्नी की अप्राकृतिक मृत्यु की रिपोर्ट अभियुक्त-पति द्वारा न किया जाना – साक्ष्य की शृंखला का पूर्ण पाया जाना – यदि अभियुक्त ऐसा कोई स्पष्टीकरण न दे सके कि वह अपराध के समय कहां था और उसने अपनी पत्नी की अप्राकृतिक मृत्यु की रिपोर्ट दर्ज क्यों नहीं कराई तथा उसके फरार होने तथा पत्नी के चरित्र पर संदेह करने का तथ्य साबित हो जाए तब उसके विरुद्ध पारिस्थितिक साक्ष्य की शृंखला संपूर्ण हो जाती है और अभियुक्त हत्या के अपराध का दोषी होगा ।

सूगुरु सुब्रह्मण्यम बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** 53

– धारा 302 – हत्या – 5 व्यक्तियों की हत्या किए जाने का जघन्य अपराध – ग्राम के मुखिया के साथ शत्रुता – घटना मृतक के मकान के निकट घटित हुई और 5 व्यक्तियों की हत्या की गई, ऐसी स्थिति में यह पूर्णतया अप्रत्याशित होगा कि ग्राम के अन्य निवासी अपना कथन देने के लिए आगे बढ़ें और वे न्यायालय में अभिसाक्ष्य दें, ऐसी स्थिति में स्वतंत्र साक्षी न बनाना विधिविरुद्ध नहीं होगा ।

कन्हैया लाल बनाम **राजस्थान राज्य** 66

– धारा 302 – हत्या – प्रत्यक्षदर्शी साक्षी – अपराध – अपराध में प्रत्येक अभियुक्त की विशेष भूमिका का उल्लेख न किया जाना – यदि साक्षियों ने अभियुक्तों द्वारा अपराध में निभाई गई विशेष भूमिका का उल्लेख नहीं किया है किंतु उन्होंने अभियुक्तों द्वारा

पृष्ठ संख्या

प्रयोग में लाए गए हथियारों का उल्लेख किया है और उनके साक्ष्य में आए विरोधाभास तुच्छ प्रकृति के हैं तब ऐसी स्थिति में उनके साक्ष्य को स्वीकार किया जा सकता है ।

कन्हैया लाल बनाम **राजस्थान राज्य** 66

– धारा 376 – बलात्संग – पिता और पुत्र का अपराध में एक साथ अंतर्वलित होना – दोषमुक्ति का अनुचित पाया जाना – पिता और पुत्र एक साथ बलात्संग नहीं कर सकते, यह अत्यंत अनधिसंभाव्य नहीं हो सकता, अभिकथन सही है या गलत इसकी परीक्षा अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर की जानी चाहिए और ऐसे बलात्संग को अनधिसंभाव्य विनिश्चित नहीं किया जा सकता, अतः मात्र इस आधार पर अभियुक्तों की दोषमुक्ति उचित नहीं होगी ।

प्रेम कौर बनाम **पंजाब राज्य और अन्य** 95

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 106 – व्यक्ति की विशेष जानकारी में किसी तथ्य का होना – व्यक्ति पर साबित करने का भार अभियुक्त के दोष को संदेह के परे साबित करने का भार अभियोजन पक्ष पर है, इसके बाद ही अभियुक्त को उन तथ्यों को साबित करने के लिए बाध्य किया जा सकता है जो उसकी विशेष जानकारी में होते हैं ।

जॉयदेब पात्र और अन्य बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** 19

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49)

– धारा 19 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 197] – अभियोजन के लिए पूर्व

पृष्ठ संख्या

मंजूरी – सक्षम प्राधिकारी – धारा 19 में प्रयुक्त "पद से हटाना" शब्दों से नियोजन समाप्त करना अभिप्रेत है किन्तु किसी प्रतिनियुक्त व्यक्ति के उसके मूल विभाग में प्रत्यावर्तन से नियोजन समाप्त नहीं होता है इसलिए प्रत्यावर्तित करने के लिए सशक्त प्राधिकारी अभियोजन के लिए मंजूरी प्रदान करने के लिए सक्षम नहीं है ।

उत्तराखंड राज्य बनाम **योगेन्द्र नाथ अरोड़ा** 44

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 149 – बीमाकर्ता का दायित्व – पालिसी की शर्त के अतिक्रमण की प्रतिरक्षा – बीमा पालिसी की किसी शर्त का अतिक्रमण किए जाने पर भी बीमाकर्ता पर-व्यक्ति को प्रतिकर संदत्त करने संबंधी अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता क्योंकि पालिसी की शर्त का अतिक्रमण किए जाने पर बीमाकर्ता कतिपय परिस्थितियों में पर-व्यक्ति को संदत्त की गई प्रतिकर की रकम बीमाकृत व्यक्ति से वसूल कर सकता है ।

एस. अय्यपन बनाम **मैसर्स यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और एक अन्य** 110

– धारा 149 और 146 – बीमाकर्ता का दायित्व – बीमाकर्ता इस आधार पर अपने दायित्व को अस्वीकार नहीं कर सकता कि यद्यपि दुर्घटना में अंतर्वलित यान का चालक हल्का मोटर यान चलाने की विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति धारण किए हुए था किन्तु वाणिज्यिक यान के रूप में प्रयुक्त हल्का मोटर यान चलाने से पूर्व चालन अनुज्ञप्ति में वाणिज्यिक यान चलाने संबंधी पृष्ठांकन नहीं कराया गया था ।

एस. अय्यपन बनाम **मैसर्स यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और एक अन्य** 110

पृष्ठ संख्या

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 16 [सहपठित पांडिचेरी खादी और ग्राम उद्योग बोर्ड अधिनियम, 1980 की धारा 3 और 15] – सेवा में आमेलन – बोर्ड के अध्यक्ष के वैयक्तिक कर्मचारिवृन्द के रूप में सहविस्तारी आधार पर नियुक्त कर्मचारियों के आमेलन के लिए बोर्ड के संकल्प का राज्यपाल के पास भेजा जाना – चूंकि ये नियुक्तियां न तो रोजगार कार्यालय के माध्यम से और न ही भर्ती प्रक्रिया के माध्यम से की गई थीं बल्कि अध्यक्ष के कार्यकाल के आधार पर सहविस्तारी थीं तथा आमेलन से संबंधित बोर्ड का संकल्प भी प्रशासनिक तंत्र और राज्य के मुख्य सचिव के माध्यम से नेमी अनुक्रम में राज्यपाल के पास नहीं भेजा गया था इसलिए अध्यक्ष का कार्यकाल समाप्त हो जाने के पश्चात् ये नियुक्तियां बनी नहीं रह सकतीं ।

मुख्य कार्यपालक अधिकारी, पांडिचेरी खादी और ग्राम उद्योग बोर्ड और एक अन्य बनाम **के. अरूकिया राड्जा और अन्य** 25

– अनुच्छेद 226 और 32 – बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट – मंजूर किए जाने से इनकार – बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट पर उस स्थिति में विचार नहीं किया जा सकता जब अभियुक्त को किसी सक्षम न्यायालय के आदेश द्वारा न्यायिक अभिरक्षा या पुलिस अभिरक्षा में भेजा गया हो ।

मनुभाई रतिलाल पटेल, द्वारा उषाबेन बनाम **गुजरात राज्य और अन्य** 1

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 3 – हितबद्ध साक्षी – चिकित्सा साक्ष्य से संपुष्टि – साक्ष्य का स्वीकार किया जाना – यदि नातेदार साक्षियों का ऐसा कोई हेतु नहीं है जिसके लिए वे

पृष्ठ संख्या

अभियुक्तों को मिथ्या फंसाए और इसके अतिरिक्त उनके परिसाक्ष्य में महत्वपूर्ण विशिष्टियों को लेकर कड़ी प्रतिपरीक्षा की गई हो और चिकित्सक के साक्ष्य से भी उनके साक्ष्य की संपुष्टि हो गई हो, तब ऐसी स्थिति में नातेदार साक्षी को हितबद्ध साक्षी नहीं माना जा सकता और उनके साक्ष्य को स्वीकार किया जा सकता है ।

कन्हैया लाल बनाम **राजस्थान राज्य** 66

संपादक-मंडल

श्री पी. के. मल्होत्रा,
सचिव, विधायी विभाग

श्रीमती शारदा जैन, संयुक्त सचिव एवं
विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि, अधिवक्ता,
(पूर्व संपादक) वि.सा.प्र.

प्रो. डा. वैभव गोयल, संकायाध्यक्ष
लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन
अकादमी, मसूरी (उत्तराखण्ड)

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ
विश्वविद्यालय

डा. आर. पी. सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव, राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री के. जी. अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली खां,
संपादक

श्री जुगल किशोर,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, एम. पी. सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 19

वार्षिक : ₹ 225

© 2014 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

मनुभाई रतिलाल पटेल, द्वारा उषाबेन

बनाम

गुजरात राज्य और अन्य

28 सितम्बर, 2012

न्यायमूर्ति के. एस राधाकृष्णन् और न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 और 32 – बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट – मंजूर किए जाने से इनकार – बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट पर उस स्थिति में विचार नहीं किया जा सकता जब अभियुक्त को किसी सक्षम न्यायालय के आदेश द्वारा न्यायिक अभिरक्षा या पुलिस अभिरक्षा में भेजा गया हो ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 167 और 309 तथा धारा 155, 156, 157 और 173 – अभियुक्त का रिमांड पर भेजा जाना – अन्वेषण पर रोक आदेश – विचारण न्यायालय की शक्ति – अन्वेषण न तो जांच है और न ही विचारण, अन्वेषण का कार्य पुलिस के एक मात्र कार्यक्षेत्र के भीतर आता है और इस पर मजिस्ट्रेट का कोई नियंत्रण नहीं होता, इसी प्रकार अभियुक्त को न्यायिक अभिरक्षा में भेजना एक न्यायिक कार्य है जो अन्वेषण की परिधि के भीतर नहीं आता, अतः, अभियुक्त को न्यायिक अभिरक्षा में भेजने संबंधी मजिस्ट्रेट का आदेश, अन्वेषण पर लगाए गए रोक आदेश द्वारा निष्प्रभावी नहीं हो सकता ।

इस मामले में, अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया और उसे न्यायिक अभिरक्षा में भेज दिया गया, इसके पश्चात् अभियुक्त ने गुजरात उच्च न्यायालय में आवेदन किया और उच्च न्यायालय के आदेश द्वारा आगे अन्वेषण किए जाने पर रोक लगा दी गई । अभियुक्त ने इस आदेश के आधार पर पुनः न्यायालय में जमानत के लिए आवेदन किया जिसे खारिज कर दिया गया । इसके पश्चात्, अभियुक्त ने सेशन न्यायालय के समक्ष अंतरिम जमानत के लिए आवेदन किया और यह आवेदन भी खारिज कर दिया गया । इसके पश्चात् गुजरात उच्च न्यायालय के समक्ष बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट याचिका फाइल की गई और उच्च न्यायालय ने

अभियुक्त की ओर से फाइल की गई यह रिट भी खारिज कर दी । उच्च न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर अभियुक्त ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले पर विचार करने पर, यह सामने आता है कि रोक आदेश पारित किए जाने के एक दिन पूर्व गिरफ्तारी की गई थी । यह भी स्पष्ट है कि प्रथम इत्तिला रिपार्ट में किए गए अभिकथनों पर विचार करने के पश्चात् विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा रिमांड आदेश पारित किया गया था किन्तु यह आदेश सामान्य रूप से या बिना सोचे-समझे पारित नहीं किया गया । यह ध्यान में रखना चाहिए कि अन्वेषण पर रोक लगाने के संबंध में उच्च न्यायालय के आदेश का प्रभाव अन्वेषण अभिक्रम की कार्रवाई से ही संबंधित है । न्यायालय के विचार से रिमांड आदेश एक न्यायिक कार्य है जिसमें कोई कमी नहीं है । उच्च न्यायालय तथा इस न्यायालय के समक्ष केवल यह आधार लिया गया है कि जब एक बार अन्वेषण पर रोक लग जाती है तब रिमांड आदेश संवेदनात्मक रूप से संभाव्य हो जाता है, अतः युक्तियुक्त स्वाभाविक परिणाम के रूप में निरोध बनाए रखे जाने योग्य नहीं होगा । यह उल्लेखनीय है कि अन्वेषण पहले ही आरंभ हो चुका था और इसके परिणामस्वरूप अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया था । इस प्रकार हमारा यह विचार है कि रिमांड आदेश को विधि की दृष्टि से गलत नहीं माना जा सकता है । यह सुस्थापित सिद्धांत है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट पर उस स्थिति में विचार नहीं किया जाना चाहिए जब किसी भी व्यक्ति को किसी सक्षम न्यायालय के आदेश द्वारा न्यायिक अभिरक्षा या पुलिस अभिरक्षा में भेजा जाता है जो प्रथमदृष्ट्या अधिकारातीत प्रतीत नहीं होता हो और न ही यह प्रतीत होता हो कि यह आदेश पूर्णतया बिना सोचे-समझे या अवैध रूप से किया गया है । न्यायालय से यह अपेक्षा की जाती है कि वह पारित किए गए निरोध आदेश की वैधता की संवीक्षा करे । जब तक कि न्यायालय का यह समाधान नहीं हो जाता है कि किसी व्यक्ति को ऐसे आदेश द्वारा जेल अभिरक्षा में भेजा गया है जिसमें अधिकारिता का अभाव या पूर्णतया अवैधता है, तब तक बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट मंजूर नहीं की जा सकती है । यह उल्लेख करना समुचित होगा कि अन्वेषण, जैसा कि इस न्यायालय के अनेक मामलों में व्यक्त किया गया है, न तो जांच है और न ही विचारण । अन्वेषण का कार्य पुलिस के एकमात्र कार्यक्षेत्र के भीतर आता है और इस पर मजिस्ट्रेट का कोई नियंत्रण नहीं होता है । इस क्रियाकलाप की परिधि स्पष्ट और सुभिन्न है । इस प्रकार विचार किए जाने पर, न्यायालय को बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट मंजूर किए जाने से इनकार करने

वाले उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश में कोई त्रुटि दिखाई नहीं देती है क्योंकि मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किए गए न्यायिक आदेश के आधार पर किया गया निरोध विधि की दृष्टि से विधिमान्य है । (पैरा 32)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[1974]	(1974) 4 एस. सी. सी. 141 : **कानू सान्याल** बनाम **जिला मजिस्ट्रेट, दार्जिलिंग और अन्य** ;	20, 21, 32
[1973]	ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 2684 = (1973) 2 एस. सी. सी. 674 : **कानू सान्याल** बनाम **जिला मजिस्ट्रेट, दार्जिलिंग और अन्य** ;	15
[1972]	(1972) 3 एस. सी. सी. 256 : **कर्नल (डा.) बी. रामाचन्द्रन राव** बनाम **उड़ीसा राज्य और अन्य** ।	18, 32

निर्दिष्ट निर्णय

[2011]	(2011) 10 एस. सी. सी. 781 : **उम्मू सबीना** बनाम **केरल राज्य और अन्य** ;	16
[2005]	(2005) 4 एस. सी. सी. 303 : **अद्री धरन दास** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** ;	28
[1995]	ए. आई. आर. 1995 एस. सी. 196 : **एच. एन. रिशबुद और एक अन्य** बनाम **दिल्ली राज्य** ;	27
[1994]	(1994) 5 एस. सी. सी. 410 : **संजय दत्त** बनाम **राज्य द्वारा केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो, मुम्बई** ;	22
[1992]	(1992) 3 एस. सी. सी. 141 : **केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो, विशेष अन्वेषण सेल-I, नई दिल्ली** बनाम **अनुपम जे. कुलकर्णी** ;	25
[1980]	(1980) 1 एस. सी. सी. 554 : **बिहार राज्य** बनाम **जे. ए. सी. सल्दाना और अन्य** ;	31

[1971]	(1971) 3 एस. सी. सी. 118 : **तालिब हुसैन** बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य ;**	20
[1970]	(1970) 1 एस. सी. सी. 653 : **एस. एन. शर्मा** बनाम **बिपन कुमार तिवारी ;**	30
[1969]	ए. आई. आर 1969 एस. सी. 1014 : **मधु लिमये और अन्य वाला मामला ;**	19
[1959]	ए. आई. आर. 1959 एस. सी. 843 : **रंजीत सिंह** बनाम **पेप्सू राज्य (जिसे अब पंजाब कहा जाता है) ;**	14
[1957]	ए. आई. आर. 1957 एस. सी. 142 : **निरंजन सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य ;**	29
[1953]	ए. आई. आर 1953 एस. सी. 277 : **राम नारायण सिंह** बनाम **दिल्ली राज्य ;**	19
[1952]	ए. आई. आर. 1952 एस. सी. 106 : **नरंजन सिंह** बनाम **पंजाब राज्य ;**	20
[1942]	1942 ए. सी. 284 : **ग्रीन** बनाम **सेक्रेटरी आफ स्टेट्स फार होम अफेयर्स ;**	14
[1923]	1923 ए. सी. 603 : **सेक्रेटरी आफ स्टेट्स फार होम अफेयर्स** बनाम **ओ. ब्रियेन** ।	13

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2012 की दांडिक अपील सं. 1572.

2012 की विशेष दांडिक अपील सं. 2207 में गुजरात उच्च न्यायालय, अहमदाबाद के तारीख 7 अगस्त, 2012 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री सुशील कुमार जैन, बी. एम. मंगूकिया, पुनीत जैन, (सुश्री) क्रिस्टि जैन और (सुश्री) प्रतिमा जैन

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वसुश्री हेमन्तिका वाही, जेसल और नंदनी गुप्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा ने दिया ।

न्या. मिश्रा – इजाजत प्रदान की जाती है ।

2. अपीलार्थी, भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में 'दंड संहिता' कहा गया है) की धारा 467, 468, 471, 409 और 114 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए तारीख 20 जून, 2012 को पेठापुर पुलिस थाने में रजिस्ट्रीकृत प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 56/12 में का एक अभियुक्त है । इस प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रजिस्ट्रीकरण और अन्वेषण को चुनौती देते हुए, अभियुक्त-अपीलार्थी (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अभियुक्त' कहा गया है) ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिखंडित किए जाने के लिए गुजरात उच्च न्यायालय, अहमदाबाद के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे संक्षेप में 'संहिता' कहा गया है) की धारा 482 के अधीन 11 जुलाई, 2012 को 2012 का दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं. 10303 फाइल किया । अपराध मामला सं. 56/12 के अन्वेषण के संबंध में आगे कार्यवाही किए जाने पर रोक लगाने के लिए भी प्रार्थना की गई ।

3. तथ्यात्मक स्थिति पर विस्तार से विचार करने पर यह दर्शित होता है कि मामले की सुनवाई 17 जुलाई, 2012 को हुई और उच्च न्यायालय ने नोटिस जारी किया जिसमें अगली तारीख 7 अगस्त, 2012 नियत की गई और प्रार्थना सं. (ग) के निबंधनों में अंतरिम अनुतोष मंजूर किया जो अन्वेषण के बाबत आगे की जाने वाली कार्यवाही पर रोक लगाने से संबंधित था ।

4. तथ्यों को स्पष्ट करने से यह दर्शित होता है कि अभियुक्त तारीख 16 जुलाई, 2012 को गिरफ्तार किया गया था और तारीख 17 जुलाई, 2012 को 4.00 बजे अपराह्न में विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी, गांधी नगर के समक्ष पेश किया गया । पुलिस ने अभियुक्त को पुलिस रिमांड पर लेने के लिए आवेदन किया और तारीख 19 जुलाई, 2012 को 2.00 बजे अपराह्न तक के लिए रिमांड मंजूर कर दिया गया । तारीख 17 जुलाई, 2012 को उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया रोक आदेश, संबद्ध अन्वेषण अभिक्रम की जानकारी में तारीख 18 जुलाई, 2012 को लाया गया और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश का पालन करते हुए अन्वेषण में आगे कार्यवाही न किए जाने की प्रार्थना की गई । यह उल्लेखनीय है कि तारीख 19 जुलाई, 2012 को विद्वान् मजिस्ट्रेट के समक्ष संहिता की धारा 439 के अधीन नियमित जमानत के लिए आवेदन फाइल किया गया । अन्य आधारों के अतिरिक्त इस बात पर भी बल दिया गया कि जब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिखंडित किए जाने के लिए याचिका लंबित

हो और आगे अन्वेषण किए जाने पर रोक आदेश पारित कर दिया गया हो तब निरोध अवैध होगा और इस प्रकार अभियुक्त जमानत मंजूर किए जाने के लिए हकदार होगा ।

5. विद्वान् मजिस्ट्रेट ने अभियुक्त पर लगाए गए अभिकथनों पर विचार किया है और अपराध की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए उसे जमानत पर छोड़ने से इनकार किया है । उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश पर विचार करते हुए उन्होंने यह मत व्यक्त किया है कि माननीय उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया आदेश आगे अन्वेषण किए जाने पर रोक लगाने से संबंधित है जबकि न्यायिक अभिरक्षा के दौरान कोई भी अन्वेषण किया जाना अपेक्षित नहीं है और क्योंकि अभियुक्त घोर अपराध कारित किए जाने में अंतर्वलित है, इसलिए उसे जमानत पर छोड़ना उचित नहीं होगा ।

6. उपर्युक्त आदेश से व्यथित होकर अभियुक्त ने विद्वान् सेशन न्यायाधीश, गांधी नगर के न्यायालय में 2012 को दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं. 539 प्रस्तुत किया और उसमें अंतरिम जमानत मंजूर किए जाने की प्रार्थना की । विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने अंतरिम जमानत मंजूर किए जाने की प्रार्थना खारिज कर दी और मुख्य आवेदन की सुनवाई के लिए तारीख 24 जुलाई, 2012 नियत की ।

7. उपर्युक्त आदेशों से व्यथित होकर अभियुक्त ने 2012 के विशेष दांडिक आवेदन सं. 227 की विषय-वस्तु को लेकर गुजरात उच्च न्यायालय के समक्ष बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका प्रस्तुत की । उच्च न्यायालय के समक्ष यह दलील दी गई है कि चूंकि संहिता की धारा 482 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा अन्वेषण पर रोक लगा दी गई थी, इसलिए विद्वान् मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 167(2) के अधीन अभियुक्त को पुलिस या न्यायिक अभिरक्षा में भेजने की शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता था । यह दलील दी गई है कि अभियुक्त को अन्वेषण के दौरान अभिरक्षा में भेजने की शक्ति उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए रोक आदेश द्वारा प्रच्छन्न हो जाती है और इसीलिए अभियुक्त का निरोध किया जाना विधि की दृष्टि से पूर्णतया अवैध और निराधार है । यह भी दलील दी गई है कि चूंकि अभियुक्त का निरोध किया जाना विधिविरुद्ध है, इसलिए बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट प्रभावी होगी और जब तक रोक आदेश प्रवृत्त बना रहेगा तब तक वह तत्काल छोड़े जाने का हकदार होगा ।

8. विद्वान् काउंसेल के उपर्युक्त पक्षकथन का खंडन राज्य द्वारा अन्य

बातों के साथ किया गया है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि कोई भी अन्वेषण नहीं किया गया था क्योंकि गिरफ्तारी पहले ही हो चुकी है, इसलिए आगे अन्वेषण किए जाने पर रोक लगाने से मजिस्ट्रेट का रिमांड आदेश अकृत नहीं होगा चाहे पुलिस अभिरक्षा का मामला हो या न्यायिक अभिरक्षा का । उक्त स्थिति पर बल देते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि रिमांड आदेश अकृत नहीं माना जा सकता है जिसमें बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट की अधिकारिता का प्रयोग करने में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया जाना आवश्यक होगा ।

9. उच्च न्यायालय ने तिथि क्रम पूर्वक घटना व्यवस्था का उल्लेख किया है और इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "याचिका तथा उत्तर-शपथपत्र से उद्भूत घटनाओं के तिथि क्रम से यह स्पष्ट होता है कि इस पर विवाद नहीं है कि याची की गिरफ्तारी 16 जुलाई, 2012 को हुई थी । तारीख 17 जुलाई, 2012 को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिखंडित कराने की याचिका फाइल की गई थी और रोक आदेश तारीख 17 जुलाई, 2012 को लगभग 4.30 बजे अपराह्न में मंजूर किया गया था और तारीख 17 जुलाई, को ही यह आदेश किया गया था कि अभियुक्त याची को तारीख 19 जुलाई, 2012 को 2.00 बजे अपराह्न तक पुलिस रिमांड पर रखा जाएगा । यह भी उल्लेखनीय है कि विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट-प्रथम श्रेणी द्वारा पारित किए गए आदेश को कहीं भी चुनौती नहीं दी गई है और वह अंतिम हो गया है । इसके पश्चात् 2012 के दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं. 10303 में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश तारीख 17 जुलाई, 2012 को 9.30 बजे अपराह्न में पुलिस अधिकारियों को तामील कराया गया है । ऐसा प्रतीत होता है कि अगले दिन अर्थात् तारीख 18 जुलाई, 2012 को अन्वेषक अधिकारी ने उच्च न्यायालय द्वारा मंजूर किए गए रोक आदेश के बारे में विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी को सूचित किया था कि वह याची द्वारा फाइल किए गए अग्रिम जमानत आवेदन के संबंध में उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ है । याची का यह भी पक्षकथन नहीं है कि रोक आदेश के तामील किए जाने के पश्चात् अन्वेषक अधिकारी द्वारा कोई भी अन्वेषण किया गया है । तारीख 19 जुलाई, 2012 को ही आवेदक ने संहिता की धारा 437 के अधीन जमानत के लिए आवेदन फाइल किया था जो खारिज कर दिया गया और अभियुक्त को न्यायिक अभिरक्षा में

भेज दिया गया और इस प्रकार याची-अभियुक्त अभी तक न्यायिक अभिरक्षा में है । यह उल्लेखनीय है कि विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट-प्रथम श्रेणी ने जमानत आवेदन के संबंध में किए गए अपने आदेश में ठीक ही व्यक्त किया है कि उच्च न्यायालय ने केवल आगे अन्वेषण किए जाने पर रोक लगाई है ।"

10. यह मत व्यक्त किए जाने के पश्चात्, उच्च न्यायालय ने इस मुद्दे पर विचार किया है कि क्या अभियुक्त का अभिरक्षा में लिया जाना अवैध है या नहीं । उच्च न्यायालय द्वारा यह राय दी गई है कि इस दलील को स्वीकार करना संभव नहीं है कि जब एक बार अन्वेषण पर रोक लगा दी जाती है तब संहिता की धारा 167(2) के अधीन अधिकारिता का प्रयोग नहीं किया जा सकता है क्योंकि अन्वेषण पर रोक लगा देने से प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिखंडित नहीं हो जाती है और न ही अन्वेषण का वह भाग निरस्त हो जाता है जो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के दर्ज किए जाने के अनुसरण में किया गया था । यह भी मत व्यक्त किया गया है कि यह केवल एक अंतःकालीन आदेश है और यदि रोक आदेश अंततः बातिल कर दिया जाता है या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिखंडित कराने संबंधी याचिका ग्रहण नहीं की जाती है तब अन्वेषण की कार्यवाही जारी रहेगी । उच्च न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया है कि मात्र इस कारण से कि अन्वेषण किए जाने पर रोक लगाई गई है, यह कहना उचित नहीं होगा कि कोई भी अन्वेषण नहीं किया गया था और यह कि विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किया गया आदेश अनुचित है ।

11. रिमांड के मुद्दे पर विचार करते हुए, उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि अभियुक्त को अभिरक्षा में लेने के लिए किया गया रिमांड आदेश अन्वेषण का भाग नहीं कहा जा सकता है, इसलिए उक्त आदेश, 2012 के दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं. 10303 में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन पारित आदेश के विरुद्ध नहीं है । संहिता की धारा 2(ज) को निर्दिष्ट किया गया है जिसमें अन्वेषण परिभाषित किया गया है और यह नियम बनाया गया है कि विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को अन्वेषण का भाग नहीं माना जा सकता है । अंततः, उच्च न्यायालय ने यह राय व्यक्त की है कि यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट-प्रथम श्रेणी द्वारा पारित किया गया आदेश अन्वेषण का भाग है, अतः इस दलील में बल नहीं है कि विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट-प्रथम श्रेणी संहिता की धारा 167 के अधीन प्राप्त

शक्ति का प्रयोग करते हुए ऐसी स्थिति में अभियुक्त को अभिरक्षा में नहीं भेज सकता था और द्वितीयतः विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट-प्रथम श्रेणी का अभियुक्त को अभिरक्षा में भेजने का कार्य एक न्यायिक कार्य है जिसे अन्वेषण का भाग नहीं कहा जा सकता है और यह नहीं माना जा सकता है कि विद्वान् मजिस्ट्रेट के इस आदेश को 2012 के दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं. 10303 में उच्च न्यायालय द्वारा किया गया रोक आदेश लागू होगा । यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट याचिका ग्रहण किए जाने के लिए अवैध या अप्राधिकृत निरोध या परिरोध अनिवार्य है और इस याची को न्यायिक आदेश से अभिरक्षा में लिया गया है इसलिए इस अभिरक्षा को अवैध नहीं माना जा सकता है ।

12. इस समागम पर, यह उल्लेखनीय प्रतीत होता है कि अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय में बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका के माध्यम से आवेदन किया है । विरुद्ध व्यक्ति की कारागार से उन्मुक्ति सुनिश्चित करने के लिए प्रभावी उपाय के रूप में बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका को सदैव सम्यक् महत्व दिया गया है । पी. रामानाथ अय्यर्स ला लेक्सिकन नामक पुस्तक के वर्ष 1997 के संस्करण में अन्य पहलुओं के अतिरिक्त बंदी प्रत्यक्षीकरण को निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है :–

> "बंदी प्रत्यक्षीकरण जैसी प्राचीन परमाधिकार रिट का नाम दो आज्ञापक शब्दों अर्थात् 'हेबियस कॉर्पस' से मिलकर बना है और यह नाम उस समय रखा गया था जब सभी प्रकार की विधिक प्रक्रियाओं के अन्तर्गत इसे लैटिन भाषा में विरचित किया गया था । इन रिट याचिकाओं का सामान्य प्रयोजन, जैसाकि नाम से ही उपदर्शित है, किसी व्यक्ति को न्यायालय में प्रस्तुत कराना है ।"

13. **सेक्रेटरी आफ स्टेट्स फार होम अफेयर्स** बनाम **ओ. ब्रियेन**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है कि इंग्लैंड की सांविधानिक विधि में यह सबसे महत्वपूर्ण रिट है जो अवैध अवरोध या परिरोध के सभी मामलों में एक कारगर उपाय है । इस रिट का प्रयोग पुराने समय से किया जा रहा है, इसका एक उदाहरण एडवर्ड-I के शासन काल के 33वें वर्ष में मिलता है । प्राचीन काल से कार्यपालिका द्वारा शक्तियों का अवैध प्रयोग किया जा रहा है जिस पर न्यायपालिका ने उसी समय से रोक लगाकर उसे नियंत्रित किया हुआ है ।

---

[1] 1923 ए. सी. 603 (609).

14. **रंजीत सिंह** बनाम **पेप्सू राज्य (जिसे अब पंजाब कहा जाता है)**[1] वाले मामले में **ग्रीन** बनाम **सेक्रेटरी आफ स्टेट्स फार होम अफेयर्स**[2] वाले मामले को निर्दिष्ट करते हुए, इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट के लिए कार्यवाहियों का उद्देश्य उन्हें समीचीन करना है, प्राविधिकता से दूर रखना है और जितना संभव हो उन्हें सरल बनाए रखना है । न्यायपीठ ने **ग्रीन** (उपरोक्त) वाले मामले में लार्ड राइट का उल्लेख करते हुए यह मत व्यक्त किया :–

> "बंदी प्रत्यक्षीकरण का अगणनीय महत्व यह है कि यह अपीलार्थी की स्वतंत्रता के अधिकार को तत्काल विनिश्चित करता है ।"

अभिरक्षा के न्यायौचित्य और उसकी विधिकता से संबंधित न्यायालय के समाधान पर बल दिया गया है ।

15. **कानू सान्याल** बनाम **जिला मजिस्ट्रेट, दार्जिलिंग और अन्य**[3] वाले मामले में यह अधिकथित किया गया है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट न्याय प्रशासन के बारे में है न कि सारवान् विधि के बारे में । इस रिट का उद्देश्य उस व्यक्ति को उन्मुक्त कराना है जिसे अवैध रूप से निरुद्ध किया गया है ।

16. बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट की महत्ता का उल्लेख करते हुए दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **उम्मू सबीना** बनाम **केरल राज्य और अन्य**[4] वाले मामले में निम्न मत व्यक्त किया है :–

> ".....बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट, कार्यपालिका द्वारा किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता में अतिक्रमण किए जाने के विरुद्ध उसकी संरक्षा के लिए इंग्लैंड के कॉमन ला द्वारा सृजित एक प्राचीन रिट है । बंदी प्रत्यक्षीकरण का यह सिद्धांत हमारी सांविधानिक विधि में भी निगमित किया गया है और हमारी यह राय है कि भारत जैसे लोकतांत्रिक गणराज्य में, जहां न्यायाधीश लिखित संविधान के अधीन कार्य करते हैं और जिसमें वैयक्तिक स्वतंत्रता की संरक्षा के लिए मूल अधिकारों का भी अध्याय है, न्यायाधीशों का कर्तव्य है कि वे केवल नागरिकों

---

[1] ए. आई. आर. 1959 एस. सी. 843.

[2] 1942 ए. सी. 284.

[3] ए. आई. आर 1973 एस. सी. 2684 = (1973) 2 एस. सी. सी. 674.

[4] (2011) 10 एस. सी. सी. 781.

की स्वतंत्रता का ही संरक्षोपाय नहीं करेंगे अपितु भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर सभी व्यक्तियों की स्वतंत्रता का ध्यान रखेंगे । इस कार्य को करने का सबसे प्रभावी तरीका बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी करते हुए न्यायालय की शक्ति का प्रयोग करना है ।"

उक्त मामले में, हल्सबरीस ला आफ इंग्लैंड नामक पुस्तक के चौथे प्रकाशन, जिल्द 11 के पृष्ठ 1454 को निर्दिष्ट किया गया है और यह स्पष्ट किया गया है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट सबसे महत्वपूर्ण सांविधानिक रिट है क्योंकि इसके अन्तर्गत एक तुच्छ नागरिक को भी अत्यंत शक्तिशाली प्राधिकरण के विरुद्ध उपचार उपलब्ध है ।

17. बंदी प्रत्यक्षीकरण की इस महत्ता पर विचार करते हुए कि यह न्यायिक प्रक्रिया के माध्यम से किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता की संरक्षा के लिए एक हथियार है, इस पर विचार करने के लिए कतिपय न्यायविधि को निर्दिष्ट करना उचित होगा कि किस प्रकार न्यायालय ने निरोध के आदेश की वैधता से संबंधित मामले पर विस्तार से विचार किया है, विशेषकर इस पर विचार किया है कि जब कोई अभियुक्त गिरफ्तारी के पश्चात् मजिस्ट्रेट के समक्ष अभिरक्षा में पेश किया जाता है तब न्यायालय के आदेश से क्या अनुघटित होता है । यह भी उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि निरोध आदेश की वैधता का न्यायनिर्णयन के प्रयोजनार्थ वर्णन किए जाने के लिए सुसंगत प्रक्रम से संबंधित इस न्यायालय की राय वर्तमान मामले के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है ।

18. **कर्नल (डा.) बी. रामाचन्द्रन राव** बनाम **उड़ीसा राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट वहां मंजूर नहीं की जाती है जहां किसी व्यक्ति को जेल अभिरक्षा में सक्षम न्यायालय के आदेश द्वारा सुपुर्द किया जाता है और जो प्रथमदृष्ट्या अधिकारातीत या पूर्णतया अवैध प्रतीत नहीं होता है ।

19. **मधु लिमये और अन्य**[2] वाले मामले में न्यायालय ने **राम नारायण सिंह** बनाम **दिल्ली राज्य**[3] वाले मामले में किए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट किया है और यह मत व्यक्त किया है कि न्यायालय को बंदी की वापसी के समय पर निरोध की वैधता या अन्यथा के संबंध में विचार करना चाहिए ।

---

[1] (1972) 3 एस. सी. सी. 256.

[2] ए. आई. आर. 1969 एस. सी. 1014.

[3] ए. आई. आर. 1953 एस. सी. 277.

20. **कानू सान्याल** बनाम **जिला मजिस्ट्रेट, दार्जिलिंग और अन्य**[1] वाले मामले में इस संबंध में दलीलें दी गईं कि जिला कारागार, दार्जिलिंग में याची का आरंभिक निरोध अवैध था क्योंकि उसे संविधान के अनुच्छेद 22 के खंड (i) के अधीन यथा अपेक्षित उसकी गिरफ्तारी के कारणों को बताए बिना उसे निरुद्ध किया गया था और यह कि उपखंड मजिस्ट्रेट, दार्जिलिंग को मामले का विचारण करने की कोई अधिकारिता नहीं थी, अतः मजिस्ट्रेट दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के अधीन याची के निरोध को प्राधिकृत नहीं कर सकता है । दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने उपर्युक्त पहलू पर विचार किया है और **नरंजन सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[2], **राम नारायण सिंह** (उपर्युक्त), **बी. आर. राव** (उपर्युक्त) और **तालिब हुसैन** बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य**[3] वाले मामलों में किए गए पूर्ववर्ती विनिश्चयों को निर्दिष्ट किया है और यह उल्लेख किया है कि इस न्यायालय द्वारा सुसंगत तारीख से संबंधित निरोध की न्याय्यता को विनिश्चित करने के लिए कई बार तीन मत व्यक्त किए गए हैं और यह राय व्यक्त की है :–

> "इस न्यायालय ने तत्कालीन न्यायमूर्ति वांचू के माध्यम से ए. के. गोपालन **बनाम** भारत सरकार, {[1966] 2 एस. सी. आर. 427 = ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 816} वाले मामले में यह मत व्यक्त किया है – यह सुस्थापित है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका पर कार्यवाही करते समय न्यायालय को इस पर विचार करना चाहिए कि जिस तारीख को न्यायालय में आवेदन किया गया है उस तारीख को निरोध वैध है या नहीं और यह कि आवेदन की तारीख और सुनवाई की तारीख के बीच कोई भी विलंब है या नहीं । तथापि, इस न्यायालय के दो पूर्ववर्ती विनिश्चयों में अर्थात् नरंजन सिंह **बनाम** पंजाब राज्य, {[1952] एस. सी. आर. 395 = ए. आई. आर. 1952 एस. सी. 106} और राम नारायण सिंह **बनाम** दिल्ली राज्य {[1953] एस. सी. आर. 652 = ए. आई. आर. 1953 एस. सी. 277} वाले मामलों में तनिक भिन्न मत व्यक्त किया गया है और वैसा ही मत बी. आर. राव **बनाम** उड़ीसा राज्य [ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 2197] वाले मामले में दोहराया गया है जो इस प्रकार है – 'बंदी प्रत्यक्षीकरण के संबंध में न्यायालय को वैधता पर विचार करना

---

[1] (1974) 4 एस. सी. सी. 141.

[2] ए. आई. आर 1952 एस. सी. 106.

[3] (1971) 3 एस. सी. सी. 118.

चाहिए या अन्यथा बंदी की वापसी के समय पर निरोध पर विचार करना चाहिए न कि कार्यवाहियों के संस्थित किए जाने के संबंध में ।' तालिब हुसैन **बनाम** जम्मू-कश्मीर राज्य [ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 62] वाले मामले के इस न्यायालय के एक अन्य विनिश्चय में भी न्यायमूर्ति दुआ ने एकल न्यायाधीश की हैसियत से संभवतः अवकाश के दौरान यह मत व्यक्त किया है कि 'बंदी प्रत्यक्षीकरण की कार्यवाहियों के मामले में न्यायालय को सुनवाई की तारीख को निरोध की वैधता पर विचार करना चाहिए ।' न्यायालय द्वारा अलग-अलग समय पर व्यक्त किए गए इन तीनों मतों में से दूसरा मत इंग्लैंड में 'विधि और परिपाटी' के अधिक निकट प्रतीत होता है और इसे भारत में अनुमोदन के रूप में स्वीकार किया जा सकता है यद्यपि गलत मानकर तीसरे मत को भी त्यक्त नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह जांच करना पूर्णतया सुसंगत होगा कि क्या बंदी प्रत्यक्षीकरण के आवेदन की सुनवाई की तारीख को निरोध वैध है या नहीं, इसका मात्र यह कारण है कि उस तारीख को यदि निरोध वैध है, तब न्यायालय बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी करके निरुद्ध व्यक्ति को उन्मुक्त करने का आदेश नहीं कर सकता । किन्तु वर्तमान मामले के प्रयोजनार्थ, यह महत्वपूर्ण नहीं है कि तीनों मतों में से किस मत को सही माना जाए क्योंकि यह स्पष्ट है कि कोई-सा भी मत सही क्यों न हो, वह पूर्ववर्ती तारीख जिसके प्रति निर्देश से निरोध की वैधता की परीक्षा की जा सकती है, बंदी प्रत्यक्षीकरण के लिए आवेदन फाइल करने की तारीख है और न्यायालय को **बी. आर. राव** (उपरोक्त) वाले मामले में न्यायमूर्ति दुआ के इन शब्दों अर्थात 'बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट की कार्यवाहियों के आरंभ किए जाने के पूर्व की तारीख से संबंधित' का प्रयोग नहीं करना चाहिए ।" (जोर देने के लिए रेखांकित)

यह मत व्यक्त करने के पश्चात् न्यायपीठ ने यह राय दी कि उक्त मामले में न्यायनिर्णयन के लिए यह महत्वपूर्ण नहीं है कि कौन से मत को सही मानकर स्वीकार किया जाए, अपितु अंततः न्यायालय ने **बी. आर. राव** (उपरोक्त) वाले मामले में के पैरा 7 को निर्दिष्ट किया जिसमें न्यायालय ने निम्न मत व्यक्त किया :–

".....बंदी प्रत्यक्षीकरण की कार्यवाहियों में न्यायालय को उसकी वैधता या अन्यथा बंदी की वापसी के समय पर निरोध पर

विचार करना चाहिए न कि कार्यवाहियों के संस्थित किए जाने के संबंध में ।"

अंततः, न्यायपीठ ने इस प्रकार मत व्यक्त किया है :–

"अतः विशेष न्यायाधीश विशाखापटनम के समक्ष याची को प्रस्तुत करना अवैध नहीं कहा जा सकता है और केन्द्रीय कारागार, विशाखापटनम में उसके पश्चात्वर्ती निरोध को भी विधिमान्य ठहराया जाना चाहिए जो विशेष न्यायाधीश द्वारा किए गए आदेश के अनुसरण में है । इस न्यायालय ने **बी. आर. राव** (उपरोक्त) वाले मामले में यह मत व्यक्त किया है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट ऐसे मामले में मंजूर नहीं की जा सकती है 'जहां किसी व्यक्ति को किसी सक्षम न्यायालय के आदेश द्वारा जेल की अभिरक्षा में सुपुर्द किया जाता है वहां ऐसा करना प्रथमदृष्ट्या अधिकारातीत या पूर्णतया अवैध प्रतीत न होता हो ।' "

21. इस प्रकार **कानू सान्याल** (उपरोक्त) वाले मामले में अभिकथित सिद्धांत यह है कि आरंभ के प्रक्रम पर याची के निरोध में आई किसी भी कमी से उसका पश्चात्वर्ती निरोध अविधिमान्य नहीं ठहराया जा सकता है और ऐसे निरोध के मामले पर उसकी अपनी गुणताओं के आधार पर विचार किया जाना चाहिए ।

22. इस स्थिति में, हमारे लिए **संजय दत्त** बनाम **राज्य द्वारा केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो, मुम्बई**[1] वाले मामले में किए गए संविधान न्यायपीठ के विनिश्चय को निर्दिष्ट करना उचित होगा जिसमें इस प्रकार राय व्यक्त की गई है :–

"संविधान न्यायपीठ के विनिश्चय द्वारा यह सुस्थापित किया गया है कि अभियुक्त की रिमांड के विधिमान्य आदेश या उसके विधिमान्य निरोध के न होने पर बंदी प्रत्यक्षीकरण के लिए की गई रिट याचिका खारिज की जानी चाहिए यदि आदेश की वापसी की तारीख को ऐसी अभिरक्षा या ऐसा निरोध विधिमान्य आदेश के आधार पर हो ।"

23. बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट से संबंधित उपर्युक्त सिद्धांत को दृष्टिगत करते हुए विशेषकर अभियुक्त को न्यायालय में प्रस्तुत किए जाने के समय पर विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किए गए आदेश के संबंध में, हमें रिमांड

---

[1] (1994) 5 एस. सी. सी. 410.

से संबंधित संहिता के अधीन योजनाबद्ध आधार-तत्वों की ओर ध्यान देना होगा । संहिता में दो उपबंध अर्थात् धारा 167 और धारा 309 दिए गए हैं जिनका संबंध रिमांड से है । संहिता की धारा 167(2) के अधीन मजिस्ट्रेट को यह प्राधिकार प्राप्त है कि वह ऐसी अभिरक्षा में (अर्थात् पुलिस या न्यायिक अभिरक्षा) अभियुक्त के निरोध के लिए निदेश दे, यदि मजिस्ट्रेट यह उचित समझे कि अभियुक्त को निरोध में आगे और रखना आवश्यक है ।

24. अभियुक्त को रिमांड पर भेजने का कार्य मूल रूप से एक न्यायिक कार्य है । जब अभियुक्त को निरुद्ध करने का आदेश किया जाता है तब मजिस्ट्रेट कार्यपालक की हैसियत से कार्य नहीं करता है । इस न्यायिक कार्य को करते समय, मजिस्ट्रेट का यह कर्तव्य है कि वह अपना यह समाधान करे कि क्या उसके समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्री के आधार पर ऐसे रिमांड को न्यायोचित ठहराया जा सकता है या नहीं अथवा इससे भिन्न आदेश किया जाए या नहीं, मजिस्ट्रेट का यह भी समाधान होना चाहिए कि अभियुक्त को अभिरक्षा में भेजने और उसके रिमांड को बढ़ाने के लिए युक्तियुक्त आधार हैं या नहीं । रिमांड का उद्देश्य, जैसा कि संहिता की धारा 167 के अधीन उपधारित किया गया है, यह है कि अन्वेषण 24 घंटों के भीतर पूरा नहीं किया जा सकता है । इस धारा के अन्तर्गत मजिस्ट्रेट को यह शक्ति प्राप्त है कि वह इस पर विचार करे कि रिमांड वास्तव में आवश्यक है या नहीं । इस उपबंध के अन्तर्गत अन्वेषण अभिक्रम से यह अपेक्षा की जाती है कि वह रिमांड की रिपोर्ट के साथ केस डायरी भी भेजे ताकि मजिस्ट्रेट तथ्यात्मक पृष्ठभूमि का मूल्यांकन कर सके और इस पर विचार कर सके कि अभियुक्त को पुलिस रिमांड पर भेजा जाए या न्यायिक रिमांड पर या किसी भी रिमांड की कोई आवश्यकता है या नहीं । मजिस्ट्रेट की यह बाध्यता है कि वह अपने विवेक से काम ले और यूं ही या बिना सोचे समझे रिमांड का कोई भी आदेश पारित न करे । यह उल्लेखनीय है कि **मधु लिमये** (उपरोक्त) वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है कि जब एक बार यह दर्शित किया गया हो कि पुलिस अधिकारियों द्वारा की गई गिरफ्तारियां अवैध हैं, तब राज्य के लिए यह आवश्यक होगा कि वह यह सिद्ध करे कि रिमांड के प्रक्रम पर मजिस्ट्रेट ने सभी सुसंगत मामलों पर अपने विवेक का प्रयोग करने के पश्चात् अभियुक्त को जेल अभिरक्षा में निरुद्ध करने का निदेश दिया है ।

25. **केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो, विशेष अन्वेषण सेल-I, नई दिल्ली** बनाम

अनुपम जे. कुलकर्णी[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है कि जब किसी अभियुक्त को पन्द्रह दिनों की अधिकतम अवधि के लिए पुलिस अभिरक्षा में भेजा जाता है जो रिमांड के एकल या एक से अधिक आदेश के अनुसरण में किया जाता है और जब प्रत्येक तारीख पर कम से कम दिनों के लिए रिमांड दी जाती है, और यदि अभियुक्त को आगे और निरुद्ध करना ही आवश्यक है तब उसे न्यायिक अभिरक्षा में निरुद्ध करना होगा अन्यथा नहीं । इस प्रकार, अधिकारिता के प्रयोग से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि मजिस्ट्रेट न्यायिक कार्य पूरा करता है ।

26. अब हम अन्वेषण के सिद्धांत पर विचार करेंगे । 'अन्वेषण' शब्द को संहिता की धारा 2(ज) के अधीन परिभाषित किया गया है । यह निम्न प्रकार है :–

> "अन्वेषण के अन्तर्गत वे सब कार्यवाहियां हैं जो इस संहिता के अधीन पुलिस अधिकारी द्वारा या (मजिस्ट्रेट से भिन्न) किसी भी ऐसे व्यक्ति द्वारा जो मजिस्ट्रेट द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किया गया है, साक्ष्य एकत्र करने के लिए की जाए ;"

27. **एच. एन. रिशबुद और एक अन्य** बनाम **दिल्ली राज्य**[2] वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने 'अन्वेषण' पर विचार करते हुए यह मत व्यक्त किया है कि संहिता के अधीन अन्वेषण के निम्न चरण हैं : (i) घटनास्थल पर जाना, (ii) मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को सुनिश्चित करना, (iii) संदिग्ध अपराधी की खोज और गिरफ्तारी करना, (iv) अपराध कारित किए जाने से संबंधित साक्ष्य प्राप्त करना जिसके अन्तर्गत यह आता है – (क) अनेक व्यक्तियों (अभियुक्त सहित) की परीक्षा करना और यदि अधिकारी उचित समझे तो उनके कथन अभिलिखित करना, (ख) स्थानों की तलाशी लेना या अन्वेषण और विचारण के दौरान न्यायालय में प्रस्तुत किए जाने के लिए आवश्यक वस्तुओं का अभिग्रहण करना ; और (v) इस संबंध में राय प्राप्त करना कि क्या इकट्ठा की गई सामग्री के आधार पर अभियुक्त को विचारण के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत करने का मामला बनता है या नहीं और यदि ऐसा पाया जाता है तो संहिता की धारा 173 के अधीन आरोप पत्र फाइल करने के लिए आवश्यक कदम बढ़ाना ।

28. **अद्री धरन दास** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[3] वाले मामले में यह

---

[1](1992) 3 एस. सी. सी. 141.

[2] ए. आई. आर. 1995 एस. सी. 196.

[3] (2005) 4 एस. सी. सी. 303.

राय व्यक्त की गई है कि गिरफ्तारी अन्वेषण की प्रक्रिया का भाग है जिसका आशय अनेक प्रयोजनों को पूरा करना है । अभियुक्त से अपराध के हेतु, तैयारी, अपराध के कारित किए जाने और उसके पश्चात्वर्ती परिणाम के अनेक पहलुओं के संबंध में विस्तार से प्रश्न किए जा सकते हैं और अपराध में अन्य व्यक्तियों, यदि कोई हो, के साथ संबंध होने के बारे में भी प्रश्न किए जा सकते हैं ।

29. **निरंजन सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में यह अधिकथित किया गया है कि अन्वेषण कोई जांच या न्यायालय के समक्ष विचारण नहीं है और यही कारण है कि विधान-मंडल ने अन्वेषण में किसी भी अनियमितता को पर्याप्त कमी के रूप में अनुध्यात नहीं किया है जिससे कि जांच या विचारण दूषित हो या अन्यथा उसमें कोई शिथिलता आए ।

30. **एस. एन. शर्मा** बनाम **बिपन कुमार तिवारी**[2] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है कि पुलिस द्वारा अन्वेषण किए जाने की शक्ति पर मजिस्ट्रेट का कोई नियंत्रण नहीं है ।

31. **बिहार राज्य** बनाम **जे. ए. सी. सल्दाना और अन्य**[3] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है कि अपराध का पता लगाने और उस अपराध से संबंधित दंड के क्षेत्र में एक स्पष्ट और सुव्यक्त क्रियाकलाप है और किसी अपराध का आगे और अन्वेषण किया जाना पुलिस विभाग जैसी कार्यपालिका के लिए ही एकमात्र रूप से आरक्षित है ।

32. वर्तमान मामले पर विचार करने पर, यह सामने आता है कि रोक आदेश पारित किए जाने के एक दिन पूर्व गिरफ्तारी की गई थी । यह भी स्पष्ट है कि प्रथम इत्तिला रिपार्ट में किए गए अभिकथनों पर विचार करने के पश्चात् विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा रिमांड आदेश पारित किया गया था किन्तु यह आदेश सामान्य रूप से या बिना सोचे-समझे पारित नहीं किया गया । यह ध्यान में रखना चाहिए कि अन्वेषण पर रोक लगाने के संबंध में उच्च न्यायालय के आदेश का प्रभाव अन्वेषण अभिक्रम की कार्रवाई से ही संबंधित है । हमारे विचार से रिमांड आदेश एक न्यायिक कार्य है जिसमें कोई कमी नहीं है । उच्च न्यायालय तथा इस न्यायालय के समक्ष केवल यह आधार लिया गया है कि जब एक बार अन्वेषण पर रोक लग जाती है तब रिमांड आदेश संवेदनात्मक रूप

---

[1] ए. आई. आर. 1957 एस. सी. 142.

[2] (1970) 1 एस. सी. सी. 653.

[3] (1980) 1 एस. सी. सी. 554.

से संभाव्य हो जाता है, अतः युक्तियुक्त स्वाभाविक परिणाम के रूप में निरोध बनाए रखे जाने योग्य नहीं होगा । यह उल्लेखनीय है कि अन्वेषण पहले ही आरंभ हो चुका था और इसके परिणामस्वरूप अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया था । इस प्रकार हमारा यह विचार है कि रिमांड आदेश को विधि की दृष्टि से गलत नहीं माना जा सकता है । यह सुस्थापित सिद्धांत है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट पर उस स्थिति में विचार नहीं किया जाना चाहिए जब किसी भी व्यक्ति को किसी सक्षम न्यायालय के आदेश द्वारा न्यायिक अभिरक्षा या पुलिस अभिरक्षा में भेजा जाता है जो प्रथमदृष्ट्या अधिकारातीत प्रतीत नहीं होता हो और न ही यह प्रतीत होता हो कि यह आदेश पूर्णतया बिना सोचे-समझे या अवैध रूप से किया गया है । जैसा कि **बी. आर. राव** (उपरोक्त) और **कानू सान्याल** (उपरोक्त) वाले मामले में कथन किया गया है, न्यायालय से यह अपेक्षा की जाती है कि वह पारित किए गए निरोध आदेश की वैधता की संवीक्षा करे । जब तक कि न्यायालय का यह समाधान नहीं हो जाता है कि किसी व्यक्ति को ऐसे आदेश द्वारा जेल अभिरक्षा में भेजा गया है जिसमें अधिकारिता का अभाव या पूर्णतया अवैधता है, तब तक बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट मंजूर नहीं की जा सकती है । यह उल्लेख करना समुचित होगा कि अन्वेषण, जैसा कि इस न्यायालय के अनेक मामलों में व्यक्त किया गया है, न तो जांच है और न ही विचारण । अन्वेषण का कार्य पुलिस के एकमात्र कार्यक्षेत्र के भीतर आता है और इस पर मजिस्ट्रेट का कोई नियंत्रण नहीं होता है । इस क्रियाकलाप की परिधि स्पष्ट और सुभिन्न है । इस प्रकार विचार किए जाने पर, हमें बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट मंजूर किए जाने से इनकार करने वाले उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश में कोई त्रुटि दिखाई नहीं देती है क्योंकि मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किए गए न्यायिक आदेश के आधार पर किया गया निरोध विधि की दृष्टि से विधिमान्य है ।

33. यद्यपि हमने उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया है, फिर भी हम उच्च न्यायालय से यह निवेदन करते हैं कि वह 2012 की दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं. 10303 का निपटारा छह सप्ताह के भीतर करे । अपीलार्थी को यह स्वतंत्रता प्रदान की जाती है कि वह जमानत मंजूर कराने के लिए, यदि उसे ऐसी सलाह दी जाती है, समुचित न्यायालय के समक्ष आवेदन कर सकता है ।

34. परिणामतः, इसमें इसके ऊपर उल्लिखित उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों के आधार पर अपील सारहीन होने के कारण खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

अस./अनू.

जॉयदेब पात्र और अन्य

बनाम

पश्चिमी बंगाल राज्य

6 मार्च, 2013

न्यायमूर्ति ए. के. पटनायक और न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 – हत्या – मृत्यु का कारण बताने में अभियुक्त की असफलता – अभियुक्तों पर भोजन में विष मिलाने का आरोप – रासायनिक परीक्षण की रिपोर्ट से विष दिया जाना साबित न होना – यदि अभियोजन पक्ष यह साबित न कर सके कि मृत्यु भोजन में विष मिलाने के कारण हुई है और विष न मिलाए जाने की पुष्टि रासायनिक परीक्षण से भी हो जाती है तब ऐसी स्थिति में अभियुक्तों की दोषसिद्धि कायम नहीं रखी जा सकती ।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 106 – व्यक्ति की विशेष जानकारी में किसी तथ्य का होना – व्यक्ति पर साबित करने का भार अभियुक्त के दोष को संदेह के परे साबित करने का भार अभियोजन पक्ष पर है, इसके बाद ही अभियुक्त को उन तथ्यों को साबित करने के लिए बाध्य किया जा सकता है जो उसकी विशेष जानकारी में होते हैं ।

वर्तमान मामले में अभियुक्तों को मृतका के भोजन में विष मिलाकर उसकी हत्या करने के अपराध के लिए विचारण न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किया गया, इसके पश्चात् कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के आदेश की पुष्टि की गई । अभियुक्तों ने उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील की । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय ने निरंतर यह अभिनिर्धारित किया है कि अभियुक्त के दोष को साबित करने का भार संदेह के परे अभियोजन पक्ष पर है और ऐसा केवल तब होगा जब सबूत के भार का निर्वहन हो जाता है और अभियुक्त ऐसे तथ्य को साबित कर सके जो भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 106 के अधीन उसकी विशेष जानकारी में हो ताकि यह सिद्ध किया जा सके कि अभियुक्त दोषी नहीं है । (पैरा 8)

शवपरीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श पी-2) और न्यायालयिक प्रयोगशाला,

पश्चिमी बंगाल राज्य के वरिष्ठ रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट का परिशीलन करने के पश्चात् न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि ऐसा कोई भी साक्ष्य नहीं है कि जिससे यह दर्शित होता हो कि मृतका की मृत्यु भोजन में विष मिलाने से हुई है । फिर भी, तारीख 9 जून, 1988 को अर्थात् लगभग दो वर्ष पश्चात् अभियोजन पक्ष ने न्यायालय में अभि. सा. 12 की परीक्षा किए जाने के समय पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि मृतका की मृत्यु विष के कारण हुई है । न्यायालय की राय में, विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय को मृतका की मृत्यु के दो वर्षों से अधिक समय के पश्चात् न्यायालय में अभि. सा. 12 द्वारा दिए गए साक्ष्य का अवलंब यह अभिनिर्धारित करने के लिए नहीं लेना चाहिए था कि मृतका को विष दिया गया था जबकि न तो शवपरीक्षण रिपोर्ट में और न ही न्यायालयिक प्रयोगशाला, पश्चिमी बंगाल सरकार के वरिष्ठ रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट में ऐसा कोई उल्लेख है जिससे यह दर्शित होता हो कि मृतका को विष दिया गया था । चूंकि अभियोजन पक्ष संदेह के परे यह सिद्ध करने में असफल रहा है कि मृतका को विष दिया गया था, इसलिए अभियोजन पक्षकथन निराधार हो जाता है । (पैरा 6)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2006]	(2006) 12 एस. सी. सी. 306 : **विक्रमजीत सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ;	8
[2001]	(2001) 4 एस. सी. सी. 375 : **सुचा सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ।	8

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2007 की दांडिक अपील सं. 203.

1998 की दांडिक अपील सं. 397 में कलकत्ता उच्च न्यायालय के तारीख 28 जुलाई, 2006 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री (डा.) सुमन्त भारद्वाज, विवेकानंद मिश्रा, (सुश्री) अर्चना पाठक दवे, अजीत कुमार गुप्ता, के. के. शुक्ला, (सुश्री) अंकिता चौधरी, मनोज कुमार और (सुश्री) मृदुला रे भारद्वाज

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री बीजन कुमार घोष और अभिजीत भट्टाचार्य

आदेश

यह अपील 1998 की दांडिक अपील सं. 397 में कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के तारीख 28 जुलाई, 2006 के निर्णय के विरुद्ध की गई है ।

2. संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं कि माधबी पात्र **उर्फ** खेंडी का विवाह जॉयदेब पात्र अर्थात् इस मामले में के अपीलार्थी सं. 1 के साथ हुआ था । इस विवाह से माधबी ने एक पुत्री को जन्म दिया था । वह पुनः गर्भवती हो गई और जब उसको नौ मास का गर्भ था तब तारीख 18 वैशाख, 1393 को "साध" नामक एक रस्म का आयोजन किया गया । भोजन करने के पश्चात् माधबी रोगग्रस्त हो गई और उसकी दशा शीघ्र ही बिगड़ने लगी और देर रात में उसकी मृत्यु हो गई । अभियोजन पक्ष के अनुसार, माधबी (मृतका) की मृत्यु अपीलार्थियों द्वारा उसके भोजन में विष मिलाने के कारण हुई है । तदनुसार, अन्वेषण के पश्चात्, आरोप पत्र फाइल किया गया और अपीलार्थी और उसके पिता, भाई (अपीलार्थी सं. 2), बहिन (अपीलार्थी सं. 3) और माता (अपीलार्थी सं. 4) का विचारण किया गया और उन्हें भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302/34 के अधीन दोषसिद्ध किया गया । अभियुक्तों ने कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष 1988 की दांडिक अपील सं. 397 फाइल की, किन्तु उच्च न्यायालय ने अपने आक्षेपित निर्णय द्वारा अपीलार्थियों की दोषसिद्धि कायम रखी ।

3. हमें यह बताया गया है कि अपीलार्थी सं. 1 के पिता की मृत्यु उस समय हो गई थी जब अपील उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित थी और इस न्यायालय के समक्ष अपील के लंबित रहने के दौरान अपीलार्थी सं. 3 की मृत्यु हो गई है ।

4. हमने अपीलार्थियों और राज्य की ओर से विद्वान् काउन्सेलों को विस्तार से सुना है और हमारा यह निष्कर्ष है कि अपीलार्थियों की दोषसिद्धि अभि. सा. 12 के साक्ष्य पर ही आधारित है जिसने मृतका के शव का शवपरीक्षण किया था और यह रिपोर्ट दी थी कि मृतका की मृत्यु विषाक्त भोजन का सेवन करने से हुई है । विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि चूंकि मृतका की मृत्यु विषाक्त भोजन से हुई है, इसलिए इस सबूत का भार अपीलार्थियों पर था कि मृतका की मृत्यु मानववध नहीं है अपितु आत्महत्या है । हमने विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के निर्णयों का विस्तार से परिशीलन करने

पर यह निष्कर्ष निकाला है कि न्यायालयों के समक्ष अभियुक्तों द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण अविश्वसनीय पाए जाने पर दोनों न्यायालयों द्वारा खारिज किया गया है जिसमें अपीलार्थियों ने अपने संदिग्ध आचरण को स्पष्ट किया है और परिणामस्वरूप यह अभिनिर्धारित किया है कि अपीलार्थी दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध के दोषी हैं ।

5. तथापि, साक्ष्य का परिशीलन करने पर, हमारा यह निष्कर्ष है कि तारीख 3 मई, 1986 (अर्थात् मृतका की मृत्यु की तारीख) को तैयार की गई मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श-बी) में यह उल्लेख किया गया है कि यद्यपि मृतका के नातेदारों ने यह कथन किया है कि उसने विष का सेवन किया है फिर भी, उसके नासाद्वारों और मुख से किसी भी प्रकार के झाग निकलते हुए दिखाई नहीं दिए हैं । तारीख 4 मई, 1986 को अभि. सा. 12 द्वारा तैयार की गई शवपरीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श पी-2) में मृतका की मृत्यु का कारण उल्लिखित नहीं है । अभि. सा. 12 ने शवपरीक्षण में यह कथन किया है :–

> "मृत्यु के कारण से संबंधित राय को अंतड़ियों के संबंध में सी. ई. (रासायनिक परीक्षक) द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट के प्राप्त होने तक लंबित रखा गया है ।"

इस प्रकार मृतका की मृत्यु हो जाने के एक दिन के बाद उसके शव की परीक्षा करने पर अभि. सा. 12 ने मृतका की मृत्यु के कारण के संबंध में निष्कर्ष नहीं निकाला है और न्यायालयिक प्रयोगशाला, पश्चिमी बंगाल सरकार के रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट की प्रतीक्षा करना उचित समझा है । न्यायालयिक प्रयोगशाला, पश्चिमी बंगाल सरकार के वरिष्ठ रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट, विचारण न्यायालय के अभिलेख पर प्रस्तुत है । इस रिपोर्ट में यह उल्लेख किया गया है कि कांच के बड़े जार में अमाशय (अंतर्वस्तु सहित), यकृत, पित्ताशय, वृक्क और प्लीहा मौजूद हैं जो मृतका माधबी पात्र के बताए गए हैं और परखनली में लवण विलयन है जो उपरोक्त अंतड़ियों को परिरक्षित रखने के लिए प्रयोग किया गया है । इस रिपोर्ट में परीक्षण का परिणाम निम्न प्रकार है :–

> "खेंडी **उर्फ** माधबी पात्र की अंतड़ियों में कोई भी विष नहीं पाया गया है ।"

6. शवपरीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श पी-2) और न्यायालयिक प्रयोगशाला, पश्चिमी बंगाल राज्य के वरिष्ठ रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट का परिशीलन करने के पश्चात् हमारी यह सुविचारित राय है कि ऐसा कोई भी

साक्ष्य नहीं है कि जिससे यह दर्शित होता हो कि मृतका की मृत्यु भोजन में विष मिलाने से हुई है । फिर भी, तारीख 9 जून, 1988 को अर्थात् लगभग दो वर्ष पश्चात् अभियोजन पक्ष ने न्यायालय में अभि. सा. 12 की परीक्षा किए जाने के समय पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि मृतका की मृत्यु विष के कारण हुई है । हमारी राय में, विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय को मृतका की मृत्यु के दो वर्षों से अधिक समय के पश्चात् न्यायालय में अभि. सा. 12 द्वारा दिए गए साक्ष्य का अवलंब यह अभिनिर्धारित करने के लिए नहीं लेना चाहिए था कि मृतका को विष दिया गया था जबकि न तो शवपरीक्षण रिपोर्ट में और न ही न्यायालयिक प्रयोगशाला, पश्चिमी बंगाल सरकार के वरिष्ठ रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट में ऐसा कोई उल्लेख है जिससे यह दर्शित होता हो कि मृतका को विष दिया गया था । चूंकि अभियोजन पक्ष संदेह के परे यह सिद्ध करने में असफल रहा है कि मृतका को विष दिया गया था, इसलिए अभियोजन पक्षकथन निराधार हो जाता है ।

7. राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री बीजन घोष ने दृढ़तापूर्वक यह दलील दी है कि चूंकि मृत्यु अपीलार्थी के घर में हुई है इसलिए सबूत का भार अपीलार्थियों पर होगा कि वे यह साबित करें कि मृतका की मृत्यु वास्तव में किस प्रकार हुई । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि मृतका की मृत्यु निस्संदेह अत्यंत रहस्यमय परिस्थितियों में हुई है और जब घटनास्थल के निकट चिकित्सा सुविधा उपलब्ध थी, तब अपीलार्थियों को चिकित्सा सुविधा का उपयोग करना चाहिए था किन्तु ऐसा नहीं किया गया और अपीलार्थियों के आचारण से अभियोजन पक्ष का यह विश्वास बन जाता है कि अपीलार्थी दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराध के दोषी हैं ।

8. हमें खेद है, कि हम श्री घोष की इस दलील को स्वीकार नहीं कर सकते । इस न्यायालय ने निरंतर यह अभिनिर्धारित किया है कि अभियुक्त के दोष को साबित करने का भार संदेह के परे अभियोजन पक्ष पर है और ऐसा केवल तब होगा जब सबूत के भार का निर्वहन हो जाता है और अभियुक्त ऐसे तथ्य को साबित कर सके जो भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 106 के अधीन उसकी विशेष जानकारी में हो ताकि यह सिद्ध किया जा सके कि अभियुक्त दोषी नहीं है । **सुचा सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है :–

---

[1] (2001) 4 एस. सी. सी. 375.

> "हम यह मत व्यक्त करते हैं कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 का आशय अभियोजन पक्ष को यह साबित करने के भार से उन्मुक्त करना नहीं है कि अभियुक्त संदेह के परे दोषी है अपितु यह धारा ऐसे मामलों को लागू होगी जहां अभियोजन पक्ष ऐसे तथ्यों को साबित करने में सफल रहा है जिसके लिए युक्तियुक्त निष्कर्ष कतिपय अन्य तथ्यों के विद्यमान होने के संबंध में तब तक निकाला जा सके जब तक कि अभियुक्त विशेष जानकारी द्वारा ऐसा कोई भी स्पष्टीकरण न दे सके जिसके आधार पर न्यायालय भिन्न निष्कर्ष पर पहुंच सके ।"

इसी प्रकार, **विक्रमजीत सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने ऐसा ही मत व्यक्त किया है :–

> "भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 अभियोजन पक्ष को सभी संदेहों के परे अपना पक्षकथन साबित करने से उन्मुक्त नहीं करती है । जब अभियोजन पक्षकथन साबित कर दिया गया हो, केवल तब ऐसे तथ्यों से संबंधित सबूत का भार जो अभियुक्त की जानकारी में होते हैं अभियुक्त पर आ जाएगा कि वह स्पष्टीकरण दे । निस्संदेह, उक्त नियम के कतिपय अपवाद भी हैं, जैसे कानून के आधार पर अभियुक्त पर साबित करने का भार पड़ता है ।"

9. चूंकि अभियोजन पक्ष युक्तियुक्त संदेह के परे यह सिद्ध करने का भार नहीं उठा सका है कि मृतका की मृत्यु विष देने से हुई है, हमारी राय में, विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय को अपीलार्थियों को मात्र इस कारण दोषी नहीं ठहराना चाहिए था कि अपीलार्थी यह साबित नहीं कर सके कि मृतका की मृत्यु किन परिस्थितियों में हुई है ।

10. तदनुसार, हम यह अपील मंजूर करते हैं और उच्च न्यायालय तथा विचारण न्यायालय के आक्षेपित निर्णयों को अपास्त करते हैं और यह निदेश देते हैं कि अपीलार्थियों के बंधपत्र उन्मोचित किए जाते हैं ।

अपील मंजूर की गई ।

अस./अनू.

---

[1] (2006) 12 एस. सी. सी. 306.

मुख्य कार्यपालक अधिकारी, पांडिचेरी खादी और ग्राम उद्योग बोर्ड और एक अन्य

बनाम

के. अरूकिया राड्जा और अन्य

तथा

पांडिचेरी खादी और ग्राम उद्योग बोर्ड और अन्य

बनाम

के. अरूकिया राड्जा और अन्य

12 मार्च, 2013

न्यायमूर्ति जी. एस. सिंघवी और न्यायमूर्ति एच. एल. गोखले

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 16 [सहपठित पांडिचेरी खादी और ग्राम उद्योग बोर्ड अधिनियम, 1980 की धारा 3 और 15] – सेवा में आमेलन – बोर्ड के अध्यक्ष के वैयक्तिक कर्मचारिवृन्द के रूप में सहविस्तारी आधार पर नियुक्त कर्मचारियों के आमेलन के लिए बोर्ड के संकल्प का राज्यपाल के पास भेजा जाना – चूंकि ये नियुक्तियां न तो रोजगार कार्यालय के माध्यम से और न ही भर्ती प्रक्रिया के माध्यम से की गई थीं बल्कि अध्यक्ष के कार्यकाल के आधार पर सहविस्तारी थीं तथा आमेलन से संबंधित बोर्ड का संकल्प भी प्रशासनिक तंत्र और राज्य के मुख्य सचिव के माध्यम से नेमी अनुक्रम में राज्यपाल के पास नहीं भेजा गया था इसलिए अध्यक्ष का कार्यकाल समाप्त हो जाने के पश्चात् ये नियुक्तियां बनी नहीं रह सकतीं ।

पांडिचेरी खादी और ग्राम उद्योग बोर्ड, पांडिचेरी खादी और ग्राम उद्योग बोर्ड अधिनियम, 1980 की धारा 3 के अधीन गठित एक कानूनी निकाय है । यह बोर्ड विभिन्न खादी कताई/बुनाई/रेशम केन्द्र चला रहा है जो अनेक व्यक्तियों, विशेषकर महिलाओं को नियोजन के अवसर प्रदान करते हैं । यह बोर्ड द्वारा उत्पादित खादी और ग्राम उद्योग माल के विक्रय के लिए अनेक खादी भंडार चलाता है । बोर्ड में विभिन्न स्तरों पर पुडुचेरी सरकार द्वारा यथा-अनुमोदित 219 स्वीकृत पद हैं । इसने इन पदों में से

प्रत्येक पद की बाबत भर्ती नियम/स्थायी आदेश विरचित किए हैं । भारत सरकार ने तारीख 18 मई, 1998 का कार्यालय ज्ञापन जारी किया था जिसमें इस न्यायालय द्वारा यह निदेश दिया गया था कि केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों/स्थापनों (जिनके अंतर्गत अर्ध-सरकारी संस्थाएं और कानूनी संगठन भी आते हैं) के अधीन उद्भूत होने वाली सभी रिक्तियां, उनके स्वरूप और कालावधि को ध्यान में रखे बिना (उनसे भिन्न जो संघ लोक सेवा आयोग के माध्यम से भरी जाती हैं) न केवल अधिसूचित की जानी हैं बल्कि उन्हें केवल रोजगार कार्यालय के माध्यम से ही भरा जाना है । भर्ती के अन्य अनुज्ञेय स्रोतों का केवल तभी सहारा लिया जाना था यदि संबंधित रोजगार कार्यालय ने अनुपलब्धता प्रमाणपत्र जारी कर दिया हो । भर्ती की इस प्रक्रिया से तब तक कोई विचलन नहीं किया जा सकता है जब तक कि श्रम विभाग और मंत्रालय (महानिदेशालय, नियोजन और प्रशिक्षण) के परामर्श से इस संबंध में इससे पूर्व कोई पृथक् व्यवस्था के संबंध में सहमति न हो गई हो । ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन बोर्ड के अध्यक्ष ने पदभार संभालने पर कतिपय व्यक्तियों को अपने वैयक्तिक कर्मचारिवृन्द के रूप में नियोजित करना चाहा । बोर्ड में वैयक्तिक कर्मचारिवृन्द के किसी स्वीकृत पद का कोई उपबंध नहीं था फिर भी उक्त अध्यक्ष ने रोजगार कार्यालय द्वारा समर्थित नाम अभिप्राप्त करने की बजाय पांच व्यक्तियों को अपने वैयक्तिक कर्मचारिवृन्द के रूप में लगा लिया, अर्थात्, प्रस्तुत मामले में चार प्रत्यर्थी और टी. कुमार नामक एक व्यक्ति (अब मृत) । उक्त अध्यक्ष के अनुरोध पर पुडुचेरी सरकार ने प्रत्यर्थियों को सहविस्तारी आधार पर नियुक्त करते हुए सामान्य आदेश जारी किए थे । उन्हें नियत वेतनमान पर नियुक्त किया गया था । इन प्रत्यर्थियों के नियुक्ति आदेशों में स्पष्ट रूप से यह कहा गया था कि उनकी सेवाएं अध्यक्ष का कार्यकाल समाप्त होने पर यथाशीघ्र स्वतः पर्यवसित हो जाएंगी । इस स्थिति के बावजूद, तत्कालीन अध्यक्ष ने एक प्रस्ताव पेश किया और उसे बोर्ड में पारित करा लिया कि खाली पदों के बदले पांच वैयक्तिक कर्मचारियों के आमेलन के लिए एक प्रस्थापना सरकार के पास राज्यपाल के अनुमोदन के लिए भेजी जाए । तथापि, सरकार ने उक्त प्रस्थापना को अनुमोदित करने से इनकार कर दिया । इसलिए, अध्यक्ष ने इन पांच व्यक्तियों के आमेलन के लिए तारीख बोर्ड में एक अन्य प्रस्ताव पारित करा लिया । उक्त अध्यक्ष ने इसके पश्चात् 8 पैराओं वाला एक टिप्पण पुडुचेरी के उप-राज्यपाल को अग्रेषित कर दिया । उक्त टिप्पण के पैरा 7 का पुडुचेरी के तत्कालीन उप-राज्यपाल द्वारा इस तथ्य के बावजूद अनुमोदन कर दिया गया था कि इस बार टिप्पण

संबंधित प्रशासनिक सचिवालय, अर्थात् औद्योगिक विकास (उद्योग और वाणिज्य) तथा पुडुचेरी सरकार के मुख्य सचिव के कार्यालय के माध्यम से नहीं भेजा गया था । इन पांच व्यक्तियों के आमेलन से संबंधित उक्त प्रस्थापना पुडुचेरी राज्य विधानसभा के निर्वाचनों की घोषणा हो जाने के कारण आस्थगित कर दी गई थी । तत्कालीन अध्यक्ष ने अपनी अध्यक्षता से त्यागपत्र दे दिया था जब उसका कार्यकाल समाप्त हो गया था और इसके पश्चात् उसके साथ-साथ सभी चार प्रत्यर्थियों और ऊपर निर्दिष्ट टी. कुमार को भी उनकी सेवाओं से मुक्त कर दिया गया था । प्रत्यर्थियों ने लगभग दो वर्ष पश्चात् रिट याचिका फाइल की जिसमें उस संकल्प और राज्यपाल के अनुमोदन को कार्यान्वित करने का निदेश देने की ईप्सा की गई थी । उन्होंने यह स्वीकार किया था कि उन्हें सहविस्तारी आधार पर नियुक्त किया गया था । उन्होंने यह कथन किया कि अध्यक्ष के त्यागपत्र के पश्चात् उन्हें पहले ही उनकी सेवाओं से हटा दिया गया था । याचिका में इन प्रकथनों के बावजूद, मद्रास उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने इस तथ्य का अवलंब लिया कि उनके आमेलन का अनुमोदन कर दिया गया था और इस मामले को तब तक आस्थगित रखा गया था जब तक वर्ष 2006 के निर्वाचन पूरे नहीं हो जाते और इसके पश्चात् दो वर्ष बीत चुके थे । अतः, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह निदेश दिया कि प्रस्तुत याची (जो कि उस याचिका में प्रत्यर्थी था) यथाशक्य शीघ्रता से, अधिमानतः इस आदेश की प्रति प्राप्त होने की तारीख से छह सप्ताह के भीतर अनुमोदन के टिप्पण के अनुसार कार्यवाही करेगा । यह उल्लेख करना तात्विक है कि याचिका का निपटारा ग्रहण किए जाने के प्रक्रम पर ही कर दिया गया था और प्रस्तुत याची को अभिलेख पर आवश्यक तथ्य, जैसे भर्ती नियम और प्रत्यर्थियों के नियोजन का स्वरूप रखने के लिए उत्तर फाइल करने का कोई अवसर नहीं मिला था । यह आदेश पारित हो जाने के कारण अपीलार्थियों ने मद्रास उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष रिट अपील फाइल की और आवश्यक सामग्री अभिलेख पर प्रस्तुत की । फिर भी न्यायपीठ ने इस तथ्य को महत्व दिया कि बोर्ड ने पांडिचेरी के उप-राज्यपाल से अनुमोदन मांगा था जो कि दे दिया गया था । इसलिए, खंड न्यायपीठ के अनुसार एकल न्यायाधीश के आदेश में कोई त्रुटि नहीं है जिसके द्वारा बोर्ड को प्रस्तुत प्रत्यर्थियों का आमेलन करने संबंधी विनिश्चय को कार्यान्वित करने का निदेश दिया गया था । परिणामस्वरूप, अपील खारिज कर दी गई थी । इसी बीच, प्रत्यर्थियों ने एक रिट याचिका फाइल की चूंकि एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के

बावजूद बोर्ड द्वारा उनके आमेलन के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया जा रहा था । इस द्वितीय रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान याची ने प्रत्यर्थियों के दावे को नामंजूर करते हुए आदेश पारित किया । अतः, प्रत्यर्थियों ने द्वितीय रिट याचिका में संशोधन कर दिया और इस आदेश को चुनौती दी । इस द्वितीय रिट याचिका पर सुनवाई प्रस्तुत अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई अपील के खारिज हो जाने के पश्चात् हुई । इसी कारण, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने उसे मंजूर कर लिया । अपीलार्थियों ने, उस रिट याचिका में पारित निर्णय और आदेश से व्यथित होकर दूसरी विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 4688 फाइल की है जिसकी सुनवाई 2012 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 4669 के साथ की गई है जो कि खंड न्यायपीठ के आदेश को चुनौती देने के लिए फाइल की गई है । इन दो विशेष इजाजत याचिकाओं से उद्भूत होने वाली इन दोनों अपीलों की सुनवाई की गई है और उनका निपटारा एक साथ किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह पूर्णतः स्पष्ट है कि प्रत्यर्थियों को केवल इसलिए नियोजित किया गया था क्योंकि उनके नामों का समर्थन बोर्ड के तत्कालीन अध्यक्ष द्वारा किया गया था । उन्होंने न तो रोजगार कार्यालय के माध्यम से और न ही ऐसी किसी प्रक्रिया के माध्यम से सेवा में प्रवेश किया था जिसमें उन्हें अन्य पात्र अभ्यर्थियों के साथ प्रतिस्पर्धा करनी पड़ी हो । यह भी दृष्टव्य है कि जो प्रस्थापना राज्यपाल के पास उसके अनुमोदन के लिए भेजी गई थी वह संबंधित प्रशासनिक तंत्र के सामान्य माध्यम से और पुडुचेरी के मुख्य सचिव के माध्यम से नहीं भेजी गई थी । चूंकि यह प्रस्थापना प्रशासन के सामान्य माध्यम से नहीं भेजी गई थी इसलिए प्रत्यर्थियों के अनियमित नियोजन के संबंध में वास्तविक स्थिति राज्यपाल के समक्ष प्रस्तुत नहीं की जा सकी थी । सुसंगत तथ्य, जैसे उनके प्रारंभिक नियोजन, बोर्ड में उसी प्रवर्ग में स्वीकृत पदों की उपलभ्यता, कर्मचारियों के नियोजन के संबंध में सुसंगत नियम इत्यादि से संबंधित तथ्य भी राज्यपाल के समक्ष नहीं रखे जा सके थे । फिर भी, स्वयं प्रस्थापना में यह लेखबद्ध किया गया था कि प्रत्यर्थियों ने केवल 3½ वर्ष की सेवा पूरी की है और उन्हें नियमित करने की प्रस्थापना सरकार द्वारा एक बार पहले अस्वीकार की जा चुकी है । पांडिचेरी खादी और ग्राम उद्योग बोर्ड अधिनियम, 1980 की धारा 15 में स्पष्ट रूप से यह अधिकथित किया गया है कि बोर्ड अधिनियम के अधीन अपने कृत्य का

अनुपालन करने में सरकार द्वारा दिए गए निदेशों से आबद्ध है । राज्यपाल को स्वप्रेरणा से कार्यवाही नहीं करनी थी बल्कि उसे मंत्रिपरिषद् की सहायता और परामर्श से कार्यवाही करनी थी । यह प्रश्न सरकार को निर्दिष्ट किया जाना था कि क्या इसके परिणामस्वरूप अतिरिक्त पदों का सृजन करना होगा और इससे अतिरिक्त वित्तीय दायित्व उद्भूत होगा । इसके अलावा, संकल्प में इस निमित्त अध्यक्ष का केवल अनुरोध लेखबद्ध किया गया था । यह बोर्ड का कोई ऐसा संकल्प नहीं था जिसमें विशेष मामले के रूप में नियमितीकरण या विद्यमान सन्नियमों को शिथिल करने का अनुमोदन किया गया हो । (पैरा 15)

ऐसे अस्थायी, संविदागत, आकस्मिक, दैनिक-मजदूरी वाले या तदर्थ कर्मचारियों का, जिन्हें लोक नियोजन में नियुक्त/भर्ती किया गया है और जो लंबे समय तक सेवा में बने हुए हैं, आमेलन, नियमितीकरण या उन्हें स्थायी रूप से बनाए रखना लोक नियोजन की सांविधानिक स्कीम के प्रतिकूल है और ऐसा करना अननुज्ञेय है तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रमणकारी है । इस न्यायालय ने एक बार के अध्युपाय के रूप में अनियमित रूप से नियुक्त किए गए व्यक्तियों की सेवाओं का नियमितीकरण अनुज्ञात किया है बशर्ते उन्होंने सम्यक् रूप से स्वीकृत पदों पर दस वर्ष या उससे अधिक कार्य किया हो । प्रस्तुत मामले में यह स्थिति भी नहीं है । (पैरा 18)

प्रस्तुत मामले में संबंधित विधायक को विधायक के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान अध्यक्ष के रूप में कृत्य करना था और उसने राज्य विधान सभा के लिए निर्वाचन की घोषणा होने पर त्यागपत्र दे दिया था । उसके द्वारा नियुक्त किए गए सह-विस्तारी कर्मचारियों को नियमित करने की प्रस्थापना राज्य सरकार के माध्यम से न भेजकर सीधे राज्यपाल के पास भेज दी गई थी । इसी प्रकार की प्रस्थापनाएं नामंजूर कर दी गई हैं । उचित माध्यम से नियोजित किए जाने की अपेक्षा को कुछ व्यक्तियों के फायदे के लिए मनमानी और लापरवाह रीति में शिथिल नहीं किया जा सकता था । इससे स्पष्ट रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रमण होगा । (पैरा 20)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	(2009) 4 एस. सी. सी. 170 : **भारत संघ** बनाम **धर्म पाल** ;	20

[2006]	(2006) 4 एस. सी. सी. 1 : **सचिव, कर्नाटक राज्य और अन्य** बनाम **उमादेवी (3) और अन्य** ;	17,18
[2005]	2005 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 7859-7877 जिसका विनिश्चय तारीख 6 मार्च, 2006 को किया गया था : **इलांगो और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	9
[1996]	(1996) 6 एस. सी. सी. 216 : **उत्पाद-शुल्क अधीक्षक, मल्कापटनम, जिला कृष्णा, आन्ध्र प्रदेश** बनाम **के. बी. एन. विश्वेश्वर राव और अन्य** ;	4
[1992]	(1992) 3 एस. सी. सी. 226 : **गुजरात राज्य और एक अन्य** बनाम **पी. जे. कम्पावत और अन्य** ।	19

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2013 की सिविल अपील सं. 2323 और 2324.

2011 के रिट आवेदन सं. 1131 में मद्रास उच्च न्यायालय के तारीख 3 अगस्त, 2011 के निर्णयों और आदेशों के विरुद्ध अपीलें ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री आर वेंकटरमणी, ज्येष्ठ अधिवक्ता, वी. जी. प्रागसम, एस. प्रभु रामासुब्रमण्यम्, (सुश्री) सुप्रिया गर्ग, नीलम सिंह और शोधन बाबू

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री सी. रघुनाथ रेड्डी, (सुश्री) सी. सलिला रेड्डी, वी. वसंत कुमार, ए. वी. रंगम और (सुश्री) ऋचा भारद्वाज

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एच. एल. गोखले ने दिया ।

न्या. गोखले – इन दोनों अपीलों में इजाजत दी जाती है ।

2. इन दोनों अपीलों में यह प्रश्न उद्भूत हुआ है कि उन कर्मचारियों को, जिन्हें सहविस्तारी आधार पर नियुक्त किया जाता है, ऐसे व्यक्ति के नियोजन की समाप्ति के पश्चात्, जिनके नियोजन के साथ उनकी सेवाएं सहविस्तारी बनाई गई थीं, सेवा में बने रहने का कोई अधिकार है अथवा नहीं ।

इन अपीलों को उद्भूत करने वाले तथ्य निम्न प्रकार हैं :–

3. पांडिचेरी खादी और ग्राम उद्योग बोर्ड (जिसे संक्षेप में "बोर्ड" कहा गया है) पांडिचेरी खादी और ग्राम उद्योग बोर्ड अधिनियम, 1980 (जिसे संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 3 के अधीन गठित एक कानूनी निकाय है । यह बोर्ड विभिन्न खादी कताई/बुनाई/रेशम केन्द्र चला रहा है जो अनेक व्यक्तियों, विशेषकर महिलाओं को नियोजन के अवसर प्रदान करते हैं । यह बोर्ड द्वारा उत्पादित खादी और ग्राम उद्योग माल के विक्रय के लिए अनेक खादी भंडार चलाता है । बोर्ड में विभिन्न स्तरों पर पुडुचेरी सरकार द्वारा यथा-अनुमोदित 219 स्वीकृत पद हैं । इसने इन पदों में से प्रत्येक पद की बाबत भर्ती नियम/स्थायी आदेश विरचित किए हैं ।

4. भारत सरकार ने तारीख 18 मई, 1998 का कार्यालय ज्ञापन जारी किया था जिसमें इस न्यायालय द्वारा **उत्पाद-शुल्क अधीक्षक, मल्कापटनम, जिला कृष्णा, आन्ध्र प्रदेश** बनाम **के. बी. एन. विश्वेश्वर राव और अन्य**[1] वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों के प्रति निर्देश करने के पश्चात् (जिसमें भर्ती की मुख्य पद्धति के रूप में रोजगार कार्यालयों के माध्यम से भर्ती को मान्यता दी गई है) यह निदेश दिया गया था कि केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों/स्थापनों (जिनके अंतर्गत अर्ध-सरकारी संस्थाएं और कानूनी संगठन भी आते हैं) के अधीन उद्भूत होने वाली सभी रिक्तियां, उनके स्वरूप और कालावधि को ध्यान में रखे बिना (उनसे भिन्न जो संघ लोक सेवा आयोग के माध्यम से भरी जाती हैं) न केवल अधिसूचित की जानी हैं बल्कि उन्हें केवल रोजगार कार्यालय के माध्यम से ही भरा जाना है । भर्ती के अन्य अनुज्ञेय स्रोतों का केवल तभी सहारा लिया जाना था यदि संबंधित रोजगार कार्यालय ने अनुपलब्धता प्रमाणपत्र जारी कर दिया हो । भर्ती की इस प्रक्रिया से तब तक कोई विचलन नहीं किया जा सकता है जब तक कि श्रम विभाग और मंत्रालय (महानिदेशालय, नियोजन और प्रशिक्षण) के परामर्श से इस संबंध में इससे पूर्व कोई पृथक् व्यवस्था के संबंध में सहमति न हो गई हो । इस प्रकार के ऐसे अनुदेश भी प्रवर्तन में हैं जिनमें यह अपेक्षा की गई है कि केन्द्रीय लोक सेक्टर उपक्रम में 500/- रुपए प्रति मास से कम मूल वेतन वाले पदों पर होने वाली रिक्तियां रोजगार कार्यालय के माध्यम से ही भरी जानी हैं ।

5. ऐसा प्रतीत होता है कि श्री पी. आंगलन ने तारीख 12 जुलाई,

---

[1] (1996) 6 एस. सी. सी. 216.

2002 को बोर्ड के अध्यक्ष का पदभार संभाला और उसने कतिपय व्यक्तियों को अपने वैयक्तिक कर्मचारिवृन्द के रूप में नियोजित करना चाहा । बोर्ड में वैयक्तिक कर्मचारिवृन्द के किसी स्वीकृत पद का कोई उपबंध नहीं था फिर भी उक्त अध्यक्ष ने रोजगार कार्यालय द्वारा समर्थित नाम अभिप्राप्त करने की बजाय पांच व्यक्तियों को अपने वैयक्तिक कर्मचारिवृन्द के रूप में लगा लिया, अर्थात्, प्रस्तुत मामले में चार प्रत्यर्थी और टी. कुमार नामक एक व्यक्ति (अब मृत) ।

6. उक्त अध्यक्ष के अनुरोध पर पुडुचेरी सरकार ने प्रत्यर्थियों को सहविस्तारी आधार पर नियुक्त करते हुए तारीख 13 फरवरी, 2003 के सामान्य आदेश जारी किए थे । उन्हें नियत वेतनमान पर नियुक्त किया गया था । इन प्रत्यर्थियों के नियुक्ति आदेशों में स्पष्ट रूप से यह कहा गया था कि उनकी सेवाएं अध्यक्ष का कार्यकाल समाप्त होने पर यथाशीघ्र स्वतः पर्यवसित हो जाएंगी । इन पांच व्यक्तियों की नियुक्ति का अनुमोदन करने वाला सरकारी आदेश निम्नलिखित रूप में है :–

"पांडिचेरी सरकार
औद्योगिक विकास विभाग
(उद्योग और वाणिज्य)

सं. जे.12014/5/2002/ उद्योग एवं वाणिज्य बी. पांडिचेरी 26 मार्च, 2003

सेवा में,

मुख्य कार्यपालक अधिकारी,
पांडिचेरी खादी और ग्राम उद्योग बोर्ड,
प्लॉट सं. 1 और 2, कामराज सलाई,
न्यू सरम, पांडिचेरी ।

महोदय,

विषय : डी.आई.डी.(इंड एंड काम) – बोर्डों/निगमों के अध्यक्ष को वैयक्तिक कर्मचारिवृन्द उपलब्ध कराना – अनुमोदन – संसूचित

संदर्भ 1. कार्मिक और प्रशासनिक सुधार विभाग (कार्मिक खंड), पांडिचेरी का आई.डी. सं. ए.52011/1/2002/डी.पी.एंड ए.आर./एस.एस. आई. (2) तारीख 13 फरवरी, 2003

2. मुख्य कार्यपालक अधिकारी, पांडिचेरी खादी और ग्राम उद्योग

बोर्ड, पांडिचेरी का तारीख 13 मार्च, 2003 का पत्र सं. 1/516/2002/स्था. I

मुझे ऊपर संदर्भाधीन उद्धृत आई.डी. नोट के प्रति ध्यान आकर्षित करने का निदेश हुआ है ।

2. पांडिचेरी खादी और ग्राम उद्योग बोर्ड के अध्यक्ष द्वारा सहविस्तारी आधार पर निम्नलिखित वैयक्तिक कर्मचारिवृन्द रखने के संबंध में, जैसा कि ऊपर उद्धृत दूसरे संदर्भ में अनुरोध किया गया है, सरकार का अनुमोदन संसूचित किया जाता है :–

क्रम सं.	नाम और पता	पद	वेतनमान
1.	के. अरूकिया राड्जा पुत्र कुलन्दई राज, सं. 24, II क्रास, बालाजी नगर, पांडिचेरी-13	आशुलिपिक	4500-125-7000 रु.
2.	जी. अयप्पन, पुत्र गंगाधरन, सं. 29, II क्रास, मारियाम्मन नगर, करमानिकुप्पन, पांडिचेरी-4	वैयक्तिक लिपिक	3050-75-3950-80-4590 रु.
3.	टी. कुमार पुत्र त्यागराजन, थिरूपुर कुमारन स्ट्रीट, मंजोलई, आर्यनकुप्पम, पांडिचेरी-7	स्टाफ कार चालक	3050-75-3950-80-4590 रु.
4.	पी. राजशेखर पुत्र पुरुषोतमन, सं. 8, मेन रोड, सी. एन. पलायम, अरुमापथपुरम (डाकघर) विल्लियानूर वाया, पांडिचेरी-10	चपरासी	2550-55-2660-3200 रु.
5.	एस. रामचन्द्रन पुत्र सुब्रमणि, 64, गंगई अम्मान कायल स्ट्रीट, पिलईचावडी, पांडिचेरी	चपरासी	2550-55-2660-3200 रु.

3. इन पदाधिकारियों की सेवाएं अध्यक्ष के अपने पद पर न रहने पर यथाशीघ्र स्वतः समाप्त हो जाएंगी ।

4. इसके अलावा, यह भी अनुरोध किया जाता है कि निगम के अधिनियम/नियमों में अध्यक्ष के वैयक्तिक कर्मचारिवृन्द के संबंध में उपबंध समाविष्ट करने के लिए प्रस्थापनाएं तुरंत भेजें ।

भवदीय

(पी. एम. इम्मेनुयल)
अवर सचिव, सरकार (इंड एंड काम)''

7. उपर्युक्त अनुमोदन आदेश के आधार पर पांच व्यक्तियों की नियुक्ति के संबंध में तारीख 26 मार्च, 2003 का एक पृथक् कार्यालय आदेश जारी किया गया था, जिसमें उनके निबंधन और शर्तें दी गई थीं, जो कि निम्नलिखित रूप में थीं :–

''.....

सहविस्तारी आधार पर वैयक्तिक कर्मचारिवृन्द के नियोजन के लिए निबंधन और शर्तें

1. व्यष्टि को सहविस्तारी आधार पर नियोजित किया जाता है । इसका अभिप्राय यह है कि व्यष्टि की सेवाएं प्रस्तुत अध्यक्ष के अपने पद पर न रहने/अध्यक्ष के पद पर न रहने पर यथाशीघ्र स्वतः समाप्त हो जाएंगी ।

2. इस नियोजन की अवधि सहविस्तारी आधार पर होगी और वह बोर्ड के अध्यक्ष के कार्यकाल के अनुरूप होगी या तब तक प्रवृत्त रहेगा जब तक अध्यक्ष उसकी सेवा की अपेक्षा करे, इनमें से जो भी पूर्वतर हो । जब उसकी सेवाओं की आवश्यकता समाप्त हो जाती हैं तब उसकी सेवाएं कोई पूर्व सूचना दिए बिना इस कार्यालय से समाप्त हो जाएंगी और वह बोर्ड की सेवा में नियमित नियुक्ति/आमेलन के लिए कोई दावा नहीं करेगा चाहे इस कार्यालय में उसकी सेवाओं की अवधि कितनी भी हो ।

3. उसके नियोजन के लिए कोई वेतन नियतन नहीं किया जाएगा । किन्तु उसके वेतन का दावा सरकार में विद्यमान उसी पद और वेतनमान के समरूप किया जाएगा जिसके विरुद्ध उसे नियोजित किया जाता है और वह प्रत्येक वर्ष उस काल वेतनमान में जिसमें उसे नियोजित किया जाता है, नियमों के अनुसार वेतनवृद्धि उपार्जित

करेगा ।

4. बोर्ड में नियमित नियुक्ति का दावा करने के लिए व्यष्टि को कोई अधिनियम/सेवा नियम/विनियम लागू नहीं किए जाएंगे । उसे बोर्ड में सहविस्तारी आधार पर कार्य करने के कारण बोर्ड में नियमित नियुक्ति का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है ।

5. यह नियोजन न तो अस्थायी/नियमित और न ही तदर्थ आधार पर है । यह अध्यक्ष को जब तक वह पद धारण करता है, सहायता प्रदान करने के प्रयोजनार्थ पूर्णतः केवल सहविस्तारी आधार पर है ।

6. न तो विधिक और न ही बोर्ड द्वारा पारित किया जाने वाला संकल्प व्यष्टि को भविष्य में बोर्ड का नियमित कर्मचारी बनाने के लिए उसके संबंध में जारी किए गए आदेशों पर बाध्यकर होगा ।

7. सहविस्तारी आधार पर कार्य करने के कारण बोर्ड उसे किसी पद पर चयन करने के लिए कोई अधिमानता नहीं देगा यदि भविष्य में कोई भर्ती की जाती है ।

8. व्यष्टि ने बोर्ड में चाहे कितनी अवधि की सेवा क्यों न की हो, वह किसी प्रयोजन के लिए हिसाब में नहीं ली जाएगी ।

9. व्यष्टि को नियमित नियुक्ति के लिए उसके द्वारा की गई सेवाओं का दावा करने के संबंध में कहीं भी, अर्थात्, उच्चतर प्राधिकारी/विधिक प्राधिकारी के पास जाने का अधिकार नहीं है ।

10. नियमित कर्मचारी द्वारा लिए जाने वाले फायदे सहविस्तारी आधार पर नियोजित व्यष्टि को लागू नहीं किए जाएंगे । नियमित कर्मचारियों के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया और नियम सहविस्तारी आधार पर किए गए नियोजन के मामले में नहीं अपनाए जाएंगे ।

11. वह मानवीय आधार पर ऐसी आकस्मिक छुट्टी का उपभोग करेगा, जैसी बोर्ड उचित समझे ।

12. व्यष्टि मानवीय आधार पर यात्रा भत्ते का दावा कर सकेगा यदि उसे अध्यक्ष द्वारा यात्रा पर जाने की अनुज्ञा दी जाती है चूंकि उसे यात्रा के लिए व्यय उपगत करना होता है । उसकी सेवाएं केवल अध्यक्ष के कार्यालय तक न कि बोर्ड तक सीमित होंगी ।

13. व्यष्टि अध्यक्ष के कार्यालय में उसके द्वारा किए गए शासकीय कर्तव्य के संबंध में अतिकाल भत्ते का दावा कर सकेगा ।

14. व्यष्टि चिकित्सा प्रमाणपत्र और चरित्र और पूर्ववृत्त प्रस्तुत करने से छूट प्राप्त है चूंकि यह भर्ती नियमों के अनुसार बोर्ड द्वारा/भर्ती समिति द्वारा चयनित कोई नियमित/अस्थायी/तदर्थ नियुक्ति नहीं है ।

15. यदि उसकी सेवा अवधि के दौरान उसे किसी अवचार के अधीन पाया जाता है या वह किसी प्रकार के आपराधिक मामले में अंतर्वलित होता है तो उसकी सेवाएं कोई सूचना दिए बिना तुरंत समाप्त कर दी जाएंगी ।

16. व्यष्टि को अतिकाल भत्ते और यात्रा भत्ते की उपर्युक्त सुविधाओं के सिवाय कोई अन्य सेवा निबंधन और शर्तें लागू नहीं की जाएंगी ।

यदि अभ्यर्थी सहविस्तारी नियोजन के लिए उक्त निबंधनों और शर्तों को स्वीकार कर रहा है तो उसे उक्त कार्यालय आदेश की प्राप्ति से 10 दिन के समय के भीतर अपने जीवन-वृत्त/अन्य प्रमाणपत्रों सहित अधोहस्ताक्षरी के समक्ष कर्तव्य के लिए रिपोर्ट करने का निदेश दिया जाता है ।

....."

8. बोर्ड ने सरकार से अनुमोदन प्राप्त करने के पश्चात् संबंधित पांच व्यक्तियों को तारीख 22 जनवरी, 2004 को आवश्यक नियुक्ति आदेश जारी कर दिए जिनमें उन्हें भूतलक्षी रूप से तारीख 22 जुलाई, 2002 से वैयक्तिक कर्मचारिवृन्द के रूप में नियोजित किया गया था यद्यपि उनमें पुनः यह स्पष्ट किया गया था कि ये नियुक्तियां सहविस्तारी आधार पर हैं । इस स्थिति के बावजूद, तत्कालीन अध्यक्ष ने एक प्रस्ताव पेश किया और उसे तारीख 31 अगस्त, 2005 को बोर्ड में पारित करा लिया कि खाली पदों के बदले पांच वैयक्तिक कर्मचारियों के आमेलन के लिए एक प्रस्थापना सरकार के पास राज्यपाल के अनुमोदन के लिए भेजी जाए । तथापि, सरकार ने उक्त प्रस्थापना को अनुमोदित करने से इनकार कर दिया । इसलिए, अध्यक्ष ने इन पांच व्यक्तियों के आमेलन के लिए तारीख 17 फरवरी, 2006 को बोर्ड में एक अन्य प्रस्ताव पारित करा लिया । उक्त अध्यक्ष ने इसके पश्चात् 8 पैराओं वाला एक टिप्पण पुडुचेरी के उप-राज्यपाल को अग्रेषित कर दिया । इस टिप्पण के पैरा 5 से पैरा 8

निम्नलिखित रूप में हैं :–

"5. तदनुसार, उक्त पांच वैयक्तिक कर्मचारियों की संबंधित पदों पर 3½ वर्ष की निरन्तर सेवा और अनुभव को ध्यान में रखते हुए आमेलन के लिए एक प्रस्थापना भेजी गई थी । जबकि सरकार उस प्रस्थापना से इस आधार पर सहमत नहीं हुई कि उपर्युक्त नियुक्तियां अध्यक्ष के कार्यकाल के साथ सहविस्तारी आधार पर की गई थीं ।

6. उक्त विषयवस्तु पर पुनः तारीख 17 फरवरी, 2006 को आयोजित बोर्ड की बैठक में विचार-विमर्श किया गया था जिसमें निम्न प्रकार प्रस्ताव पारित किया गया है –

'बोर्ड को यह सूचित किया गया था कि अध्यक्ष के वैयक्तिक कर्मचारिवृन्द के आमेलन के लिए भेजी गई पूर्ववर्ती प्रस्थापना सरकार द्वारा अनुमोदित नहीं की गई है । तथापि, अध्यक्ष ने यह वांछा की है कि विद्यमान सन्नियमों को शिथिल करके आवश्यक न्यायौचित्य सहित एक विशेष मामले के रूप में एक पृथक् टिप्पण अनुमोदनार्थ भेजा जाए । बोर्ड ने उसका समर्थन किया है ।'

7. इस तथ्य पर विचार करते हुए कि उक्त प्रस्थापना में पदों का अतिरिक्त सृजन अंतर्वलित नहीं है जिससे अतिरिक्त वित्तीय दायित्व अंतर्वलित होता हो, भर्ती नियमों के किसी उपबंध को, जहां कहीं भी आवश्यक महसूस किया जाए, शिथिल करने की बोर्ड को शक्ति प्राप्त है, उक्त वैयक्तिक कर्मचारिवृन्द द्वारा की गई सेवा अवधि और बोर्ड द्वारा किए गए विचार-विमर्श को ध्यान में रखते हुए सरकार से विशेष मामले के रूप में विद्यमान सन्नियमों को शिथिल करते हुए अध्यक्ष के पांच वैयक्तिक कर्मचारिवृन्द के आमेलन की उक्त प्रस्थापना का अनुमोदन करने की ईप्सा की जाती है ।

8. वैयक्तिक कर्मचारिवृन्द के जीवन-वृत्त परिशीलनार्थ फाइल में रखे गए हैं ।"

उक्त टिप्पण के पैरा 7 का पुडुचेरी के तत्कालीन उप-राज्यपाल द्वारा तारीख 26 फरवरी, 2006 को इस तथ्य के बावजूद अनुमोदन कर दिया गया था कि इस बार टिप्पण संबंधित प्रशासनिक सचिवालय, अर्थात् औद्योगिक विकास (उद्योग और वाणिज्य) तथा पुडुचेरी सरकार के मुख्य सचिव के कार्यालय के माध्यम से नहीं भेजा गया था ।

9. यह उल्लेख करना सुसंगत है कि इससे पूर्व पुडुचेरी विधान-सभा के समरूप स्थिति वाले कुछ अन्य अस्थायी कर्मचारियों की सेवाएं नियमित नहीं की गई थीं और उनकी सेवाएं समाप्त कर दी गई थीं । उन्होंने सेवा-समाप्ति पर केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण में आवेदन किए थे और उनके मूल आवेदन खारिज कर दिए गए थे । उन आदेशों को उच्च न्यायालय द्वारा तथा **इलांगो और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा तारीख 6 मार्च, 2006 के आदेश द्वारा अभिपुष्ट किया गया था । यह उल्लेख करना भी तात्विक है कि इसी बोर्ड द्वारा नियोजित अन्य सहविस्तारी कर्मचारियों से संबंधित सेवाओं के नियमितीकरण के लिए इसी प्रकार की एक प्रस्थापना बाद में तारीख 17 जून, 2008 को उप-राज्यपाल द्वारा भी नामंजूर कर दी गई थी ।

10. इन पांच व्यक्तियों के आमेलन से संबंधित उक्त प्रस्थापना मार्च, 2006 में पुडुचेरी राज्य विधानसभा के निर्वाचनों की घोषणा हो जाने के कारण आस्थगित कर दी गई थी । तत्कालीन अध्यक्ष पी. आंगलन ने अपनी अध्यक्षता से त्यागपत्र दे दिया था जब उसका कार्यकाल तारीख 16 अप्रैल, 2006 को समाप्त हो गया था और इसके पश्चात् उसके साथ-साथ सभी चार प्रत्यर्थियों और ऊपर निर्दिष्ट टी. कुमार को भी उनकी सेवाओं से मुक्त कर दिया गया था ।

11. प्रत्यर्थियों ने लगभग दो वर्ष पश्चात् रिट याचिका फाइल की जो कि 2008 की रिट याचिका सं. 3181 है, जिसमें तारीख 17 फरवरी, 2006 को संकल्प और तारीख 26 फरवरी, 2006 के अनुमोदन को कार्यान्वित करने का निदेश देने की ईप्सा की गई थी । उन्होंने अपनी रिट याचिका के पैरा 3 में यह स्वीकार किया था कि उन्हें सहविस्तारी आधार पर नियुक्त किया गया था । उसके पैरा 6 में उन्होंने यह कथन किया कि अप्रैल, 2006 में अध्यक्ष के त्यागपत्र के पश्चात् उन्हें पहले ही उनकी सेवाओं से हटा दिया गया था । याचिका में इन प्रकथनों के बावजूद, मद्रास उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने इस तथ्य का अवलंब लिया कि उनके आमेलन का अनुमोदन कर दिया गया था और इस मामले को तब तक आस्थगित रखा गया था जब तक वर्ष 2006 के निर्वाचन पूरे नहीं हो जाते और इसके पश्चात् दो वर्ष बीत चुके थे । अतः, विद्वान् एकल

---

[1] 2005 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 7859-7877 जिसका विनिश्चय तारीख 6 मार्च, 2006 को किया गया था ।

न्यायाधीश ने तारीख 26 फरवरी, 2008 के आदेश द्वारा यह निदेश दिया कि प्रस्तुत याची (जो कि उस याचिका में प्रत्यर्थी था) यथाशक्य शीघ्रता से, अधिमानतः इस आदेश की प्रति प्राप्त होने की तारीख से छह सप्ताह के भीतर अनुमोदन के टिप्पण के अनुसार कार्यवाही करेगा । यह उल्लेख करना तात्विक है कि याचिका का निपटारा ग्रहण किए जाने के प्रक्रम पर ही कर दिया गया था और प्रस्तुत याची को अभिलेख पर आवश्यक तथ्य, जैसे भर्ती नियम और प्रत्यर्थियों के नियोजन का स्वरूप रखने के लिए उत्तर फाइल करने का कोई अवसर नहीं मिला था ।

12. यह आदेश पारित हो जाने के कारण अपीलार्थियों ने मद्रास उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष 2011 की रिट अपील सं. 1131 फाइल की और आवश्यक सामग्री अभिलेख पर प्रस्तुत की । फिर भी न्यायपीठ ने इस तथ्य को महत्व दिया कि बोर्ड ने पांडिचेरी के उप-राज्यपाल से अनुमोदन मांगा था जो कि दे दिया गया था । इसलिए, खंड न्यायपीठ के अनुसार एकल न्यायाधीश के आदेश में कोई त्रुटि नहीं है जिसके द्वारा बोर्ड को प्रस्तुत प्रत्यर्थियों का आमेलन करने संबंधी विनिश्चय को कार्यान्वित करने का निदेश दिया गया था । परिणामस्वरूप, अपील खारिज कर दी गई थी ।

13. इसी बीच, प्रत्यर्थियों ने 2010 की रिट याचिका सं. 13428 फाइल की चूंकि 2008 की रिट याचिका सं. 3181 में एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के बावजूद बोर्ड द्वारा उनके आमेलन के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया जा रहा था । इस द्वितीय रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान याची ने प्रत्यर्थियों के दावे को नामंजूर करते हुए तारीख 10 जनवरी, 2011 का आदेश पारित किया । अतः, प्रत्यर्थियों ने द्वितीय रिट याचिका में संशोधन कर दिया और तारीख 10 जनवरी, 2011 के इस आदेश को चुनौती दी । इस द्वितीय रिट याचिका पर सुनवाई प्रस्तुत अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई 2011 की अपील सं. 1131 के खारिज हो जाने के पश्चात् हुई । इसी कारण, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने, जिसने 2010 की रिट याचिका सं. 13428 की सुनवाई की थी, उसे मंजूर कर लिया और प्रस्तुत अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई रिट अपील की खारिजी के प्रति निर्देश करने के पश्चात् तारीख 10 जनवरी, 2011 के आदेश को अभिखंडित कर दिया । अपीलार्थियों ने, उस रिट याचिका में पारित निर्णय और आदेश से व्यथित होकर 2012 की दूसरी विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 4688 फाइल की है जिसकी सुनवाई 2012 की विशेष

इजाजत याचिका (सिविल) सं. 4669 के साथ की गई है जो कि 2011 की रिट अपील सं. 1131 में खंड न्यायपीठ के आदेश को चुनौती देने के लिए फाइल की गई है । इन दो विशेष इजाजत याचिकाओं से उद्भूत होने वाली इन दोनों अपीलों की सुनवाई की गई है और उनका निपटारा एक साथ किया जा रहा है ।

परस्पर-विरोधी पक्षकारों के निवेदन पर विचार करना :–

14. अपीलार्थियों की मुख्य दलील यह है कि जैसा कि तथ्यों के उपरोक्त वर्णन से दर्शित होता है, प्रत्यर्थियों का नियोजन स्पष्टतः सहविस्तारी आधार पर था । उन्हें इस बात का कोई आश्वासन नहीं था कि वे बोर्ड के अध्यक्ष का कार्यकाल समाप्त हो जाने के पश्चात् सेवा में बने रहेंगे । ऐसे भर्ती नियम और प्रक्रिया थी जिसके द्वारा बोर्ड के अधीन कर्मचारियों को नियोजित किया जाना होता है । अपीलार्थी की ओर से यह दलील दी गई थी कि उनसे कोई विचलन करने का अभिप्राय सरकारी स्थापन/अर्ध सरकारी नियोजन में अनुचित प्रवेश अनुज्ञात करना होगा जो कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रमणकारी होगा । अपीलार्थियों के इस निवेदन के विपरीत प्रत्यर्थियों द्वारा यह इंगित किया गया था कि उनके मामले में बोर्ड द्वारा और उसके बाद उप-राज्यपाल द्वारा अनुमोदन किया गया था । इसी कारण, खंड न्यायपीठ तथा एकल न्यायाधीश द्वारा हमारे समक्ष वाले दो मामलों में पारित उन आदेशों में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं था जिनमें कार्यान्वयन का निदेश दिया गया था ।

15. हमने दोनों पक्षकारों के काउन्सेलों की दलीलों का उल्लेख किया है । तथ्यों के उपर्युक्त वर्णन से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि प्रत्यर्थियों को केवल इसलिए नियोजित किया गया था क्योंकि उनके नामों का समर्थन बोर्ड के तत्कालीन अध्यक्ष द्वारा किया गया था । उन्होंने न तो रोजगार कार्यालय के माध्यम से और न ही ऐसी किसी प्रक्रिया के माध्यम से सेवा में प्रवेश किया था जिसमें उन्हें अन्य पात्र अभ्यर्थियों के साथ प्रतिस्पर्धा करनी पड़ी हो । यह भी दृष्टव्य है कि जो प्रस्थापना राज्यपाल के पास उसके अनुमोदन के लिए भेजी गई थी वह संबंधित प्रशासनिक तंत्र के सामान्य माध्यम से और पुडुचेरी के मुख्य सचिव के माध्यम से नहीं भेजी गई थी । चूंकि यह प्रस्थापना प्रशासन के सामान्य माध्यम से नहीं भेजी गई थी इसलिए प्रत्यर्थियों के अनियमित नियोजन के संबंध में वास्तविक स्थिति राज्यपाल के समक्ष प्रस्तुत नहीं की जा सकी थी । सुसंगत तथ्य, जैसे उनके प्रारंभिक नियोजन, बोर्ड में उसी प्रवर्ग में स्वीकृत पदों की

उपलभ्यता, कर्मचारियों के नियोजन के संबंध में सुसंगत नियम इत्यादि से संबंधित तथ्य भी राज्यपाल के समक्ष नहीं रखे जा सके थे । फिर भी, स्वयं प्रस्थापना में यह लेखबद्ध किया गया था कि प्रत्यर्थियों ने केवल 3½ वर्ष की सेवा पूरी की है और उन्हें नियमित करने की प्रस्थापना सरकार द्वारा एक बार पहले अस्वीकार की जा चुकी है । अधिनियम की धारा 15 में स्पष्ट रूप से यह अधिकथित किया गया है कि बोर्ड अधिनियम के अधीन अपने कृत्य का अनुपालन करने में सरकार द्वारा दिए गए निदेशों से आबद्ध है । राज्यपाल को स्वप्रेरणा से कार्यवाही नहीं करनी थी बल्कि उसे मंत्रिपरिषद् की सहायता और परामर्श से कार्यवाही करनी थी । यह प्रश्न सरकार को निर्दिष्ट किया जाना था कि क्या इसके परिणामस्वरूप अतिरिक्त पदों का सृजन करना होगा और इससे अतिरिक्त वित्तीय दायित्व उद्भूत होगा । इसके अलावा, संकल्प में इस निमित्त अध्यक्ष का केवल अनुरोध लेखबद्ध किया गया था । यह बोर्ड का कोई ऐसा संकल्प नहीं था जिसमें विशेष मामले के रूप में नियमितीकरण या विद्यमान सन्नियमों को शिथिल करने का अनुमोदन किया गया हो ।

16. विद्वान् एकल न्यायाधीश ने 2008 की रिट याचिका सं. 3181 अपीलार्थियों को न्यायालय के समक्ष इन सुसंगत तथ्यों को प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान किए बिना ग्रहण किए जाने के प्रक्रम पर ही मंजूर कर ली थी जिसके कारण गलत विनिश्चय किया गया था । यदि याचिका मंजूर की जानी थी तो कम से कम यह प्रत्याशा थी कि याचिका के प्रत्यर्थियों को अपना उत्तर फाइल करने के लिए अनुज्ञात किया गया होता और उसके बाद किसी एक के पक्ष में विनिश्चय किया जाता । पुनः खंड न्यायपीठ ने भी अपने समक्ष सारवान् विवाद्यक की परीक्षा नहीं की थी यद्यपि रिट अपील में न्यायपीठ के समक्ष सुसंगत सामग्री प्रस्तुत की गई थी । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने, जिसने द्वितीय रिट याचिका की सुनवाई की थी, रिट अपील में मात्र खंड न्यायपीठ के विनिश्चय का अनुसरण किया ।

17. विद्वान् एकल न्यायाधीश, जिसने 2008 की रिट याचिका सं. 3181 की सुनवाई की और खंड न्यायपीठ भी, जिसने रिट अपील की सुनवाई की थी, इस बात को अनदेखा नहीं कर सकते थे कि प्रत्यर्थियों को स्पष्ट रूप से यह बता दिया गया था कि उनकी सेवाएं सहविस्तारी हैं और उनके पास इसके पश्चात् नियोजित किए जाने का कोई अधिकार नहीं होगा । ऊपर निर्दिष्ट निबंधनों और शर्तों की शर्त सं. 4 और 6 इस निमित्त पूर्णतः स्पष्ट हैं । प्रत्यर्थियों ने पूरी सूझबूझ से सहविस्तारी नियुक्ति

स्वीकार की थी । उन्हें तब अपने वियोजन को चुनौती देने की अनुज्ञा नहीं थी जब अध्यक्ष का कार्यकाल समाप्त हो गया था । इस न्यायालय की संविधान पीठ ने **सचिव, कर्नाटक राज्य और अन्य** बनाम **उमादेवी (3) और अन्य**[1] वाले निर्णय के पैरा 45 में जो मताभिव्यक्ति की है वह पूर्णतः स्पष्ट है । उक्त पैरा निम्नलिखित रूप में है :–

> "45. न्यायालय यह निदेश देते समय कि नियुक्तियां, चाहे वे अस्थायी या आकस्मिक हों, नियमित की जाएं या स्थायी बनाई जाएं, इस तथ्य से प्रभावित होते हैं कि संबंधित व्यक्ति ने कुछ समय के लिए और कुछ मामलों में पर्याप्त समयावधि के लिए कार्य किया है । ऐसा नहीं है कि जो व्यक्ति अस्थायी या आकस्मिक स्वरूप का कोई नियोजन स्वीकार करता है, वह अपने नियोजन की प्रकृति के बारे में नहीं जानता । यह सही हो सकता है कि वह सन्निकट सौदेबाजी करने की स्थिति में नहीं होता है चूंकि हो सकता है कि वह अपनी जीविका चलाने के लिए किसी रोजगार की तलाश कर रहा हो और जो कुछ उसे प्राप्त होता है वह उसे स्वीकार कर लेता है । किन्तु एकमात्र उस आधार पर नियुक्ति की सांविधानिक स्कीम को नकारना और यह दृष्टिकोण अपनाना उचित नहीं होगा कि ऐसे व्यक्ति को, जो अस्थायी तौर पर या आकस्मिक रूप से नियोजित हो गया है, स्थायी तौर पर बने रहने का निदेश दिया जाए । ऐसा करके लोक नियुक्ति की एक अन्य पद्धति का सृजन हो जाएगा जो कि अनुज्ञेय नहीं है ।....."

18. जैसा कि इस न्यायालय ने **उमादेवी** (उपर्युक्त) वाले मामले में कथन किया है, ऐसे अस्थायी, संविदागत, आकस्मिक, दैनिक-मजदूरी वाले या तदर्थ कर्मचारियों का, जिन्हें लोक नियोजन में नियुक्त/भर्ती किया गया है और जो लंबे समय तक सेवा में बने हुए हैं, आमेलन, नियमितीकरण या उन्हें स्थायी रूप से बनाए रखना लोक नियोजन की सांविधानिक स्कीम के प्रतिकूल है और ऐसा करना अननुज्ञेय है तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रमणकारी है । जैसा कि एस. एस. सी. में रिपोर्ट के पैरा 53 में लेखबद्ध किया गया है, इस न्यायालय ने एक बार के अध्युपाय के रूप में अनियमित रूप से नियुक्त किए गए व्यक्तियों की सेवाओं का नियमितीकरण अनुज्ञात किया है बशर्ते उन्होंने सम्यक् रूप से स्वीकृत पदों पर दस वर्ष या उससे अधिक कार्य किया हो । प्रस्तुत मामले में यह स्थिति भी नहीं है ।

---

[1] (2006) 4 एस. सी. सी. 1.

19. **गुजरात राज्य और एक अन्य** बनाम **पी. जे. कम्पावत और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के एक अन्य निर्णय में इस न्यायालय ने इसी प्रकार की स्थिति की परीक्षा की । वह एक ऐसा मामला था जिसमें संबंधित व्यक्तियों को मुख्य मंत्री के कार्यालय में अस्थायी आधार पर मुख्य मंत्री के कार्यकाल तक की एक सीमित अवधि के लिए सीधे ही नियुक्त किया गया था । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसी नियुक्ति पूर्णतः संविदागत नियुक्ति थी और वह मुख्य मंत्री के कार्यकाल के साथ सहविस्तारी थी और ऐसी सेवा मुख्य मंत्री के कार्यकाल की समाप्ति के साथ-साथ समाप्त हो गई थी । ऐसी किसी सेवा को समाप्त करने के लिए सेवा-समाप्ति का कोई पृथक् आदेश या कोई सूचना देना भी आवश्यक नहीं था ।

20. हमें यह ध्यान में रखना होगा कि प्रस्तुत मामले में संबंधित विधायक को विधायक के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान अध्यक्ष के रूप में कृत्य करना था और उसने राज्य विधानसभा के लिए निर्वाचन की घोषणा होने पर त्यागपत्र दे दिया था । उसके द्वारा नियुक्त किए गए सहविस्तारी कर्मचारियों को नियमित करने की प्रस्थापना राज्य सरकार के माध्यम से न भेजकर सीधे राज्यपाल के पास भेज दी गई थी । इसी प्रकार की प्रस्थापनाएं नामंजूर कर दी गई हैं । जैसा कि इस न्यायालय ने **भारत संघ** बनाम **धर्म पाल**[2] वाले मामले में मत व्यक्त किया है, उचित माध्यम से नियोजित किए जाने की अपेक्षा को कुछ व्यक्तियों के फायदे के लिए मनमानी और लापरवाह रीति में शिथिल नहीं किया जा सकता था । इससे स्पष्ट रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रमण होगा ।

21. इस पृष्ठभूमि में, विद्वान् एकल न्यायाधीश और खंड न्यायपीठ ने तथा पश्चात्वर्ती विद्वान् एकल न्यायाधीश ने वे आदेश पारित करके, जो उन्होंने पारित किए हैं, गलती की है । उच्च न्यायालय ने 2008 की रिट याचिका सं. 3181 को विनिश्चित करते समय बोर्ड को अध्यक्ष द्वारा जारी किए गए और राज्यपाल द्वारा अनुमोदित संकल्प/टिप्पण को कार्यान्वित करने का निदेश देकर गलती की है । खंड न्यायपीठ ने विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को उस याचिका में अपरिवर्तित छोड़कर गलती की है । इसी प्रकार, उस विद्वान् एकल न्यायाधीश ने गलती की है जिसने द्वितीय रिट याचिका की सुनवाई की थी ।

---

[1] (1992) 3 एस. सी. सी. 226.

[2] (2009) 4 एस. सी. सी. 170.

22. ऊपर कथित कारणों से ये दोनों अपीलें मंजूर की जाती हैं और 2011 की रिट अपील सं. 1131 तथा 2008 की रिट याचिका सं. 3181 और 2010 की रिट याचिका सं. 13428 में के आक्षेपित निर्णय और आदेश अपास्त किए जाते हैं । 2008 की रिट याचिका सं. 3181 और 2010 की रिट याचिका सं. 13428 खारिज की जाती है । परिणामस्वरूप, इन दोनों अपीलों में अंतरिम आवेदन और प्रत्यर्थी द्वारा मद्रास उच्च न्यायालय में फाइल की गई 2011 की अवमान याचिका सं. 1841 का भी निपटारा किया जाता है । प्रस्तुत मामले के तथ्यों के आधार पर हम खर्चों के बारे में कोई आदेश पारित नहीं करते हैं ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

ग्रो.

[2014] 1 उम. नि. प. 44

उत्तराखंड राज्य

बनाम

योगेन्द्र नाथ अरोड़ा

18 मार्च, 2013

न्यायमूर्ति चन्द्रमौली कुमार प्रसाद और न्यायमूर्ति वी. गोपाल गौड़ा

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) – धारा 19 – [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 197] – अभियोजन के लिए पूर्व मंजूरी – सक्षम प्राधिकारी – धारा 19 में प्रयुक्त ''पद से हटाना'' शब्दों से नियोजन समाप्त करना अभिप्रेत है किन्तु किसी प्रतिनियुक्त व्यक्ति के उसके मूल विभाग में प्रत्यावर्तन से नियोजन समाप्त नहीं होता है इसलिए प्रत्यावर्तित करने के लिए सशक्त प्राधिकारी अभियोजन के लिए मंजूरी प्रदान करने के लिए सक्षम नहीं है ।

प्रस्तुत मामले में प्रत्यर्थी उत्तर प्रदेश राज्य के एक उपक्रम, उत्तर प्रदेश इंडस्ट्रियल कंसलटेंट्स में उप महाप्रबंधक के रूप में नियोजित था । उत्तर प्रदेश राज्य के पुनर्गठन के परिणामस्वरूप प्रतिनियुक्ति पर ले लिया गया था और उत्तराखंड राज्य के एक सरकारी उपक्रम, राज्य औद्योगिक विकास निगम के उप महाप्रबंधक के रूप में तैनात किया गया था । निगम

के उप महाप्रबंधक के रूप में कार्य करते हुए एक जाल बिछाया गया था और उसे 30,000/- रुपए का अवैध परितोषण स्वीकार करते हुए गिरफ्तार किया गया था । इसके परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(घ) और 13(2) के साथ पठित धारा 7 के अधीन एक दांडिक मामला फाइल किया गया था । अभियुक्त को उसी दिन उत्तराखंड राज्य की सरकार द्वारा उसके मूल संगठन में प्रत्यावर्तित कर दिया गया था । उसने उसके अभियोजन के लिए मंजूरी भी प्रदान कर दी और नैनीताल के विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार-निरोध-II के न्यायालय में आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था । अभियुक्त ने अन्य बातों के साथ-साथ यह दलील देते हुए दोषमुक्त करने की प्रार्थना की कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री आरोप विरचित करने के लिए पर्याप्त नहीं है और इसके अलावा, अधिनियम की धारा 19(1)(ग) के अधीन यथापेक्षित सक्षम प्राधिकारी की विधिमान्य मंजूरी के अभाव में विचारण वैध रूप से नहीं चलाया जा सकता है । विशेष न्यायाधीश ने उसकी इस दलील को नामंजूर कर दिया कि आरोप विरचित करने के लिए अभिलेख पर पर्याप्त सामग्री विद्यमान है और उसकी प्रार्थना नामंजूर कर दी थी । प्रत्यर्थी ने इससे व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि अभियुक्त उत्तर प्रदेश राज्य सरकार के एक उपक्रम का कर्मचारी है और उसे उसके मूल विभाग में प्रत्यावर्तित कर दिया गया है इसलिए उत्तर प्रदेश राज्य सरकार ही उसे हटाने के लिए और आवश्यक मंजूरी प्रदान करने के लिए सक्षम है । तदनुसार, उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी के अभियोजन को इसलिए अभिखंडित कर दिया कि उसमें विधिमान्य मंजूरी नहीं थी और ऐसा करते समय उसने यह मत व्यक्त किया कि उत्तराखंड राज्य सरकार, उत्तर प्रदेश राज्य सरकार से विधिमान्य मंजूरी अभिप्राप्त करने के पश्चात् अभियुक्त के विरुद्ध अभियोजन चलाने के लिए स्वतंत्र होगी । उपर्युक्त आदेश से व्यथित होकर उत्तराखंड राज्य ने विशेष इजाजत लेकर प्रस्तुत अपील फाइल की है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – पद से वह स्थिति अभिप्रेत है जो उसे धारण करने वाले व्यक्ति से कतिपय कर्तव्यों का पालन करने और कतिपय बाध्यताओं का निर्वहन करने की अपेक्षा करती है और उसके पद से हटाने का अभिप्राय उसे स्थायी रूप से हटाना है । प्रत्यावर्तन द्वारा प्रतिनियुक्ति पर पद धारण

करने वाले व्यक्ति के लिए उस कर्तव्य का पालन करना और उस पद की बाध्यता का निर्वहन करना आवश्यक नहीं है किन्तु फिर भी वह पद धारण किए रहता है और उस आधार पर कतिपय अन्य कर्तव्यों का पालन करता है और कतिपय अन्य बाध्यताओं का निर्वहन करता है । अतः, प्रत्यावर्तित करने की शक्ति के अंतर्गत अधिनियम की धारा 19(1)(ग) के अधीन यथा-परिकल्पित पद से हटाने की शक्ति नहीं आती है । 'हटाना' शब्द से पद से हटाने का कार्य या किसी नियोजन को समाप्त करना अभिप्रेत है । पदच्युति और सेवा से हटाने के बीच विभेद यह है कि पूर्ववर्ती साधारणतया भावी नियोजन से निरर्हित करता है किन्तु पश्चात्वर्ती में ऐसा नहीं है । (पैरा 11)

अभियुक्त के अभियोजन की मंजूरी के लिए उत्तराखंड राज्य सरकार की प्रार्थना अभी उत्तर प्रदेश राज्य सरकार के समक्ष लंबित है । अतः, यह समीचीन है कि पश्चात्वर्ती को इस प्रकार की गई प्रार्थना पर विनिश्चय, यदि पहले नहीं किया गया है तो इस आदेश की संसूचना की तारीख से आठ सप्ताह के भीतर कर देना चाहिए । यह स्पष्ट किया जाता है कि उत्तराखंड राज्य सरकार द्वारा की गई प्रार्थना के गुणागुण के संबंध में कोई राय अभिव्यक्त नहीं की जा रही है और उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा उसका विनिश्चय विधि के अनुसार उसके अपने गुणागुण के आधार पर किया जाएगा । (पैरा 12)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1984]	[1984] 3 उम. नि. प. 661 = (1984) 2 एस. सी. सी. 183 : **आर. एस. नायक** बनाम **ए. आर. अंतुले** ;	8
[1975]	[1975] 3 उम. नि. प. 555 = (1975) 1 एस. सी. सी. 784 : **वी. के. शर्मा** बनाम **राज्य (दिल्ली प्रशासन)** ।	12

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2013 की दांडिक अपील सं. 459.

2005 के दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं. 740 में उत्तराखंड उच्च न्यायालय की नैनीताल न्यायपीठ के तारीख 6 नवम्बर, 2006 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सुश्री रचना श्रीवास्तव और श्री उत्कर्ष शर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री आर. जी. श्रीवास्तव, बलराज दीवान और वी. एन. रघुपति

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति चन्द्रमौली कुमार प्रसाद ने दिया ।

न्या. चन्द्रमौली कुमार प्रसाद – योगेन्द्र नाथ अरोड़ा (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अभियुक्त' कहा गया है) इससे पूर्व उत्तर प्रदेश राज्य के एक उपक्रम, उत्तर प्रदेश इंडस्ट्रियल कंसलटेंट्स में उप महाप्रबंधक के रूप में नियोजित था । उत्तर प्रदेश राज्य के पुनर्गठन के परिणामस्वरूप उसे 23 जनवरी, 2003 को प्रतिनियुक्ति पर ले लिया गया था और उत्तराखंड राज्य के एक सरकारी उपक्रम, राज्य औद्योगिक विकास निगम (जिसे इसमें इसे पश्चात् 'निगम' कहा गया है) के उप महाप्रबंधक के रूप में तैनात किया गया था । निगम के उप महाप्रबंधक के रूप में कार्य करते हुए तारीख 30 जून, 2004 को एक जाल बिछाया गया था और उसे 30,000/- रुपए का अवैध परितोषण स्वीकार करते हुए गिरफ्तार किया गया था । इसके परिणामस्वरूप जिला देहरादून के दालनवाला पुलिस थाने में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 13(1)(घ) और 13(2) के साथ पठित धारा 7 के अधीन 2004 का दांडिक मामला सं. 168 फाइल किया गया था । अभियुक्त को उसी दिन उत्तराखंड राज्य की सरकार द्वारा उसके मूल संगठन में प्रत्यावर्तित कर दिया गया था । उसने तारीख 23 अगस्त, 2004 को उसके अभियोजन के लिए मंजूरी भी प्रदान कर दी और नैनीताल के विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार-निरोध-II के न्यायालय में तारीख 25 अगस्त, 2004 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था । अभियुक्त ने अन्य बातों के साथ-साथ यह दलील देते हुए दोषमुक्त करने की प्रार्थना की कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री आरोप विरचित करने के लिए पर्याप्त नहीं है और इसके अलावा, अधिनियम की धारा 19(1)(ग) के अधीन यथापेक्षित सक्षम प्राधिकारी की विधिमान्य मंजूरी के अभाव में विचारण वैध रूप से नहीं चलाया जा सकता है । विशेष न्यायाधीश ने तारीख 18 अगस्त, 2005 के अपने आदेश द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ यह मत व्यक्त करते हुए उसकी दलील को नामंजूर कर दिया कि आरोप विरचित करने के लिए अभिलेख पर पर्याप्त सामग्री विद्यमान है । मंजूरी के अभाव के अभिवाक् के संबंध में विद्वान् न्यायाधीश ने निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

"चूंकि मंजूरी का प्रश्न मामले के विचारण के लिए मात्र आनुषंगी

है इसलिए उस पर इस प्रक्रम पर विचार नहीं किया जाना चाहिए । यह निःसंदिग्ध रूप से सही है कि अभियुक्त उत्तर प्रदेश राज्य का एक कर्मचारी था और वह उत्तराखंड राज्य में प्रतिनियुक्ति पर था और वह उत्तराखंड राज्य के अधीनस्थ और प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन था । इस प्रकार, चूंकि मंजूरी का प्रश्न मामले के विचारण से आनुषंगिक है और अभिलेख का परिशीलन करने पर अभियुक्त को आरोपित करने के लिए अभिलेख पर पर्याप्त सामग्री है इसलिए अभियुक्त को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(घ) और 13(2) के साथ पठित धारा 7 के अधीन आरोपित किया जाएगा ।"

2. तदनुसार, विशेष न्यायाधीश ने अभियुक्त की प्रार्थना नामंजूर कर दी थी ।

3. अभियुक्त ने इससे व्यथित होकर उपर्युक्त आदेश को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । उच्च न्यायालय के समक्ष यह दलील दी गई थी कि चूंकि अभियुक्त उत्तर प्रदेश राज्य सरकार के एक उपक्रम का कर्मचारी था इसलिए उत्तराखंड राज्य सरकार मंजूरी प्रदान करने के लिए सक्षम नहीं है । उच्च न्यायालय ने इस निवेदन को स्वीकार कर लिया । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि अभियुक्त उत्तर प्रदेश राज्य सरकार के एक उपक्रम का कर्मचारी है और उसे उसके मूल विभाग में प्रत्यावर्तित कर दिया गया है इसलिए उत्तर प्रदेश राज्य सरकार ही उसे हटाने के लिए और आवश्यक मंजूरी प्रदान करने के लिए सक्षम है । तदनुसार, उच्च न्यायालय ने अभियुक्त के अभियोजन को इसलिए अभिखंडित कर दिया कि उसमें विधिमान्य मंजूरी नहीं थी और ऐसा करते समय उसने यह मत व्यक्त किया कि उत्तराखंड राज्य सरकार, उत्तर प्रदेश राज्य सरकार से विधिमान्य मंजूरी अभिप्राप्त करने के पश्चात् अभियुक्त के विरुद्ध अभियोजन चलाने के लिए स्वतंत्र होगी ।

4. उपर्युक्त आदेश से व्यथित होकर उत्तराखंड राज्य ने विशेष इजाजत लेकर प्रस्तुत अपील फाइल की है ।

5. इजाजत दी जाती है ।

6. यह सामान्य आधार है कि उत्तराखंड राज्य सरकार ने प्रस्तुत अपील में दी गई दलील पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना उत्तर प्रदेश राज्य

सरकार को मंजूरी प्रदान करने के लिए लिखा है । किन्तु आजतक कोई भी विनिश्चय संसूचित नहीं किया गया है ।

7. उत्तराखंड राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् काउन्सेल सुश्री रचना श्रीवास्तव ने यह स्वीकार किया है कि अधिनियम की धारा 7 और धारा 13 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए किसी अभियुक्त के अभियोजन के लिए सक्षम राज्य सरकार की मंजूरी आवश्यक है । उसने यह इंगित किया कि चूंकि अभियुक्त उत्तराखंड राज्य सरकार के एक उपक्रम में प्रतिनियुक्ति पर था इसलिए उस सरकार के पास उसे प्रत्यावर्तित करने की शक्ति थी जिससे उत्तराखंड राज्य सरकार द्वारा पद से हटाने की शक्ति अभिप्रेत होगी । उसके अनुसार, किसी अभियुक्त को पद से निष्कासित करने और उसे प्रत्यावर्तित करने से उसे पद से हटाना अभिप्रेत होगा । उसके अनुसार, पद से हटाने का अभिप्राय सेवा से हटाना नहीं होगा । उसने इस बात पर जोर दिया कि धारा 19(1)(ग) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति 'उसके पद से हटाना' न कि 'सेवा से हटाना' है । अधिनियम की धारा 19(1)(ग) जो कि इस प्रयोजन के लिए सुसंगत है, निम्न प्रकार है : –

> "19. अभियोजन के लिए पूर्व मंजूरी का आवश्यक होना - (1) कोई न्यायालय धारा 7, धारा 10, धारा 11, धारा 13 और धारा 15 के अधीन दंडनीय किसी ऐसे अपराध का संज्ञान, जिसकी बाबत यह अभिकथित है कि वह लोक सेवक द्वारा किया गया है, निम्नलिखित की पूर्व मंजूरी के बिना नहीं करेगा, –
>
> (क) * * *
>
> (ख) * * *
>
> (ग) किसी अन्य व्यक्ति की दशा में, उसे उसके पद से हटाने के लिए सक्षम प्राधिकारी ।"

8. इस दलील के समर्थन में **आर. एस. नायक** बनाम **ए. आर. अंतुले**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय का अवलंब लिया गया है और हमारा ध्यान उस निर्णय के पैरा 23 के निम्नलिखित पद्यांश की ओर आकृष्ट किया गया है जो कि इस प्रकार है :–

> "....धारा 6 की उपधारा (1) के तीन खंडों में से प्रत्येक 'पद'

---

[1] [1984] 3 उम. नि. प. 661 = (1984) 2 एस. सी. सी. 183.

अभिव्यक्ति का प्रयोग करता है और मंजूरी अनुदत्त करने की शक्ति लोक सेवक को उसके पद से हटाने के लिए सक्षम प्राधिकारी को प्रदत्त की गई है और धारा 6 लोक सेवक द्वारा किए गए अपराध का संज्ञान करने से पूर्व मंजूरी की अपेक्षा करती है । लोक सेवक द्वारा पद की शक्ति का दुष्प्रयोग या दुरुपयोग करके अपराध किया जाता है और उस पद से उसे हटाने के लिए प्राधिकारी को सक्षम होना चाहिए जिससे कि वह मंजूरी प्रदत्त करने का हकदार हो सके । हटाए जाने से पद और पद के धारक के बीच परस्पर संबंध समाप्त हो जाएगा । दुरुपयोग करने के अवसर के साथ शक्ति और पद के धारक के बीच संबंध पद से अलग करके पृथक् कर दिया जाएगा इसलिए जब कोई लोक सेवक किसी शासकीय कार्य को करने या करने से विरत रहने के लिए किसी वैध पारिश्रमिक से भिन्न किसी परितोषण को प्राप्त करने के अपराध से अभियोजित किया जाता है (भारतीय दंड संहिता की धारा 161) या लोक सेवक की हैसियत में धारा 161 और 163 के अधीन दंडनीय अपराधों का दुष्प्रयोग करता है (भारतीय दंड संहिता की धारा 164) या लोक सेवक की हैसियत से ऐसे लोक सेवक द्वारा की गई किसी कार्यवाही या किए गए किसी कारबार से संबंधित व्यक्ति से प्रतिफल के बिना किसी मूल्यवान वस्तु को अभिप्राप्त करता है (भारतीय दंड संहिता की धारा 165) या 1947 के अधिनियम की धारा 5 में यथा परिभाषित दांडिक कदाचार कारित करता है तो विभिन्न अपराधों में यह बात स्पष्ट है कि लोक सेवक ने लोक सेवक की हैसियत में उसके द्वारा धारित पद की शक्ति का दुरुपयोग या दुष्प्रयोग किया है । धारा 6(1) के तीन उपखंडों में 'पद' अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से उस पद को प्रकट करती है जिसका लोक सेवक ने भ्रष्ट हेतुक के लिए दुरुपयोग या दुष्प्रयोग किया है जिसके लिए उसका अभियोजन किया जाना है और जिसके संबंध में उसका अभियोजन करने के लिए मंजूरी उस पद से जिसका कि उसने दुरुपयोग किया है उसे हटाने के लिए हकदार सक्षम प्राधिकारी द्वारा आवश्यक है । पद और उसके दुरुपयोग के संबंध में यह परस्पर संबंध अलग कर दिया जाए तो धारा 6 को अर्थविहीन कर देगा और यह परस्पर संबंध स्पष्ट रूप से धारा 6 के उपबंध को समझने के लिए स्पष्ट संकेत का उपबंध करता है जिसमें ऐसे सक्षम प्राधिकारी द्वारा मंजूरी का उपबंध है जो न्यायालय द्वारा लोक सेवक के विरुद्ध अपराधों का संज्ञान करने के लिए मंजूरी अनुदत्त करके वर्जन को दूर

करने से पूर्व लोक सेवक की कार्यवाही का निर्णय करने में समर्थ होगा, इसलिए अविवादास्पद रूप से यह पता चलता है कि अभियोजन करने की मंजूरी लोक सेवक को उस पद से हटाने के लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा दी जाती है जिसका उसने दुरुपयोग या दुष्प्रयोग किया है क्योंकि केवल वह प्राधिकारी ही इस बात को जानने में समर्थ हो सकेगा कि क्या लोक सेवक द्वारा पद का दुरुपयोग या दुष्प्रयोग किया गया है और न कि कोई बाहरी पदाधिकारी ।"

9. उसने ऋजुतापूर्वक यह स्वीकार किया है कि अभियुक्त को पद से हटाने की शक्ति उत्तर प्रदेश राज्य के पास है और यदि उसकी इस दलील को समर्थन नहीं मिलता है कि प्रत्यावर्तन की शक्ति से सेवा से हटाने की शक्ति अभिप्रेत होगी तो उत्तर प्रदेश राज्य सरकार ही मंजूरी प्रदान करने के लिए सक्षम होगी ।

10. तथापि, अभियुक्त का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् काउन्सेल श्री आर. जी. श्रीवास्तव ने यह दलील दी कि सेवा से हटाना अभिव्यक्ति से सेवा का पर्यवसान करना अभिप्रेत होगा और निर्विवाद रूप से प्रस्तुत मामले के तथ्यों के आधार पर उत्तर प्रदेश राज्य सरकार ही अभियुक्त की सेवा का पर्यवसान करने के लिए सक्षम थी । उसके अनुसार, पद से हटाने का अभिप्राय स्थायी नियोजन से हटाना होगा ।

11. परस्पर-विरोधी दलीलों के आधार पर जो प्रश्न अवधारण के लिए उद्भूत होता है वह यह है कि क्या उसे उसके पद से हटाना अभिव्यक्ति का अभिप्राय उसे वह पद धारण करने से निष्कासित करना और उसे किसी अन्य पद पर स्थानांतरित करना होगा । दूसरे शब्दों में, अभियुक्त को प्रत्यावर्तित करने संबंधी उत्तराखंड राज्य सरकार की शक्ति से यह अभिप्रेत होगा कि उसे हटाने की शक्ति है । हमारी राय में, पद से वह स्थिति अभिप्रेत है जो उसे धारण करने वाले व्यक्ति से कतिपय कर्तव्यों का पालन करने और कतिपय बाध्यताओं का निर्वहन करने की अपेक्षा करती है और उसके पद से हटाने का अभिप्राय उसे स्थायी रूप से हटाना है । प्रत्यावर्तन द्वारा प्रतिनियुक्ति पर पद धारण करने वाले व्यक्ति के लिए उस कर्तव्य का पालन करना और उस पद की बाध्यता का निर्वहन करना आवश्यक नहीं है किन्तु फिर भी वह पद धारण किए रहता है और उस आधार पर कतिपय अन्य कर्तव्यों का पालन करता है और कतिपय अन्य बाध्यताओं का निर्वहन करता है । अतः, प्रत्यावर्तित करने की शक्ति के अंतर्गत अधिनियम की धारा 19(1)(ग) के अधीन यथा-परिकल्पित पद से हटाने की शक्ति नहीं

आती है । 'हटाना' शब्द से पद से हटाने का कार्य या किसी नियोजन को समाप्त करना अभिप्रेत है । पदच्युति और सेवा से हटाने के बीच विभेद यह है कि पूर्ववर्ती साधारणतया भावी नियोजन से निरर्हित करता है किन्तु पश्चात्वर्ती में ऐसा नहीं है । इसलिए, हम सुश्री श्रीवास्तव की इस दलील को नामंजूर करते हैं ।

12. हमने जो दृष्टिकोण अपनाया है उसे **वी. के. शर्मा** बनाम **राज्य (दिल्ली प्रशासन)**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय से समर्थन प्राप्त होता है जिसमें निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "किसी भ्रष्ट सरकारी सेवक को उसके पद से हटाने के लिए सक्षम प्राधिकारी से मंजूरी लेने का तात्पर्य उसे न केवल उसके अस्थायी पद से हटाना बल्कि उसे सरकारी सेवा से हटाना है ।"

13. हमें सुश्री श्रीवास्तव द्वारा यह बताया गया है कि अभियुक्त के अभियोजन की मंजूरी के लिए उत्तराखंड राज्य सरकार की प्रार्थना अभी उत्तर प्रदेश राज्य सरकार के समक्ष लंबित है । अतः, हम यह समीचीन समझते हैं कि पश्चात्वर्ती को इस प्रकार की गई प्रार्थना पर विनिश्चय, यदि पहले नहीं किया गया है तो इस आदेश की संसूचना की तारीख से आठ सप्ताह के भीतर कर देना चाहिए । यह स्पष्ट किया जाता है कि हम उत्तराखंड राज्य सरकार द्वारा की गई प्रार्थना के गुणागुण के संबंध में कोई राय अभिव्यक्त नहीं कर रहे हैं और उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा उसका विनिश्चय विधि के अनुसार उसके अपने गुणागुण के आधार पर किया जाएगा ।

14. इस आदेश की एक प्रति उत्तर प्रदेश राज्य सरकार के मुख्य सचिव के पास तत्काल समुचित कार्यवाही करने के लिए अग्रेषित की जाए ।

15. परिणामतः, हमें इस अपील में कोई सार प्रतीत नहीं होता है और वह तदनुसार उपर्युक्त मताभिव्यक्ति के साथ खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

ग्रो.

---

[1] [1975] 3 उम. नि. प. 555 = (1975) 1 एस. सी. सी. 784.

[2014] 1 उम. नि. प. 53

सूगुरु सुब्रह्मण्यम

बनाम

आंध्र प्रदेश राज्य

4 अप्रैल, 2013

न्यायमूर्ति के. एस. राधाकृष्णन् और न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 – हत्या – अभियुक्त-पति द्वारा पत्नी की हत्या – अपराध का हेतु पत्नी के चरित्र पर संदेह – अपराध के पश्चात् अभियुक्त का फरार होना – अन्यत्र उपस्थित होने का अभिवाक् न किया जाना – पत्नी के साथ बलात्संग किए जाने की पुष्टि न होना – पत्नी की अप्राकृतिक मृत्यु की रिपोर्ट अभियुक्त-पति द्वारा न किया जाना – साक्ष्य की शृंखला का पूर्ण पाया जाना – यदि अभियुक्त ऐसा कोई स्पष्टीकरण न दे सके कि वह अपराध के समय कहां था और उसने अपनी पत्नी की अप्राकृतिक मृत्यु की रिपोर्ट दर्ज क्यों नहीं कराई तथा उसके फरार होने तथा पत्नी के चरित्र पर संदेह करने का तथ्य साबित हो जाए तब उसके विरुद्ध पारिस्थितिक साक्ष्य की शृंखला संपूर्ण हो जाती है और अभियुक्त हत्या के अपराध का दोषी होगा ।

इस मामले में अभियुक्त-पति ने चरित्र पर संदेह करते हुए अपनी पत्नी की हत्या कर दी । अभियुक्त को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज किए जाने के पश्चात् गिरफ्तार किया गया और हत्या के अपराध के लिए उसका विचारण किया गया । विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर इस अपराध का दोषी पाया । अभियुक्त ने आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने भी विचारण न्यायालय के निर्णय को उचित ठहराते हुए अभियुक्त को दोषी माना । अभियुक्त ने उच्च न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर विशेष इजाजत द्वारा उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – परिस्थितियों से स्पष्ट रूप से यह सिद्ध होता है कि वह अपने मकान में थी । अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि प्रातःकाल में शोरगुल सुनाई दिया था, मकान मालकिन ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई, पुलिस आई और उसने मकान को बाहर

से बंद पाया तथा दरवाजे पर लगा ताला साक्षियों की मौजूदगी में तोड़ा गया । यह उल्लेखनीय है कि अभियुक्त ने अन्यत्र उपस्थित होने का अभिवाक् नहीं किया है । इसके प्रतिकूल, फरार होने का तथ्य भी साबित किया गया है । इन परिस्थितियों में, संचयी प्रभाव यह है कि जब पत्नी की मृत्यु हुई उस समय पति मकान में मौजूद था । हिंसक मैथुन के रूप में किया गया बलात्संग और हत्या का सुझाव चिकित्सीय साक्ष्य के आधार पर असत्य पाया गया है और इस निष्कर्ष से भिन्न निष्कर्ष निकालने का कोई कारण नहीं है । पति ने ऐसा कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया है कि वह दुर्घटना की रात में कहां था और मकान का दरवाजा कैसे बंद था । जैसाकि पहले ही कथन किया गया है, वह लंबे समय के लिए फरार हो गया था और उसने अपनी पत्नी की अप्राकृतिक मृत्यु की रिपोर्ट करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया । उपर्युक्त पहलू को ध्यान में रखते हुए, परिस्थितियों से दृढ़तापूर्वक यह सिद्ध होता है कि रात्रि में मृतका अभियुक्त के साथ थी, दरवाजा बाहर की ओर से बंद किया गया था जो अभियुक्त के सिवाय अन्य किसी व्यक्ति द्वारा नहीं किया जा सकता था और इसके अतिरिक्त वह घटनास्थल से फरार हो गया था और उसने पुलिस में रिपोर्ट भी दर्ज नहीं कराई । इस प्रकार, अकाट्य निष्कर्ष यही निकलता है कि अपनी पत्नी की हत्या कारित करने का दोषी अभियुक्त ही है । यह ध्यान में रखना चाहिए कि विश्वस्तता पर संदेह करना इस बात को अत्यधिक बल देता है कि अभियुक्त कोई अप्रत्यावर्ती अपराध कारित करे क्योंकि विश्वस्तता पर संदेह किए जाने से अभियुक्त का मन दूषित हो जाता है और उसकी समझ-बूझ समाप्त हो जाती है तथा उसका मन बुरे रास्ते पर चल देता है । वास्तव में संदेह करना नीचता का कार्य है इससे मन पूरी तरह दूषित हो जाता है और अभियुक्त राक्षसी मार्ग पर चलने लगता है तथा अच्छे कामों को छोड़कर बुरे कार्य करने लगता है । मन की ऐसी दशा हो जाने पर भी अभियुक्त को हत्या करने का कोई भी अधिकार किसी भी स्थिति में प्राप्त नहीं हो सकता । इस प्रकार हेतु का अभाव होने के संबंध में दी गई दलील में कोई सार नहीं है । उपर्युक्त विश्लेषण को दृष्टिगत करते हुए, न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि साक्ष्य की शृंखला संपूर्ण है और वह संदेह के परे सिद्ध हो गई है और सिद्ध की गई सभी परिस्थितियां इस परिकल्पना के साथ सुसंगत हैं कि अभियुक्त अपराध कारित करने का दोषी है और ये परिस्थितियां उसकी निर्दोषिता के साथ पूर्णतया असंगत हैं । (पैरा 15, 18 और 19)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2012]	ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 2600 : **जगरूप सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ;	19
[2007]	ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 2957 : **हरीशचंद्र लड़ाकू ठांगे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	19
[1996]	ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 607 : **बलविन्दर सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ;	19
[1990]	ए. आई. आर. 1990 एस. सी. 79 : **पडाला वीरा रेड्डी** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य** ;	19
[1984]	ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1622 : **शरद बिरधीचंद शारदा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ।	19

निर्दिष्ट निर्णय

[1998]	(1998) 9 एस. सी. सी. 238 : **नथूनी यादव और अन्य** बनाम **बिहार राज्य और एक अन्य** ।	16

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2008 की दांडिक अपील सं. 164.

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री अशोक कुमार शर्मा और अविनाश कुमार जैन

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री शिशिर पिनाकी, डी. महेश बाबू और मयूर शाह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा ने दिया ।

न्या. मिश्रा – अभियुक्त-अपीलार्थी का विवाह तारीख 30 अप्रैल, 1998 को मृतका नागमणि के साथ हुआ था और कुछ समय तक वे हिंदूपुर में दंपत्ति के रूप में रहे । चार मास के पश्चात्, जीवन की आवश्यकताओं से विवश होकर श्रीकलाहस्ति जाकर बस गए, जहां पर मृतका का पिता कार्य करता था । जीवन निर्वाह संतोषजनक न होने पर, मुश्किल से आठ मास के पश्चात् ही पत्नी के कहने पर वे वापस हिंदूपुर आ

गए । हिंदूपुर वापस आने पर भी प्रत्याशित संतोष नहीं मिला और इस प्रकार वे कसबा मदनपल्ले जाकर बस गए जहां पर अभियुक्त विवाह के पहले से कार्य करता था । अभियोजन वृत्तांत के अनुसार यह प्रकट होता है कि घटना के समय अर्थात् तारीख 17 अक्तूबर, 2000 को अभियुक्त, धनलक्ष्मी (अभि. सा. 1) के मकान में किराए पर रहता था । इस मकान के अन्य भाग में एस. सैयद बाशा (अभि. सा. 5) का पिता इमामवल्ली रहता था । इमामवल्ली अपने बच्चों के साथ रहता था और उसकी पत्नी कुवैत में रहती थी, अभियोजन पक्ष के अनुसार पास-पास रहने से इमामवल्ली और मृतका के बीच अवैध घनिष्ठता हो गई । घटना से बारह दिन पूर्व मृतका को अभियुक्त ने एक आटोरिक्शा में इमामवल्ली के साथ देखा और अभियुक्त मृतका को आटोरिक्शा से खींचकर बाहर ले आया और उस पर हमला किया । अभियुक्त मृतका को घर ले गया और उसे चेतावनी दी । पति-पत्नी के बीच संबंध और बुरे हो गए जिसके परिणामस्वरूप रात में गंभीर लड़ाई-झगड़ा होने लगा । तारीख 16 अक्तूबर, 2000 को झगड़ा हुआ और जैसाकि अभियोजन पक्ष का वृत्तांत है, अभियुक्त ने अपना क्रोध पवन कुमार (अभि. सा. 7) को दर्शाया कि यदि मृतका ने अवैध संबंध समाप्त नहीं किए तो वह उसको उसकी ससुराल भेज देगा या उससे छुटकारा पा लेगा ।

2. अभियोजन पक्ष के वृत्तांत से यह भी प्रकट होता है कि तारीख 17 अक्तूबर, 2000 को लगभग 6.30 बजे पूर्वाह्न में मृतका को घर में मृत पाया गया और दरवाजे में बाहर से ताला लगा हुआ था । मकान मालकिन (अभि. सा. 1) ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई और मामला रजिस्ट्रीकृत किया गया । अन्वेषण के दौरान, कमरे का ताला अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 13) द्वारा बाबू नायडु (अभि. सा. 12) और एक अन्य व्यक्ति की मौजूदगी में खोला गया । अन्वेषण के दौरान अपराध से संबंधित सामग्री घटनास्थल से अभिगृहीत की गई । इसके पश्चात् मृतका के शव की मृत्यु समीक्षा की गई और शव को शवपरीक्षण के लिए भेज दिया गया । अन्वेषण अभिक्रम ने कई साक्षियों की परीक्षा की और अन्वेषक पूरा होने के पश्चात्, अभियुक्त-पति के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में ''दंड संहिता'' कहा गया है) की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आरोप पत्र सक्षम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया और न्यायालय ने इस मामले को विचारण के लिए सेशन न्यायालय के सुपुर्द कर दिया ।

3. अभियुक्त ने दोषी होने से इनकार किया और मिथ्या फंसाए जाने

का अभिवाक् किया तथा विचारण की मांग की ।

4. अभियोजन पक्ष ने, जैसाकि अभियुक्त के विरुद्ध अभिकथन किया गया है, कुल मिलाकर 15 साक्षियों की परीक्षा की है, 29 दस्तावेज प्रदर्शित किए हैं तथा 15 तात्विक वस्तुओं को चिह्नांकित किया है । अभि. सा. 1 से अभि. सा. 5 और अभि. सा. 7 पक्षद्रोही हो गए हैं और अभियोजन पक्ष द्वारा उनकी प्रतिपरीक्षा की गई है । अभि. सा. 1 मकान मालकिन है जिसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श-1) दर्ज कराई है और अभि. सा. 2 से अभि. सा. 5 और अभि. सा. 7 पड़ोसी हैं और ये साक्षी अपने मूल कथन से मुकर गए हैं । विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने इस तथ्य पर विचार किया है कि अपराध में अभियुक्तों के अंतर्वलित होने को साबित करने के लिए कोई भी प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है किंतु तथ्यों की कड़ियों अर्थात् मृत्यु मानववध है न कि आत्म हत्या ; मृतका पति के घर में थी और उसका शव उसी मकान में पाया गया ; मकान का दरवाजा बाहर से बंद था और पति फरार हो गया था ; अपनी पत्नी के मृत्यु के संबंध में पति द्वारा कोई भी शिकायत नहीं की गई थी ; साक्षियों की प्रतिपरीक्षा किए जाने पर यह उपदर्शित हुआ है कि मृतका और अभियुक्त साथ-साथ रहते थे और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी-1) के अनुसार घटना घटित हुई है ; अभि. सा. 8 से अभि. सा. 10 के परिसाक्ष्य से स्पष्ट रूप से यह सिद्ध होता है कि अभियुक्त को मृतका के चरित्र पर संदेह था और एक अन्य व्यक्ति के साथ अभिकथित अवैध घनिष्ठता को लेकर लड़ाई-झगड़ा हुआ था ; अभियुक्त की ओर से यह दलील देना कि मृतका के साथ हिंसक मैथुन किया गया है, डा. पॉल रवि कुमार (अभि. सा. 11) के साक्ष्य के आधार पर मिथ्या पाया गया है ; धनलक्ष्मी (अभि. सा. 1) के साक्ष्य से यह स्पष्ट हो गया है कि वह अपनी रिपोर्ट देने से पूर्व नागमणि की मृत्यु से अवगत थी ; अन्वेषण के दौरान प्रदर्श पी-21 और प्रदर्श पी-22 अभियुक्त के मकान में पाए गए हैं और प्रदर्श पी-21 को, हस्तलेख विशेषज्ञ अर्थात् के. वाणी प्रसाद राव (अभि. सा. 15) के साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए, मिथ्या पाया गया है जिन्होंने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि प्रदर्श पी-21 में जो हस्तलेख है वह अभियुक्त का है जैसी इन सभी परिस्थितियों के संचयी प्रभाव से यह दर्शित होता है कि साक्ष्य की शृंखला पूर्ण है जिससे यह सिद्ध होता है कि केवल अभियुक्त ने ही अपराध कारित किया है किसी अन्य व्यक्ति ने नहीं, तदनुसार उसे दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और आजीवन कारावास भोगने तथा 200/- रुपए जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर एक मास का साधारण कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया है ।

5. अपील किए जाने पर, उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का मूल्यांकन करते हुए विद्वान् विचारण न्यायाधीश के मत से, परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, सहमति व्यक्त की है विशेषकर इस संबंध में कि परिसर केवल अभियुक्त के एकमात्र कब्जे में था ; अभियुक्त उस रात्रि में मृतका के साथ था ; दरवाजा बाहर से बंद था ; अभियुक्त लंबे समय से फरार था, तदनुसार उच्च न्यायालय ने विद्वान् विचारण न्यायाधीश के दोषसिद्धि और दंडादेश के निर्णय का अनुमोदन किया है । इस प्रकार, विशेष इजाजत द्वारा अभियुक्त की ओर से वर्तमान अपील की गई है ।

6. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री अशोक कुमार शर्मा ने अपनी अपील के समर्थन में यह दलील दी है कि विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष गलत निकाला है कि परिस्थितियों की शृंखला द्वारा अभियुक्त का दोष साक्ष्य की समुचित संवीक्षा किए जाने पर साबित हो गया है, यह ध्यान देने योग्य है कि अभियोजन पक्ष के वृत्तांत में कई कड़ियों का अभाव है । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि घटनास्थल पर अभियुक्त की मौजूदगी और अभियोजन पक्ष द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष कि अभियुक्त को अपनी पत्नी के चरित्र पर संदेह था, अत्यंत संदेहास्पद है और साक्ष्य का समुचित मूल्यांकन करके यह नहीं कहा जा सकता है कि इन तथ्यों को साबित किया गया है । काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि परिस्थितियों को काल्पनिक रूप दिया गया है और अनुमानों एवं अटकलों के आधार पर साक्ष्य के सुसंगत पहलुओं को अनदेखा किया गया है, मुख्यतः इस बात को अनदेखा किया गया है कि पति और पत्नी के बीच सौहार्द संबंध थे और यही तथ्य स्पष्ट रूप से अभि. सा. 1 से अभि. सा. 5 और अभि. सा. 7 के परिसाक्ष्य में आया है । यह भी दलील दी गई है कि जब पड़ोसियों ने अभियोजन पक्षकथन का समर्थन नहीं किया तब विद्वान् विचारण न्यायाधीश के लिए यह पूर्णतया अनुचित था कि वह अभियुक्त और मृतका के बीच सौहार्द संबंधों को अनदेखा करें और अभियोजन पक्ष के इस वृत्तांत को स्वीकार करें कि पति को (पत्नी पर) संदेह था जो कि अभिलेख पर प्रस्तुत अस्पष्ट सामग्री के आधार पर आत्यांतिक निष्कर्ष अभियुक्त को अपराध का दोषी ठहराने के लिए निकाला गया है । इसके अतिरिक्त, विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि ऐसा कोई भी हेतु साबित नहीं किया गया है जिसके आधार पर अपीलार्थी को अपराध से संबद्ध किया जा सके और उसे

दोषसिद्ध किया जा सके । विद्वान् काउंसेल ने दृढ़तापूर्वक यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने समुचित रूप से अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का मूल्यांकन नहीं किया है और ऐसा करना अपील न्यायालय की विधिक बाध्यता की असफलता की कोटि में आएगा, अतः अपील न्यायालय तथा उच्च न्यायालय दोनों के निर्णय बातिल किए जाने योग्य हैं और अपीलार्थी को आरोप से दोषमुक्त किया जाना चाहिए ।

7. राज्य के विद्वान् काउंसेल श्री शिशिर पिनाकी ने अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की उपर्युक्त दलीलों का प्रतिरोध करते हुए यह तर्क दिया है कि विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा प्रत्येक परिस्थिति का समुचित रूप से मूल्यांकन किया गया है और उच्च न्यायालय द्वारा सूक्ष्मता से संवीक्षा की गई है, इस प्रकार दोषसिद्धि के निर्णय को अमान्य ठहराने के लिए कोई भी अनुचितता नहीं है । विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि साक्षियों के परिसाक्ष्य में यह उल्लेख है कि पति को पत्नी पर संदेह था, पति मकान में मौजूद था, पति फरार हो गया था और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभिलिखित कथन में सकारात्मक अभिवाक् की अनुपस्थिति थी और मृतका के शरीर पर क्षतियां पाई गई थीं जैसे तथ्यों की अपेक्षा इस तथ्य को अधिक महत्व नहीं देना चाहिए कि पड़ोसियों ने इस बात को दोहराया है कि पति और पत्नी सौहार्दपूर्ण रह रहे थे । विद्वान् काउंसेल ने ठोस सबूत के आधार पर यह दलील दी है कि अपराध की जड़ संदेह है, परिस्थितियों के सामने आने पर यह प्रकट होता है कि अभियुक्त द्वारा हिंसापूर्वक हत्या की गई है ।

8. न्यायालय में दी गई परस्पर विरोधी दलीलों का मूल्यांकन करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि मृतका को पहुंची क्षतियों की प्रकृति और उन पर व्यक्त की गई डाक्टर की राय पर विचार किया जाए । शव-परीक्षण करने वाले डाक्टर अर्थात् डा. पॉल रवि कुमार (अभि. सा. 11) ने यह कथन किया है कि उन्होंने मृतका के शव में बाह्य और आंतरिक निम्न क्षतियां पाईं :–

बाह्य क्षतियां :

दोनों नासा द्वारों से रक्त निकल रहा है । जिह्वा की नोक नीलमय है जो ऊपरी और निचले दांतों के बीच है । होंठों का रंग काला है और दोनों होंठों पर खरोंचें हैं । नाक नीले से रंग की है और दाएं नासा द्वार पर रंग उतरा हुआ है, कानों का रंग नीला काला है

बाएं कर्ण पल्लव से रंग उतरा हुआ है ।

1. बाएं अधोहनु पर 4 सें. मी. × 2 सें. मी. माप की खरोंच ।

2. बाएं ऊपरी होंठ पर 0.5 सें. मी. × 0.7 सें. मी. माप की खरोंच ।

3. दाईं टांग के अग्रवर्ती भाग में 2 सें. मी. × 0.5 सें. मी. माप की खरोंच ।

4. दाएं पैर के पृष्ठ भाग पर 2 सें. मी. × 1/3 सें. मी. माप की रेखीय खरोंच ।

आंतरिक क्षतियां :

"ग्रीवा-कंठिका सामान्य है, गलग्रंथी, वलयउपास्थि सामान्य है, स्वरयंत्र सिकुड़ा हुआ है, श्वास नली सामान्य है, फेफड़ें सामान्य हैं, कट-सेक्शन सिकुड़ा हुआ है, आमाश्य सामान्य है । अंतड़ियां गैस से फूली हुई हैं, मूत्राशय रिक्त है, गर्भाशय सामान्य है । शिरोवल्क- बाएं पश्चकपालीय भाग में 10 सें. मी. × 8 सें. मी. माप का अस्पष्ट गुमटा मौजूद है । शिरोवल्क पर बाएं पश्चकपालीय भाग में 8 सें. मी. × 8 सें. मी. माप का रक्तगुल्म है । खोपड़ी, अस्थियां, खोपड़ी का आधार सामान्य है । मस्तिष्कावरण सामान्य है, मस्तिष्क सामान्य है और सिकुड़ा हुआ है । मेरुदंड की अस्थियां सामान्य हैं ।"

9. उक्त क्षतियों के आधार पर चिकित्सक ने यह राय व्यक्त की है कि मृतका की मृत्यु श्वासावरोध के परिणामस्वरूप हुई है और शवपरीक्षण किए जाने के समय से लगभग 36 से 40 घंटे पूर्व मृत्यु हुई है । उपर्युक्त क्षतियों और राय से स्पष्ट रूप से यह प्रकट होता है कि मृत्यु मानववध से हुई है । चिकित्सक ने अपनी मुख्य परीक्षा में यह अभिसाक्ष्य दिया है कि प्रदर्श पी-8 के अनुसार उसके द्वारा उल्लिखित क्षतियां उस समय संभव हैं जब कोई व्यक्ति चेहरे पर तकिया रखे और उसे दबाएं और उससे संघर्ष हो । प्रतिपरीक्षा में उसे यह सुझाव दिया गया है कि जिन क्षतियों को चिकित्सक द्वारा अभिलिखित किया गया है वे संभवतः हिंसक मैथुन के दौरान कारित हो सकती हैं किंतु इस बात से स्पष्ट रूप से इनकार किया गया है । इस प्रकार, इस बात में तनिक भी संदेह नहीं है कि मृत्यु मानववध है न कि आत्महत्या और इसके अतिरिक्त यह बलात्संग और हत्या का मामला नहीं है ।

10. जब एक बार यह अभिनिर्धारित हो गया है कि मृत्यु मानव वध है और क्षतियां किसी भी हिंसक मैथुन के परिणामस्वरूप कारित नहीं हुई हैं । परिस्थितियों की संवीक्षा अपराध में अभियुक्त की सह-अपराधिता को समझने के लिए की जानी चाहिए ।

11. पहले तो हम इस मुद्दे पर विचार करेंगे कि अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा बनाए गए अवैध संबंधों के बाबत संदेह सिद्ध किया गया है या नहीं । यह सत्य है कि पड़ोसी अर्थात् अभि. सा. 1 से अभि. सा. 5 पक्षद्रोही हो गए हैं और उन्होंने यह कथन किया है कि पति और पत्नी के बीच सौहार्द संबंध थे किंतु अन्य साक्षियों का साक्ष्य अन्यथा है । मृतका की छोटी बहिन त्रिवेणी (अभि. सा. 8) के परिसाक्ष्य से यह स्पष्ट हो गया है कि तारीख 1 अक्तूबर, 2000 को मृतका हिंदूपुर स्थित उनके घर पर आई और उसने उसे यह बताया कि अभियुक्त इस बात को लेकर उसे तंग करता है कि उसके (मृतका) किसी व्यक्ति के साथ अवैध संबंध हैं और यह कि अभियुक्त उसे आहार उपलब्ध नहीं कराता है । त्रिवेणी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने मृतका को यह सलाह दी कि पारिवारिक जीवन में लड़ाई-झगड़ा होना सामान्य बात है और उसे समझौता करना चाहिए, तदनुसार, वह अपने पति के पास वापस चली गई । इस साक्षी की प्रतिपरीक्षा में ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे उसके परिसाक्ष्य को त्यक्त किया जा सके ।

12. मृतका के एक अन्य नातेदार पी. गैंगप्पा (अभि. सा. 9) ने मृतका के बारे में दुख के साथ यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसके पति द्वारा उसे इसलिए तंग किया जाता था कि मृतका के किसी व्यक्ति के साथ अवैध घनिष्ठता थी । इस मुद्दे पर इस साक्षी की कोई भी प्रतिपरीक्षा नहीं की गई है ।

13. उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए, हमारा यह विचार है कि किसी भी कारण से अभियुक्त को अपनी पत्नी के व्यवहार और आचरण पर संदेह हो गया था । हमारा यह भी मत है कि अभि. सा. 7 ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 161 के अधीन (पुलिस को दिए गए) अपने कथन में यह उल्लेख किया है कि अभियुक्त ने उसे अपनी पत्नी के आचरण से संबंधित खिन्नता के बारे में बताया था । यद्यपि यह साक्षी पक्षद्रोही हो गया है फिर भी अभि. सा. 8 और अभि. सा. 9 के साक्ष्य के आधार पर निष्कर्ष निकालने में कोई अंतर नहीं आएगा कि अभियुक्त को अपनी पत्नी के आचरण पर संदेह था ।

14. अब हम कतिपय अन्य परिस्थितियों पर विचार करेंगे । अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री के आधार पर यह सिद्ध हो गया है कि अभियुक्त और इमामवल्ली द्वारा मकान मालकिन (अभि. सा. 1) से किराए पर मकान लिया गया था । अभि. सा. 1 ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि उसे इस बात की जानकारी नहीं थी कि मृतका जीवित है या नहीं । विद्वान् विचारण न्यायालय ने उसके आचरण पर टिप्पणी की है जिसका पुनः उल्लेख करना हम आवश्यक नहीं समझते हैं । तथ्य यह रह जाता है इस साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि जब सुबह वह जागी, उसने यह पाया कि उसके मकान के उस भाग में शोरगुल सुनाई दे रहा है जो उसने किराए पर दिया हुआ था और उसे यह बताया गया कि किसी व्यक्ति की मृत्यु हो गई है । यह उल्लेख करना बहुत महत्वपूर्ण है कि उसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी-1) को स्वीकार किया है । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह भी स्वीकार किया है कि प्रदर्श पी-1 की अंतर्वस्तु उसे पढ़कर सुनाई गई और समझाई गई और उसके पश्चात् ही उसने उस पर हस्ताक्षर किए हैं । अभि. सा. 5 ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि मृतका नागमणि की मृत्यु लगभग 6.30 बजे पूर्वाह्न में हुई है जब मकान मालकिन (अभि. सा. 1) ने चीख-पुकार की थी । वार्ड-26 के पार्षद एन. बाबू नायडू (अभि. सा. 12) ने यह कथन किया है कि मृतका की मृत्यु की जानकारी प्राप्त होने पर वह उसके घर गया और उसने दरवाजा बंद पाया और पुलिस के आने के पश्चात् दरवाजा खोला गया और शव जमीन पर पड़ा हुआ था जिसके चेहरे पर तकिया रखा हुआ था । पार्षद का परिसाक्ष्य त्रुटि रहित है क्योंकि उससे उसकी प्रतिपरीक्षा में इसके सिवाय कुछ भी नहीं पूछा गया है कि उसने पुलिस को प्रसन्न करने के लिए ऐसा कथन दिया है । अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 13) के साक्ष्य में यह उल्लेख किया गया है कि साक्षियों की मौजूदगी में ताला तोड़ा गया था और शव कमरे में पाया गया था । इस साक्षी ने प्रदर्श पी-21 के अभिग्रहण के संबंध में साक्ष्य दिया है और प्रदर्श पी-21 एक किताब पर अभियुक्त का हस्तलेख है । प्रतिपरीक्षा में मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट से संबंधित प्रश्न के अतिरिक्त इस साक्षी से कुछ भी नहीं पूछा गया है ।

15. इस प्रक्रम पर, यह उल्लेखनीय है कि अभि. सा. 1 ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि वह साईं बाबा भजन में सम्मिलित

होने गई थी । इस पहलू पर विद्वान् विचारण न्यायाधीश द्वारा विश्वास नहीं किया गया है और हम उचित विचार करने के लिए आनत हैं । इसके प्रतिकूल, परिस्थितियों से स्पष्ट रूप से यह सिद्ध होता है कि वह अपने मकान में थी । अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि प्रातःकाल में शोरगुल सुनाई दिया था, उसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई, पुलिस आई और उसने मकान को बाहर से बंद पाया तथा दरवाजे पर लगा ताला साक्षियों की मौजूदगी में तोड़ा गया । यह उल्लेखनीय है कि अभियुक्त ने अन्यत्र उपस्थित होने का अभिवाक् नहीं किया है । इसके प्रतिकूल, फरार होने का तथ्य भी साबित किया गया है । इन परिस्थितियों में, संचयी प्रभाव यह है कि जब पत्नी की मृत्यु हुई उस समय पति मकान में मौजूद था । हिंसक मैथुन के रूप में किया गया बलात्संग और हत्या का सुझाव चिकित्सीय साक्ष्य के आधार पर असत्य पाया गया है और इस निष्कर्ष से भिन्न निष्कर्ष निकालने का कोई कारण नहीं है । पति ने ऐसा कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया है कि वह दुर्घटना की रात में कहां था और मकान का दरवाजा कैसे बंद था । जैसाकि पहले ही कथन किया गया है, वह लंबे समय के लिए फरार हो गया था और उसने अपनी पत्नी की अप्राकृतिक मृत्यु की रिपोर्ट करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया । उपर्युक्त पहलू को ध्यान में रखते हुए, परिस्थितियों से दृढ़तापूर्वक यह सिद्ध होता है कि रात्रि में मृतका अभियुक्त के साथ थी, दरवाजा बाहर की ओर से बंद किया गया था जो अभियुक्त के सिवाय अन्य किसी व्यक्ति द्वारा नहीं किया जा सकता था और इसके अतिरिक्त वह घटनास्थल से फरार हो गया था और उसने पुलिस में रिपोर्ट भी दर्ज नहीं कराई । इस प्रकार, अकाट्य निष्कर्ष यही निकलता है कि अपनी पत्नी की हत्या कारित करने का दोषी अभियुक्त ही है ।

16. अब हम इस दलील पर विचार करेंगे कि अभियोजन पक्ष अपराध कारित किए जाने के किसी भी हेतु को साबित नहीं कर पाया है क्योंकि यह तथ्य भी सिद्ध नहीं हो पाया है कि अभियुक्त को (अपनी पत्नी पर) संदेह था । हमने इस संबंध में पहले ही सकारात्मक निष्कर्ष अभिलिखित किया है । तथापि, हम इस संदर्भ में **नथूनी यादव और अन्य** बनाम **बिहार राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में किए गए निर्णय को निर्दिष्ट कर रहे हैं :–

"17. आपराधिक कार्य के हेतु का पता लगाना अभियोजन पक्ष

---

[1] (1998) 9 एस. सी. सी. 238.

के लिए एक कठिन कार्य है । सामान्यतः कोई भी किसी के मन की स्थिति को नहीं समझ सकता है । हेतु वह भावना है जो व्यक्ति को कोई विशिष्ट कार्य करने के लिए आतुर करती है । ऐसा विवशकारी कारण गंभीर अपराध कारित करने के लिए आनुपातिक रूप से आवश्यक नहीं है । बहुत सी हत्याएं किसी भी ज्ञात या विशेष हेतु के बिना भी हो जाती हैं । यह पूर्णतया संभव है कि उपर्युक्त विवशकारी संघटक प्रकट नहीं हो पाते हैं । मुख्य न्यायाधीश लार्ड कैम्पबेल ने **आर.** बनाम **पामेर** [(1856) मई सी. सी. सी. 308] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया है –

> 'किंतु यदि अपराध करने का कोई हेतु है जिसे समनुदेशित किया जा सके, मुझे यही कहना होगा कि उस हेतु की उपयुक्तता अधिक महत्वपूर्ण नहीं है । हम दांडिक न्यायालयों के अनुभव से यह जानते हैं कि इस प्रकार के घोर अपराध अत्यल्प हेतु के साथ कारित किए जाते हैं ; जिनमें दुर्भावना या प्रतिशोध का कारण नहीं होता अपितु छोटे-मोटे फायदों के लिए और अल्पकालिक कठिनाइयों से बचने के लिए बिना हेतु के ही अपराध किए जाते हैं ।'

यद्यपि, यह ठोस प्रतिपादना है कि प्रत्येक आपराधिक कार्य हेतु के साथ ही कारित किया जाता है, यह कहना उचित नहीं होगा कि ऐसा कोई भी आपराधिक कार्य तब तक सिद्ध नहीं किया जा सकता जब तक हेतु साबित न किया जाए । कुल मिलाकर, हेतु एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है । मात्र यह कारण कि अभियोजन पक्ष अभियुक्त की मानसिक स्थिति को साक्ष्य के रूप में परिवर्तित करने में असफल रहा है, इस बात का यह अर्थ नहीं है कि हमलावर के मन में हत्या करने की भावना विद्यमान नहीं थी ।"

17. उक्त मामले में ऐसा भी देखा गया है कि कुछ परिस्थिति में प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा हेतु सिद्ध करना कठिन हो सकता है जब कि अन्य कुछ मामलों में परिस्थितियों से निकाले गए निष्कर्ष की सहायता से संबंधित व्यक्ति की मानसिक प्रवृत्ति का पता लगाया जा सकता है । वर्तमान मामले में, यह देखा गया है कि अभिलेख पर ऐसी सामग्री मौजूद है जिससे यह प्रकट होता है कि अभियुक्त के मन में विद्वेष की भावना थी जो इतनी बढ़ गई कि उसने अपनी पत्नी की हत्या कर दी ।

18. यह ध्यान में रखना चाहिए कि विश्वस्तता पर संदेह करना इस बात को अत्यधिक बल देता है कि अभियुक्त कोई अप्रत्यावर्ती अपराध कारित करे क्योंकि विश्वस्तता पर संदेह किए जाने से अभियुक्त का मन दूषित हो जाता है और उसकी समझ-बूझ समाप्त हो जाती है तथा उसका मन बुरे रास्ते पर चल देता है । वास्तव में संदेह करना नीचता का कार्य है इससे मन पूरी तरह दूषित हो जाता है और अभियुक्त राक्षसी मार्ग पर चलने लगता है तथा अच्छे कामों को छोड़कर बुरे कार्य करने लगता है । मन की ऐसी दशा हो जाने पर भी अभियुक्त को हत्या करने का कोई भी अधिकार किसी भी स्थिति में प्राप्त नहीं हो सकता । इस प्रकार हेतु का अभाव होने के संबंध में दी गई दलील में कोई सार नहीं है ।

19. उपर्युक्त विश्लेषण को दृष्टिगत करते हुए, हमारा यह निष्कर्ष है और हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि साक्ष्य की शृंखला संपूर्ण है और वह संदेह के परे सिद्ध हो गई है और सिद्ध की गई सभी परिस्थितियां इस परिकल्पना के साथ सुसंगत हैं कि अभियुक्त अपराध कारित करने का दोषी है और ये परिस्थितियां उसकी निर्दोषिता के साथ पूर्णतया असंगत हैं । हमने यह मत **शरद बिरधीचंद शारदा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1], **पडाला वीरा रेड्डी** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य**[2], **बलविन्दर सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[3], **हरीशचंद्र लड़ाकू ठांगे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[4] और **जगरूप सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[5] वाले मामलों में किए गए मत के आधार पर व्यक्त किया है ।

20. परिणामतः निराधार होने के कारण अपील खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

अस./अनू.

---

[1] ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1622.
[2] ए. आई. आर. 1990 एस.सी. 79.
[3] ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 607.
[4] ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 2957.
[5] ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 2600.

कन्हैया लाल

बनाम

राजस्थान राज्य

तथा

राजस्थान राज्य

बनाम

मांगी लाल

तथा

राजस्थान राज्य

बनाम

मोहन लाल और अन्य

तथा

राजस्थान राज्य

बनाम

बाबू लाल

तथा

राजस्थान राज्य

बनाम

रेवदी लाल और अन्य

22 अप्रैल, 2013

न्यायमूर्ति के. एस. राधाकृष्णन् और न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 154 – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट – विलंब – संदिग्धता – विलंब से अभियोजन पक्षकथन में कमी हुई है या नहीं और यह संदिग्ध है या नहीं, इसकी संवीक्षा तथ्य और परिस्थितियों के आधार पर विलंब को स्पष्ट करते हुए की जानी चाहिए और न्यायालय को अत्यंत सावधानी और सतर्कता से काम लेना चाहिए ताकि विलंब के संबंध में न्यायालय का समाधान हो सके ।

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 – हत्या – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में विलंब – बर्बरतापूर्ण और जघन्य अपराध से प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों का भयभीत हो जाना – विलंब का स्पष्टीकरण युक्तियुक्त पाया जाना – मनुष्य की प्रवृत्ति है कि वह पहले अपनी जान बचाता है और बाद

में कुछ और करने के बारे में विचार करता है, इत्तिलाकर्ता पुलिस थाने जाने की हिम्मत नहीं कर पा रहा था, एक दिन बीत जाने के बाद प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई, इस प्रकार विलंब को स्पष्ट किए जाने पर अभियोजन वृत्तांत स्वीकार किया जा सकता है ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 302 – हत्या – 5 व्यक्तियों की हत्या किए जाने का जघन्य अपराध – ग्राम के मुखिया के साथ शत्रुता – घटना मृतक के मकान के निकट घटित हुई और 5 व्यक्तियों की हत्या की गई, ऐसी स्थिति में यह पूर्णतया अप्रत्याशित होगा कि ग्राम के अन्य निवासी अपना कथन देने के लिए आगे बढ़ें और वे न्यायालय में अभिसाक्ष्य दें, ऐसी स्थिति में स्वतंत्र साक्षी न बनाना विधिविरुद्ध नहीं होगा ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 3 – हितबद्ध साक्षी – चिकित्सा साक्ष्य से संपुष्टि – साक्ष्य का स्वीकार किया जाना – यदि नातेदार साक्षियों का ऐसा कोई हेतु नहीं है जिसके लिए वे अभियुक्तों को मिथ्या फंसाए और इसके अतिरिक्त उनके परिसाक्ष्य में महत्वपूर्ण विशिष्टियों को लेकर कड़ी प्रतिपरीक्षा की गई हो और चिकित्सक के साक्ष्य से भी उनके साक्ष्य की संपुष्टि हो गई हो, तब ऐसी स्थिति में नातेदार साक्षी को हितबद्ध साक्षी नहीं माना जा सकता और उनके साक्ष्य को स्वीकार किया जा सकता है ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 302 – हत्या – प्रत्यक्षदर्शी साक्षी – अपराध – अपराध में प्रत्येक अभियुक्त की विशेष भूमिका का उल्लेख न किया जाना – यदि साक्षियों ने अभियुक्तों द्वारा अपराध में निभाई गई विशेष भूमिका का उल्लेख नहीं किया है किंतु उन्होंने अभियुक्तों द्वारा प्रयोग में लाए गए हथियारों का उल्लेख किया है और उनके साक्ष्य में आए विरोधाभास तुच्छ प्रकृति के हैं तब ऐसी स्थिति में उनके साक्ष्य को स्वीकार किया जा सकता है ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 378 – दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील और दोषसिद्धि के विरुद्ध की गई अपील में अंतर – बहुत कम किंतु स्पष्ट – निर्दोषिता की उपधारणा का दोषमुक्ति के कारण प्रबलित होना – दोषसिद्धि के विरुद्ध की गई अपील और दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई अपील के बीच कोई भी सारभूत अंतर नहीं है सिवाय इसके कि जब दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई अपील पर विचार किया जाए तब न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि अभियुक्त के पक्ष में

निर्दोषिता की उपधारणा उसकी दोषमुक्ति द्वारा प्रबलित होती है और यदि उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत युक्तियुक्त है और उसके द्वारा निकाले गए निष्कर्ष पूर्णतया अभिलेख पर प्रस्तुत की गई सामग्री के आधार पर हैं तब दोषमुक्ति के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए ।

इस मामले में अभियुक्तों द्वारा पांच व्यक्तियों की हत्या की गई है । अभियुक्तों को गिरफ्तार किया गया और उनका विचारण न्यायालय द्वारा विचारण किया गया जिनमें से कुछ अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया गया और कुछ अभियुक्तों को दोषसिद्ध किया गया । दोषसिद्ध किए गए अभियुक्तों में से कुछ अभियुक्तों को मृत्यु दंडादेश दिया गया । अभियुक्तों ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील की तथा राज्य ने मृत्यु निर्देश फाइल किया । उच्च न्यायालय ने सभी अभियुक्तों को अपराध का दोषी पाया किंतु मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया । उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध अभियुक्तों ने उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की तथा राज्य ने भी मृत्यु दंडादेश को बहाल करने के लिए उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस प्रकार क्या विलंब से अभियोजन पक्षकथन में कमी पैदा हुई है या नहीं और यह संदिग्ध है या नहीं, इसकी संवीक्षा तथ्य और परिस्थितियों की संपूर्णता के आधार पर विलंब के स्पष्टीकरण द्वारा की जानी चाहिए । साक्ष्य का मूल्यांकन करने के लिए न्यायालय को अत्यंत सावधानी और सतर्कता से काम लेना चाहिए ताकि विलंब के तथ्य के संबंध में दिए गए स्पष्टीकरण को लेकर न्यायालय का समाधान हो सके । जब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट विलंब से दर्ज कराई जाती है, ऐसा निष्कर्ष ठीक ही निकलता है कि अभियोजन वृत्तांत सत्य नहीं है किंतु दूसरी ओर यह भी निष्कर्ष निकलता है कि यदि यह पाया जाता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित किए जाने में कोई विलंब नहीं है, तब इसका यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि अभियोजन वृत्तांत अत्यधिक प्रबल है । (पैरा 15)

वर्तमान तथ्यात्मक पृष्ठभूमि पर उपर्युक्त सिद्धांतों की कसौटी के आधार पर विचार किया जाना चाहिए । अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने पर यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि घटना रात्रि में घटित हुई थी । यह बात सत्य है कि पुरुषोत्तम के मकान

का घेराव किया गया था किंतु वास्तविक अपराध अर्थात् हमला और हत्या अर्धरात्रि के पश्चात् की गई थी । बर्बरतापूर्ण किए जघन्य अपराध से प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों का मस्तिष्क और हाथ-पैर संभवतः सामान्य नहीं रहेंगे और वे पूर्णतया भयभीत हो जाएंगे । कोई भी व्यक्ति पुलिस थाने की ओर एक इंच भी बढ़ने का साहस नहीं जुटा पाएगा, यह मनुष्य की प्रवृत्ति है कि वह पहले अपनी जान बचाता है और बाद में कुछ और करने के बारे में विचार करता है । मृतका के भाई अर्थात् इत्तिलाकर्ता ने स्पष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वह और अन्य व्यक्ति प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए पुलिस थाने जाने की हिम्मत नहीं कर पा रहे थे । एक दिन बीत जाने के पश्चात् उन्होंने साहस जुटाया और वे पुलिस थाने की ओर बढ़े और उन्होंने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई । अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि वे उस समय भी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करा सकते थे जब मकान अभिगृहीत किया गया था न कि संपूर्ण घटना घटित होने के पश्चात् हम उक्त दलील से सहमत नहीं हैं और हमारा यह विचार है कि दिए गए इस स्पष्टीकरण को युक्तियुक्त मानना हमारी कल्पना के परे है । जैसाकि पहले ही विचार किया गया है, विलंबित प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में हेर-फेर की जा सकती है और उसमें बढ़ा-चढ़ाकर उल्लेख किया जा सकता है तथा अभियोजन वृत्तांत शिथिल हो सकता है किंतु जब विलंब को उपयुक्त रूप से स्पष्ट किया गया हो तब उसे स्वीकार किया जाना चाहिए और तदनुसार हम ऐसा ही कर रहे हैं । (पैरा 16)

अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री जैन ने अगला तर्क यह दिया कि सभी अभिकथित प्रत्यक्षदर्शी साक्षी मृतक पुरुषोत्तम के निकट नातेदार हैं और अभियोजन पक्ष ने किसी भी स्वतंत्र साक्षी की परीक्षा नहीं कराई है जबकि पुरुषोत्तम के मकान के निकट बहुत से मकान थे और इस बात से स्वयं अभियोजन वृत्तांत में कमी पैदा होती है । जब नातेदार, जो अभिकथित रूप से हितबद्ध साक्षी हैं, अभियोजन पक्ष द्वारा साक्षी बनाए गए हैं, तब ऐसी स्थिति में न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह कड़ी सावधानी से उनके साक्ष्य की संवीक्षा करे । वर्तमान मामले में संपूर्ण घटना पुरुषोत्तम के मकान के निकट घटित हुई है । पांच व्यक्तियों की हत्या की गई है । ऐसी परिस्थिति में यह पूर्णतया अप्रत्याशित है कि ग्राम के अन्य निवासी अपने कथन देने के लिए आगे बढ़ें और वे न्यायालय में अभिसाक्ष्य दें । यह ध्यान में रखना चाहिए कि ग्राम के सरपंच राम नारायण ने केवल संदेह के आधार पर यह देखा था कि पांच व्यक्तियों की हत्या की गई है । ऐसी स्थिति में कोई भी व्यक्ति साक्षी

बनना नहीं चाहेगा और स्वाभाविक रूप से कोई भी ऐसा ही करेगा । इस प्रकार, इस तथ्य के संबंध में कोई अपवाद नहीं लिया जा सकता है कि कोई भी स्वतंत्र साक्षी की परीक्षा नहीं कराई गई है । (पैरा 17)

आवश्यक यह है कि हितबद्ध साक्षी के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक संवीक्षा की जानी चाहिए और सतर्कता के साथ स्वीकार किया जाना चाहिए । यदि ऐसी संवीक्षा किए जाने के बाद, हितबद्ध साक्षी का परिसाक्ष्य वस्तुतः विश्वसनीय या अंतर्निहित रूप से संभावी पाया जाए, तब उस विशिष्ट मामले की परिस्थितियों में ऐसे साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि की जा सकती है । वर्तमान मामले में, साक्षियों के पिता, पति और नातेदार की हत्या हुई है । इन साक्षियों को हितबद्ध साक्षी कहने का कोई भी ऐसा ठोस कारण दिखाई नहीं देता है कि साक्षी ऐसे अभियुक्तों को शत्रुता के कारण दोषसिद्ध कराएं जो अपराध में अंतर्वलित ही न हो । इसके प्रतिकूल, वे वास्तविक अपराधियों को ही अभियोजित और दोषसिद्ध कराना चाहेंगे । मानव प्रकृति का यही नैसर्गिक सिद्धांत है और मानव आचरण से यही प्रत्याशित है, हमारा यह विचार नहीं है कि इन अभियुक्तों के मन में अभियुक्तों के विरुद्ध कोई दुर्भावना है अपितु इन साक्षियों ने नृशंस घटना के साक्षी के रूप में अभिसाक्ष्य दिया है । जैसाकि ऊपर मत व्यक्त किया गया है, हम आगे यह कहना चाहेंगे कि यह न्यायालय साक्षियों के परिसाक्ष्यों की संवीक्षा करने में सतर्कता और सावधानी बरतेगा और हम ऐसा ही कर रहे हैं । (पैरा 18 और 20)

इत्तिलाकर्ता राधेश्याम ने अभियुक्तों द्वारा धमकी दिए जाने, छत पर कुछ अभियुक्तों के चढ़ने, मकान का घेराव करने, पथराव करने, तलवारों, गंडासों, सब्बलों और लाठियों जैसे खतरनाक हथियारों से लैस होने, मकान के भीतर हमला करने, दो मृतकों को घसीटकर लाने तथा अंततः मृतक की मृत्यु हो जाने के संबंध में अभिसाक्ष्य दिया है । यह अभिवाक् विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय द्वारा अविश्वसनीय ठहराया गया है कि यह साक्षी घटना देख ही नहीं सकता था क्योंकि रात्रि का समय था और वह छप्पर के अंदर था, अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री जैन ने यह उजागर करने का तुच्छ प्रयास किया है कि इस साक्षी ने घटना नहीं देखी थी, परंतु साक्ष्य की संवीक्षा किए जाने पर, यह स्पष्ट हो गया है कि घटनास्थल पर पूर्ण अंधकार नहीं था क्योंकि उस समय बिजली का बल्ब जल रहा था और यह साक्षी घटना देख सकता था । यही साक्ष्य अन्य

अभियोजन साक्षियों द्वारा भी दिया गया है, जिसका विश्लेषण उच्च न्यायालय द्वारा कड़ी सतर्कता के साथ किया गया है । इस साक्ष्य का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने पर, हमारा यह निष्कर्ष है कि उक्त मूल्यांकन से भिन्न मत व्यक्त करने का इस आधार पर कोई कारण दिखाई नहीं देता है कि साक्षी मृतक के नातेदार हैं या इस आधार पर कि इन साक्षियों ने घटना नहीं देखी है । इस प्रकृति के मामले में, नातेदार ही वास्तविक अपराधियों के विरुद्ध अभिसाक्ष्य देने का साहस करते हैं और वे अन्य व्यक्तियों को अपराध में मिथ्या आलिप्त नहीं करेंगे । इन साक्षियों ने नृशंस अपराध होते देखा है और अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिसके आधार पर इन साक्षियों के परिसाक्ष्य को अविश्वसनीय मानकर त्यक्त किया जा सके । हमारा यह निष्कर्ष है कि इन साक्षियों का साक्ष्य विश्वसनीय और विश्वासप्रद है तथा उनके साक्ष्य के आधार पर कार्यवाही न करना अनुचित होगा । प्रतिपरीक्षा के दौरान ऐसी कोई सामग्री सामने नहीं आई है जिसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि साक्षियों का साक्ष्य असंभावी या संदिग्ध है और वह खारिज किया जाए । साक्षियों का ऐसा कोई हेतु नहीं है जिसके लिए वे अभियुक्तों को मिथ्या फंसाएं और इसके अतिरिक्त इन साक्षियों के परिसाक्ष्य में महत्वपूर्ण विशिष्टियों को लेकर कड़ी प्रतिपरीक्षा की गई है और चिकित्सक के साक्ष्य से उनके परिसाक्ष्य की संपुष्टि भी होती है । इसके अतिरिक्त, अभिगृहीत किए गए हथियारों से भी अभियोजन साक्ष्य की विश्वसनीयता साबित होती है । उपरोक्त बातों के अतिरिक्त, यह निष्कर्ष निकालना लगभग असंभव है कि साक्षियों की अभियुक्तों से कोई भी शत्रुता थी जिसके आधार पर अभियुक्तों को दोषसिद्ध कराया जाए । इन साक्षियों के परिवार के सदस्यों की बर्बरतापूर्ण रीति में हत्या की गई है और इन परिस्थितियों में यह नहीं माना जा सकता है कि वे किसी भी वास्तविक अपराधी को छोड़कर अभियुक्तों को फंसाएंगे । (पैरा 21)

साक्ष्य का परिशीलन करने पर, यह प्रतीत होता है कि साक्षियों ने प्रयोग में लाए गए हथियारों का उल्लेख किया है और हमला किए जाने तथा शरीर के अंगों पर क्षतियां कारित होने का भी उल्लेख किया है । यह सत्य है कि साक्ष्य में कुछ विरोधाभास भी हैं किंतु वे तुच्छ हैं । इसके अतिरिक्त, अभियुक्तों ने मृतकों की हत्या करने के सामान्य उद्देश्य के साथ विधिविरुद्ध जमाव गठित किया था । उनका सामान्य उद्देश्य पूर्णतया स्पष्ट है क्योंकि उन्हें ज्ञान था और आरंभ से लेकर अंत तक उन्होंने

सामान्य उद्देश्य को बनाए रखा । हमारा यह निष्कर्ष है कि सभी अभियुक्तों ने सामान्य उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए विधिविरुद्ध जमाव गठित किया था, तदनुसार हम अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलील का निःसंकोच खंडन करते हैं । पूर्ववर्ती विनिश्चयों पर विचार करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया गया है कि दोषसिद्धि के विरुद्ध की गई अपील और दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई अपील के बीच बहुत कम किंतु स्पष्ट अंतर है । इस न्यायालय की न्यायिक राय की प्रधानता यह है कि दोषसिद्धि के विरुद्ध की गई अपील और दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई अपील के बीच कोई भी सारभूत अंतर नहीं है सिवाय इसके कि जब दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई अपील पर विचार किया जाए तब न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि अभियुक्त के पक्ष में निर्दोषिता की उपधारणा उसकी दोषमुक्ति द्वारा प्रबलित होती है और यदि उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत युक्तियुक्त है और उसके द्वारा निकाले गए निष्कर्ष पूर्णतया अभिलेख पर प्रस्तुत की गई सामग्री के आधार पर हैं तब दोषमुक्ति के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए । इस प्रकार, न्यायालय को अपीली अधिकारिता का प्रयोग करते समय इस सूक्ष्म अंतर को ध्यान में रखना चाहिए । स्वर्णिम नियम यह है कि न्यायालय का यह कर्तव्य है और उसे अपने इस कर्तव्य से पीछे नहीं हटना चाहिए कि जहां अपील न्यायालय को हस्तक्षेप करना पड़े वहां अन्याय न हो और न्याय ही हो और न्यायिक अंतरात्मा का समाधान होना चाहिए । वर्तमान मामले में, जैसाकि हमने तथ्यात्मक स्थिति पर विचार किया है, अपराध इसलिए कारित किया गया है कि राम नारायण को यह संदेह था कि मृतकों ने उसके पुत्र की हत्या की है । यह भी देखा गया है कि एक ही जैसा अपराध करने वाले व्यक्तियों को आजीवन कारावास अधिरोपित किया गया है । इस बात से पूर्णतया हटकर, सभी अभियुक्त अभिरक्षा में लगभग 13 वर्ष पूरे कर चुके हैं । संपूर्ण परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह नहीं कहा जा सकता है कि आजीवन कारावास अनुचित है और यह भी नहीं कहा जा सकता है कि परिस्थितियां इतनी गंभीर है कि मृत्यु दंड दिया जाए । संपूर्ण पृष्ठभूमि का समुचित परिप्रेक्ष्य के साथ न्याय निर्णयन करने पर, हमारा यह विचार है कि यह ऐसा मामला नहीं है जिसे अत्यंत अपराधिता का मामला माना जाए और यह ऐसा मामला नहीं है कि जिसमें मृत्यु दंड अधिरोपित किए जाने के सिवाय कोई और दंड अधिरोपित नहीं किया जा सके । इस प्रकार, हमें उच्च न्यायालय के इस विनिश्चय में कोई भी त्रुटि दिखाई नहीं देती है

जिसके अनुसार उच्च न्यायालय ने मृत्यु दंड को आजीवन कारावास में परिवर्तित किया है । (पैरा 22, 28 और 35)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2011]	(2011) 8 एस. सी. सी. 65 : **राजस्थान राज्य द्वारा गृह सचिव** बनाम **अब्दुल मन्नान** ;	27
[2011]	(2011) 9 एस. सी. सी. 257 : **रामचंद्रन और अन्य** बनाम **केरल राज्य** ;	22
[1996]	(1996) 1 एस. सी. सी. 614 : **कार्तिक मल्हार** बनाम **बिहार राज्य** ;	19
[1989]	(1989) 1 एस. सी. सी. 437 : **लालजी और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	22
[1981]	(1981) 3 एस. सी. सी. 675 : **हरि ओबुला रेड्डी और अन्य** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	18
[1965]	ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 202 : **मसलती और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ।	22

निर्दिष्ट निर्णय

[2012]	(2012) 1 एस. सी. सी. 602 : **राजस्थान राज्य** बनाम **शेरा राम** उर्फ **विष्णु दत्त** ;	28
[2011]	(2011) 12 एस. सी. सी. 56 : **हरेश मोहनदास राजपूत** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	33
[2011]	ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1064 : **किलाकथा परंबठ सासी और अन्य** बनाम **केरल राज्य** ;	15
[2007]	(2007) 9 एस. सी. सी. 135 : **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **बच्चूलाल** उर्फ **बलराम और अन्य** ;	26
[2007]	(2007) 2 एस. सी. सी. 170 : **रामदास और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	13
[2003]	(2003) 7 एस. सी. सी. 141 : **राम पाल** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	34

[2003]	(2003) 3 एस. सी. सी. 21 : **भगवान सिंह** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	26
[2001]	(2001) 6 एस. सी. सी. 71 : **हिमाचल प्रदेश राज्य** बनाम **ज्ञानचंद** ;	12
[1994]	(1994) 5 एस. सी. सी. 188 : **मेहराज सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	14
[1983]	(1983) 3 एस. सी. सी. 470 : **माछी सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य** ;	32
[1980]	(1980) 2 एस. सी. सी. 684 : **बचन सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ;	31
[1972]	ए. आई. आर. 1972 एस. सी. 2020 : **सोहराब और एक अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	25
[1972]	ए. आई. आर. 1972 एस. सी. 116 : **जादूनाथ सिंह और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ।	24

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2006 की दांडिक अपील सं. 1108, 1109, 1110, 1111 और 1112.

2004 की खंड न्यायपीठ दांडिक अपील सं. 621, 2003 की खंड न्यायपीठ दांडिक अपील सं. 464, 2003 की खंड न्यायपीठ दांडिक जेल अपील सं. 421 और 2003 की खंड न्यायपीठ दांडिक अपील सं. 674 में राजस्थान उच्च न्यायालय की जयपुर न्यायपीठ के तारीख 2 जून, 2005 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री सुशील कुमार जैन, पुनीत जैन, अनुराग गोहिल और (सुश्री) प्रतिभा जैन

प्रत्यर्थी की ओर से — सर्वश्री इम्तियाज़ अहमद, (सुश्री) नगमा इम्तियाज़ और मिलिन्द कुमार

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा ने दिया ।

न्या. मिश्रा – अभियोजन पक्ष के पक्षकथन से घटनाओं की जो शृंखला प्रकट होती है वह 28 और 29 जून, 2001 की मध्यरात्रि में घटित हुई है जिसके परिणामस्वरूप पांच व्यक्तियों अर्थात् पुरुषोत्तम, रामकुमार ढाका, कालू लाल माली और लोकेंद्र शर्मा, की हत्या की गई है और ये सभी ग्राम

रेलगांव के निवासी थे तथा हीरालाल मेघवाल रामपुरिया, कोटा का निवासी है । पांच व्यक्तियों की यह हत्या उस घटना के कारण हुई है जो इससे पहले कभी घटित हुई थी जिसमें किशनचंद पुत्र राम नारायण (ग्राम का सरपंच) की हत्या की गई थी और पिता को यह घोर संदेह हो गया था कि मृतकों ने न केवल हत्या की योजना बनाई थी अपितु उस हत्या के अपराध को कारित भी किया था और इस प्रकार बदले की भावना जाग गई और परिणामस्वरूप बदला लिया गया जिसके फलस्वरूप पांच व्यक्तियों की हत्या की गई । जघन्य घटनाओं के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि घटना की तारीख को बदले की भावना से रात्रि और अधिक अंधकारमय हो गई । जिसके मन में बदले की भावना होती है उसे कोई सीमा दिखाई नहीं देती और जिन अभियुक्तों के मन में बदले की भावना थी उन्हें परिस्थितियों को और गुरुतर बनाने में आनन्द आ रहा था जिसके परिणामस्वरूप पांच व्यक्तियों की मृत्यु हुई, 29 व्यक्तियों का विचारण किया गया, 17 अभियुक्तों की दोषसिद्धि की गई जिनमें से 6 अभियुक्त अर्थात् युवराज, हेमराज, हंसराज, राधे श्याम, मोदूनाथ और शेष 11 अभियुक्त अर्थात् लालचंद, धनपाल, कन्हैया लाल, नवल, रेवदी लाल, राम लाल, बाबू लाल, मांगी लाल, घनश्याम, राधे श्याम पुत्र प्रहलाद, और राधे श्याम पुत्र शंकर लाल को विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश, फास्ट ट्रेक (त्वरित न्यायालय) द्वारा 2002 के सेशन मामला सं. 27 में आजीवन कठोर कारावास से दंडादिष्ट किया गया । यह उल्लेखनीय है कि शेष अभियुक्तों को इन आरोपों से दोषमुक्त किया गया ।

2. जैसाकि प्रकट होता है, सभी अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 147, 148, 302, 342, 427, 435 और 406 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए विचारण हेतु भेजा गया । अनावश्यक ब्यौरों को छोड़ते हुए, इन अपीलों का निपटारा किए जाने के लिए आवश्यक तथ्य इस प्रकार हैं कि तारीख 28 जून, 2001 को लगभग 5.00 बजे अपराह्न में, इत्तिलाकर्ता रामकुमार धाकड़ के भाई पुरुषोत्तम, कालू लाल माली, लोकेन्द्र शर्मा और हीरा लाल मेघवाल, दो मोटर साइकिलों पर पुरुषोत्तम के मकान पर आए और जैसे ही वे ग्राम में पहुंचे राम नारायण, मोहन लाल, युवराज, हंसराज, लालचंद, धनपाल, कन्हैया लाल, नवल, रेवदी लाल, हेमराज, राधे श्याम पुत्र भोपाल, भोजराज, रमेश चंद्र, राम सिंह, बाबू लाल मीना, मांगी लाल, घनश्याम, राधे श्याम पुत्र प्रहलाद, मोदूलाल, राधे श्याम पुत्र शंकर लाल, जगदीश, शंभू दयाल, अमर लाल और सीता राम तथा 15-20 अन्य व्यक्ति गंडासे, तलवारों, सब्बलों और डंडों से लैस होकर आए । उन्होंने पुरुषोत्तम के मकान को घेर लिया जो

अपने बच्चों के साथ मकान में था । अभियुक्त व्यक्तियों ने पुरुषोत्तम के मकान पर चढ़ाई कर दी और पथराव करने लगे जिसके परिणामस्वरूप पुरुषोत्तम के मकान की छत पर लगी टाइलें टूट गईं । पुरुषोत्तम और उसके चार अन्य साथी पुरुषोत्तम और राधे श्याम (पुरुषोत्तम का भाई) के बीच लगी दीवार कूद कर एक तरफ आ गए और इत्तिलाकर्ता के एक कमरे में आकर शरण ली । सायं होने पर राक्षसी मन और अधिक खतरनाक हो जाता है और भयावह इच्छाएं बढ़ती जाती हैं, अभियुक्त व्यक्ति इत्तिलाकर्ता, उसकी पत्नी बद्रीबाई, माता पानाबाई और पुरुषोत्तम की पत्नी निर्मला बाई को प्रभूलाल मीणा की छत के नीचे बैठा दिया । लगभग आधे घंटे के पश्चात् उक्त ग्राम के सरपंच राम नारायण गुर्जर के नातेदार इत्तिलाकर्ता के मकान के सामने 15-20 व्यक्तियों के साथ एक जीप में आया और उसने दरवाजा तोड़ा, मकान में घुस गया और मकान में ही तलवारों, गंडासों और डंडों से वार किए जिसके परिणामस्वरूप कालू लाल माली, लोकेन्द्र शर्मा और हीरा लाल मेघवाल की मृत्यु मकान के अंदर ही हो गई । अभियुक्तों ने पुरुषोत्तम और राम कुमार को खींचकर बाहर निकाला और उनके सिर, चेहरों, हाथों और पैरों पर गंडासों और तलवारों से वार किए जिसके परिणामस्वरूप उन दोनों की क्षतियों के कारण मृत्यु हो गई । वे दोनों मोटर साइकिलों को रास्ते में ले आए और उनमें आग लगा दी और अमानवीय तथा राक्षसी कार्य करने के पश्चात् घटनास्थल से चले गए ।

3. जैसाकि अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री से स्पष्ट होता है, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तत्काल दर्ज नहीं कराई गई किंतु तारीख 29 जून, 2001 को 6.45 बजे पूर्वाह्न में दर्ज कराई गई । अन्वेषण के दौरान, अन्वेषक अधिकरण ने स्थल नक्शा तैयार किया, शवों का शवपरीक्षण कराया, रक्तरंजित कपड़े अभिगृहीत किए, साक्षियों के कथन अभिलिखित किए और अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा दी गई सूचना के आधार पर, जब वे अभिरक्षा में थे, अपराध में प्रयोग किए गए हथियारों को बरामद किया और अन्वेषण की अन्य औपचारिकताएं पूरी करने के पश्चात् न्यायिक मजिस्ट्रेट, डिगोद के समक्ष विभिन्न तारीखों पर आरोप पत्र प्रस्तुत किए और न्यायिक मजिस्ट्रेट, डिगोद ने मामले को सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर दिया । मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करने के पश्चात् विचारण न्यायालय ने तारीख 3 अप्रैल, 2002 को दंड संहिता की धारा 147, 427, 435, 148, 302, 460 और 342 तथा धारा 435/149 के अधीन अभियुक्त सं. 1, अभियुक्त सं. 5 से 9, 11, 12, 16, 21, 23, 24 और 26 के संबंध में आरोप विरचित किए गए । जहां तक अभियुक्तों के तीन समूहों का संबंध है लगभग एक

जैसे ही आरोप तारीख 21 सितंबर, 2002 को विरचित किए गए । अभियुक्तों ने अपराध में अंतर्वलित होने से इनकार किया, निर्दोष होने का अभिवाक् किया और विचारण की मांग की ।

4. अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध अपराधों को साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने 45 साक्षियों की परीक्षा की, कई दस्तावेज प्रदर्शित किए और बहुत सी तात्विक वस्तुओं को चिह्नांकित किया । अभियुक्त व्यक्तियों ने अपनी प्रतिरक्षा में 15 साक्षियों की परीक्षा की है ।

5. विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने चार प्रश्नों को विरचित किया है अर्थात् क्या अभियुक्तों ने सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने में मृतकों की मृत्यु कारित की है और अन्य व्यक्तियों पर हमला किया है ; क्या सभी अभियुक्तों ने पुरुषोत्तम के मकान पर पथराव करके और मृतकों के कब्जे से मोटर साइकिलें लेकर उनको आग में जलाकर रिष्टी कारित की है ; क्या अभियुक्त व्यक्तियों ने सामान्य आशय के साथ मृतकों की हत्या रात्रि में राधे श्याम के मकान में प्रच्छन्न गृह-अतिचार करते हुए कारित किया है ; और क्या सभी अभियुक्तों द्वारा अपराध कारित किए गए हैं । विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने विरचित किए गए तीनों प्रश्नों पर संयुक्त रूप से विचार किया है और अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का मूल्यांकन किया है और यह अभिनिर्धारित किया है कि अभियुक्त मोहन लाल, युवराज, हंसराज, हेमराज, राधे श्याम पुत्र गोपाल और मोदूनाथ दंड संहिता की धारा 148, 427, 342, 460 और 302 के अधीन अपराधों के दोषी हैं और तदनुसार, उन्हें क्रमशः तीन वर्ष का कठोर कारावास भोगने और 500/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने, दो वर्ष का कठोर कारावास भोगने और 500/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने, एक वर्ष का कठोर कारावास भोगने और 500/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने, दस वर्ष का कठोर कारावास भोगने और 2000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने और मृत्यु दंड दिए जाने का आदेश किया तथा जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर कारावास से दंडादिष्ट किया । अभियुक्त लाल चंद, रेवदी लाल, घनश्याम और राधे श्याम पुत्र प्रहलाद को दंड संहिता की धारा 148, 427, 342, 460 और 302/149 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया और क्रमशः 500/- रुपए जुर्माने के संदाय के साथ तीन वर्ष का कठोर कारावास भोगने, 500/- रुपए के जुर्माने के साथ दो वर्ष का कठोर कारावास भोगने, 500/- रुपए के जुर्माने के साथ एक वर्ष का कठोर कारावास भोगने, 2000/- रुपए के जुर्माने के साथ दस वर्ष का कठोर कारावास भोगने, 2000/- रुपए के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास

भोगने का दंडादेश दिया और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर कारावास से दंडादिष्ट किया । अभियुक्त धनपाल, कन्हैया लाल, नवल, रामलाल, बाबू लाल, मांगी लाल, राधे श्याम और चार अन्य अभियुक्तों को इन्हीं अपराधों का दोषी पाया और जुर्माने के साथ कई दंडादेश अधिरोपित किए गए । दंड संहिता की धारा 302/149 के अधीन अधिकतम दंड आजीवन कारावास और 2000/- रुपए का जुर्माना किया गया । शेष अभियुक्तों को दोषमुक्त किया गया ।

6. इस प्रक्रम पर, यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि राम नारायण अर्थात् ग्राम रेलगांव के सरपंच, जिसे विचारण के लिए भेजा गया था, की मृत्यु विचारण के दौरान हो गई है, तदनुसार उसके प्रति विचारण समाप्त किया गया ।

7. अभियुक्त अपीलार्थियों ने सात दांडिक अपीलें अर्थात् 2003 की दांडिक अपील सं. 464, 2003 की दांडिक अपील सं. 421, 2003 की दांडिक अपील सं. 621, 2003 की दांडिक अपील सं. 622, 2003 की दांडिक अपील सं. 670, 2003 की दांडिक अपील सं. 474 और 2003 की दांडिक अपील सं. 520 फाइल की हैं । राज्य ने अपना मामला 2003 के मृत्यु निर्देश सं. 1 के रूप में फाइल किया है किंतु अन्य 11 अभियुक्तों के संबंध में अभिलिखित दोषमुक्ति पर प्रश्न नहीं उठाया है । उच्च न्यायालय के समक्ष अभियुक्त अपीलार्थियों ने सभी अपराधों के संबंध में की गई दोषसिद्धि और दंडादेशों को चुनौती दी है और राज्य ने निचले न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय की प्रतिरक्षा की है ।

8. उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने सभी अपीलों पर विचार किया है और तारीख 2 जून, 2005 के एक ही निर्णय द्वारा सभी अपीलों का निपटारा किया है । उच्च न्यायालय ने साक्ष्य का मूल्यांकन, अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री की संवीक्षा करते हुए तथा पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों पर गहराई से विचार करते हुए मोहन लाल और अन्य अभियुक्तों, जिन्हें दंड संहिता की धारा 302 और 460 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और मृत्यु दंड से दंडादिष्ट किया गया था, द्वारा फाइल की गई अपीलों को भागतः मंजूर किया और दंड संहिता की धारा 302 और 460 के अधीन मोहन लाल पर लगाए गए आरोपों से उसे दोषमुक्त किया और जहां तक इसी वर्ग के अन्य अभियुक्तों का संबंध है मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया है और परिणामस्वरूप मृत्यु निर्देश खारिज किया गया । अभियुक्त अर्थात् लाल

चंद, रेवदी, घनश्याम, राधे श्याम, मांगी लाल और बाबू लाल को संदेह का लाभ दिया गया और उन्हें दंड संहिता की धारा 302 और 460 के अधीन विरचित आरोपों से दोषमुक्त किया । जहां तक अन्य अभियुक्तों अर्थात् कन्हैया लाल, नवल, राम लाल और राधे श्याम पुत्र शंकर लाल का संबंध है, विचारण न्यायालय द्वारा की गई दोषसिद्धि और दंडादेश कायम रखे गए ।

9. उच्च न्यायालय ने साक्ष्य का सूक्ष्मता से परिशीलन करने पर यह अभिनिर्धारित किया है कि सभी मृत्युएं मानव वध हैं, परंतु विद्वान् विचारण न्यायाधीश द्वारा अधिरोपित मृत्यु दंड न्यायोचित नहीं है ; प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज किए जाने में हुए विलंब को स्पष्ट नहीं किया गया है ; दंड संहिता की धारा 149 के अधीन परिकल्पित उपबंध स्पष्ट रूप से वर्तमान मामले को लागू नहीं होते हैं ; प्रतिरक्षा पक्ष का यह अभिवाक् है कि अभियोजन पक्ष ने केवल मृतकों के नातेदारों को ही साक्षी बनाया है, अतः उनके साक्ष्य को स्वीकार नहीं किया जा सकता, इस दलील में कोई सार नहीं है ; संपूर्ण घटना नियोजित रूप में कारित की गई है ; यह दलील कि किसी भी स्वतंत्र साक्षी की परीक्षा नहीं की गई है, निराधार है क्योंकि ऐसे सरपंच के विरुद्ध कोई भी व्यक्ति साक्ष्य देने का साहस नहीं करेगा जो मात्र संदेह के आधार पर नरसंहार में अंतर्वलित हो जाए और ऐसी स्थिति में आत्म-संरक्षा मूल प्रवृत्ति होने के कारण प्रभावी हो गई ; धनपाल पुत्र राम प्रताप (अभियुक्त सं. 5) की मृत्यु हो जाने के कारण उसकी अपील उपशमित कर दी गई ; लालचंद, रेवदी लाल, घनश्याम, राधे श्याम पुत्र प्रहलाद, मांगी लाल, बाबू लाल और मोहन का अपराध में अंतर्वलित होना संदिग्ध पाया गया, तदनुसार वे दोषमुक्त किए जाने योग्य हैं ; अन्य अभियुक्त अपीलार्थी अपराध कारित किए जाने में अंतर्वलित थे, अतः दंड संहिता की धारा 302 के अधीन की गई दोषसिद्धि में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है । जहां तक मृत्यु निर्देश का संबंध है, यह राय व्यक्त की गई है कि यह ऐसा विरल से विरलतम मामला नहीं है जिसमें मृत्यु दंड अधिरोपित किया जाना अपेक्षित हो, तदनुसार इसे कठोर आजीवन कारावास में उपांतरित किया गया है । उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष के साथ सभी अपीलों का निपटारा किया ।

10. हमने अभियुक्त अपीलार्थियों की ओर से दांडिक अपील सं. 1108 में विद्वान् काउंसेल श्री सुशील कुमार जैन और राज्य की ओर से सभी अपीलों में विद्वान् काउंसेल श्री इम्तियाज अहमद को सुना है ।

11. श्री जैन की पहली दलील यह है कि अभियोजन वृत्तांत त्यक्त किए जाने योग्य है क्योंकि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में विलंब हुआ

है और इसके संबंध में जो भी स्पष्टीकरण दिया गया है वह स्वीकार्य नहीं, घटना की समयावधि, पुलिस थाने की घटनास्थल से निकटता पर विचार किया जाना चाहिए था और अत्यधिक संख्या में अभियुक्तों को अपराध में आलिप्त करना तो बहुत ही गलत प्रतीत होता है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि निर्दोष व्यक्तियों को विचारण में फंसाया गया है और उन्हें अत्यधिक परेशानी हुई है, इस प्रकार ऐसे कहानी पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए ।

12. यह सुस्थापित विधि है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में किया गया मात्र विलंब अभियोजन पक्षकथन के लिए घातक नहीं है । तथापि, यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में हुए विलंब पर मामले की पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए विचार करे कि क्या अभियोजन पक्ष द्वारा स्वीकार्य स्पष्टीकरण दिया गया है या नहीं और यदि ऐसा स्पष्टीकरण दिया गया है तो इस पर विचार करना होगा कि वह संतोषजनक पाए जाने के आधार पर स्वीकार्य है या नहीं । इस संबंध में, हम **हिमाचल प्रदेश राज्य** बनाम **ज्ञानचंद**[1] वाले मामले के एक पैरा को निर्दिष्ट करना उचित समझते हैं जिसमें इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने निम्न प्रकार मत व्यक्त किया है :–

> "प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में हुए विलंब का प्रयोग अभियोजन पक्षकथन को संदिग्ध ठहराने के लिए आध्यात्मिक सूत्र के रूप में नहीं किया जा सकता है और अभियोजन पक्षकथन को मात्र प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में हुए विलंब के आधार पर त्यक्त नहीं किया जा सकता है । यदि किसी मामले में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में विलंब किया गया है तब न्यायालय को इस पर सतर्कतापूर्वक विचार करना चाहिए कि विलंब के संबंध में कोई स्पष्टीकरण दिया गया है या नहीं, और यदि स्पष्टीकरण दिया गया है तब न्यायालय को इस पर विचार करना चाहिए कि वह स्पष्टीकरण संतोषजनक है या नहीं । यदि अभियोजन पक्ष संतोषजनक रूप से विलंब स्पष्ट करने में असफल रहता है और ऐसे विलंब द्वारा अभियोजन वृत्तांत में अतिश्योक्ति होने की संभावना है तब ऐसा विलंब अभियोजन पक्ष के लिए घातक होगा । तथापि, यदि विलंब के स्पष्टीकरण से न्यायालय का समाधान हो जाता है तब ऐसे विलंब के आधार पर संपूर्ण पक्षकथन को अविश्वसनीय

---

[1] (2001) 6 एस. सी. सी. 71.

ठहराते हुए त्यक्त नहीं किया जा सकता है ।"

13. **रामदास और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में मात्र विलंब किया जाना अभियोजन पक्षकथन के लिए आवश्यक रूप से घातक नहीं है । तथापि, यह तथ्य कि रिपोर्ट विलंब से दर्ज कराई गई थी, ऐसा सुसंगत तथ्य है जिस पर न्यायालय को विचार करना चाहिए । इस तथ्य पर मामले के अन्य तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर विचार किया जाना चाहिए, और वर्तमान मामले में, न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में हुए विलंब को पर्याप्त रूप से स्पष्ट किया गया है । साक्ष्य की संपूर्णता के आलोक में न्यायालय को इस पर विचार करना चाहिए कि क्या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में हुए विलंब से अभियोजन पक्षकथन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा । इसका संबंध साक्ष्य का मूल्यांकन किए जाने से है । ऐसे भी मामले सामने आए हैं जिनमें विलंब को स्पष्ट करने के लिए प्रत्यक्ष साक्ष्य होता है । प्रत्यक्ष साक्ष्य के अभाव में भी, अभिलेख पर ऐसी परिस्थितियां हो सकती हैं जिनसे विलंब का युक्तियुक्त स्पष्टीकरण मिल जाता है । ऐसे भी मामले हैं जिनमें आहत को चिकित्सीय सहायता के लिए अस्पताल पहुंचाने में पर्याप्त समय लग जाता है, अतः साक्षी के पास तत्काल रिपोर्ट दर्ज कराने का समय नहीं रह पाता है । ऐसे भी मामले हैं जिनमें भय और धमकी के कारण साक्षी तत्काल पुलिस थाने जाने से बचते हैं । घटना का समय, घटनास्थल से पुलिस थाने की दूरी उपलब्ध सवारी का प्रकार आदि ऐसे संघटक हैं जिनका संबंध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में हुए विलंब के साथ होता है । ऐसे भी मामले हो सकते हैं जिनमें आहत और उसके परिवार के सदस्यों का संबंध समाज के ऐसे वर्ग के साथ होता है जिन्हें पुलिस में मामले की रिपोर्ट कराने और कानूनी कार्यवाही करने के अपने अधिकार के बारे में जानकारी नहीं होती है और न ही उन्हें ऐसा कोई भी परामर्श उपलब्ध हो पाता है ।

14. **मेहराज सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया है कि दांडिक मामले में विशेषकर हत्या के मामले में विचारण किए जाने के समय पर साक्ष्य का मूल्यांकन किए जाने के प्रयोजनार्थ प्रथम इत्तिला रिपोर्ट एक महत्वपूर्ण

---

[1] (2007) 2 एस. सी. सी. 170.

[2] (1994) 5 एस. सी. सी. 188.

साक्ष्य है और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तत्काल दर्ज किए जाने पर बल दिए जाने का उद्देश्य उस परिस्थिति के संबंध में वास्तविक अपराधियों के नाम और उनके द्वारा अपराध में निभाई गई भूमिका, हथियारों के ब्यौरे, यदि उनका प्रयोग किया गया है, तथा प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के नामों सहित तत्काल जानकारी प्राप्त करना है जिसमें अपराध कारित किया गया है ; प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज किए जाने में जो विलंब होता है उसके परिणामस्वरूप प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अतिश्योक्ति पैदा होती है जिसका कारण बाद में आया विचार है । इस तथ्य पर भी बल दिया गया है कि विलंब के कारण प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की न केवल सहजता समाप्त हो जाती है अपितु बनावटी या अतिश्योक्ति युक्त वृत्तांत निगमित हो जाता है ।

15. इस प्रकार क्या विलंब से अभियोजन पक्षकथन में कमी पैदा हुई है या नहीं और यह संदिग्ध है या नहीं, इसकी संवीक्षा तथ्य और परिस्थितियों की संपूर्णता के आधार पर विलंब के स्पष्टीकरण द्वारा की जानी चाहिए । साक्ष्य का मूल्यांकन करने के लिए न्यायालय को अत्यंत सावधानी और सतर्कता से काम लेना चाहिए ताकि विलंब के तथ्य के संबंध में दिए गए स्पष्टीकरण को लेकर न्यायालय का समाधान हो सके । **किलाकथा परंबठ सासी और अन्य** बनाम **केरल राज्य**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है कि जब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट विलंब से दर्ज कराई जाती है, ऐसा निष्कर्ष ठीक ही निकलता है कि अभियोजन वृत्तांत सत्य नहीं है किंतु दूसरी ओर यह भी निष्कर्ष निकलता है कि यदि यह पाया जाता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित किए जाने में कोई विलंब नहीं है, तब इसका यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि अभियोजन वृत्तांत अत्यधिक प्रबल है ।

16. वर्तमान तथ्यात्मक पृष्ठभूमि पर उपर्युक्त सिद्धांतों की कसौटी के आधार पर विचार किया जाना चाहिए । अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने पर यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि घटना रात्रि में घटित हुई थी । यह बात सत्य है कि पुरुषोत्तम के मकान का घेराव तारीख 28 जून, 2001 को लगभग 5.00 बजे अपराह्न में किया गया था किंतु वास्तविक अपराध अर्थात् हमला और हत्या अर्धरात्रि के पश्चात् की गई थी । बर्बरतापूर्ण किए जघन्य अपराध से प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों का मस्तिष्क और हाथ-पैर संभवतः सामान्य नहीं रहेंगे और वे पूर्णतया

---

[1] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1064.

भयभीत हो जाएंगे । कोई भी व्यक्ति पुलिस थाने की ओर एक इंच भी बढ़ने का साहस नहीं जुटा पाएगा, यह मनुष्य की प्रवृत्ति है कि वह पहले अपनी जान बचाता है और बाद में कुछ और करने के बारे में विचार करता है । मृतका के भाई अर्थात् इत्तिलाकर्ता ने स्पष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वह और अन्य व्यक्ति प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए पुलिस थाने जाने की हिम्मत नहीं कर पा रहे थे । एक दिन बीत जाने के पश्चात् उन्होंने साहस जुटाया और वे पुलिस थाने की ओर बढ़े और उन्होंने तारीख 29 जून, 2001 को 6.45 बजे पूर्वाह्न में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई । अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि वे उस समय भी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करा सकते थे जब मकान अभिगृहीत किया गया था न कि संपूर्ण घटना घटित होने के पश्चात् हम उक्त दलील से सहमत नहीं हैं और हमारा यह विचार है कि दिए गए इस स्पष्टीकरण को युक्तियुक्त मानना हमारी कल्पना के परे है । जैसाकि पहले ही विचार किया गया है, विलंबित प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में हेर-फेर की जा सकती है और उसमें बढ़ा-चढ़ाकर उल्लेख किया जा सकता है तथा अभियोजन वृत्तांत शिथिल हो सकता है किंतु जब विलंब को उपयुक्त रूप से स्पष्ट किया गया हो तब उसे स्वीकार किया जाना चाहिए और तदनुसार हम ऐसा ही कर रहे हैं ।

17. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री जैन ने अगला तर्क यह दिया कि सभी अभिकथित प्रत्यक्षदर्शी साक्षी मृतक पुरुषोत्तम के निकट नातेदार हैं और अभियोजन पक्ष ने किसी भी स्वतंत्र साक्षी की परीक्षा नहीं कराई है जबकि पुरुषोत्तम के मकान के निकट बहुत से मकान थे और इस बात से स्वयं अभियोजन वृत्तांत में कमी पैदा होती है । जब नातेदार, जो अभिकथित रूप से हितबद्ध साक्षी हैं, अभियोजन पक्ष द्वारा साक्षी बनाए गए हैं, तब ऐसी स्थिति में न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह कड़ी सावधानी से उनके साक्ष्य की संवीक्षा करे । वर्तमान मामले में संपूर्ण घटना पुरुषोत्तम के मकान के निकट घटित हुई है । पांच व्यक्तियों की हत्या की गई है । ऐसी परिस्थिति में यह पूर्णतया अप्रत्याशित है कि ग्राम के अन्य निवासी अपने कथन देने के लिए आगे बढ़ें और वे न्यायालय में अभिसाक्ष्य दें । यह ध्यान में रखना चाहिए कि ग्राम के सरपंच राम नारायण ने केवल संदेह के आधार पर यह देखा था कि पांच व्यक्तियों की हत्या की गई है । ऐसी स्थिति किसी व्यक्ति को इस बात के लिए बाध्य करती है कि वह स्वयं को आलिप्त न करे और सहन बुद्धि ऐसे दृष्टिकोण को सहमति देती है । इस

प्रकार, इस तथ्य के संबंध में कोई अपवाद नहीं लिया जा सकता है कि कोई भी स्वतंत्र साक्षी की परीक्षा नहीं कराई गई है । जहां तक नातेदारों अर्थात् राधे श्याम (अभि. सा. 1) जो कि मृतक का भाई है, रामलाल (अभि. सा. 2) जो कि राधे श्याम का भाई है, पन्ना बाई (अभि. सा. 3) जो कि पुरुषोत्तम और निर्मला बाई की माता है, पुरुषोत्तम की पत्नी (अभि. सा. 5), बद्री बाई (अभि. सा. 8), मनीषा (अभि. सा. 9) और कौशल्या (अभि. सा. 10) निकट नातेदार हैं और इन साक्षियों को प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के रूप में उद्धृत किया गया है ।

18. **हरि ओबुला रेड्डी और अन्य** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह राय व्यक्त की है कि इसे अपरिवर्तनीय नियम के रूप में अधिकथित नहीं किया जा सकता है कि हितबद्ध साक्षी कभी भी दोषसिद्धि का आधार नहीं हो सकता जब तक कि स्वतंत्र साक्षी द्वारा महत्वपूर्ण ब्यौरों के संबंध में महत्वपूर्ण सीमा तक संपुष्टि न हो जाए । आवश्यक यह है कि हितबद्ध साक्षी के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक संवीक्षा की जानी चाहिए और सतर्कता के साथ स्वीकार किया जाना चाहिए । यदि ऐसी संवीक्षा किए जाने के बाद, हितबद्ध साक्षी का परिसाक्ष्य वस्तुतः विश्वसनीय या अंतर्निहित रूप से संभावी पाया जाए, तब उस विशिष्ट मामले की परिस्थितियों में ऐसे साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि की जा सकती है ।

19. **कार्तिक मल्हार** बनाम **बिहार राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि ऐसा निकट नातेदार जो नैसर्गिक साक्षी है, हितबद्ध साक्षी नहीं माना जा सकता है क्योंकि हितबद्ध साक्षी का अर्थ यह है कि हितबद्ध साक्षी को अभियुक्त को दोषसिद्ध कराने से किसी न किसी प्रकार लाभ होता हो ।

20. वर्तमान मामले में, साक्षियों के पिता, पति और नातेदार की हत्या हुई है । इन साक्षियों को हितबद्ध साक्षी कहने का कोई भी ऐसा ठोस कारण दिखाई नहीं देता है कि साक्षी ऐसे अभियुक्तों को शत्रुता के कारण दोषसिद्ध कराएं जो अपराध में अंतर्वलित ही न हो । इसके प्रतिकूल, वे वास्तविक अपराधियों को ही अभियोजित और दोषसिद्ध कराना चाहेंगे । मानव प्रकृति का यही नैसर्गिक सिद्धांत है और मानव आचरण से यही

---

[1] (1981) 3 एस. सी. सी. 675.

[2] (1996) 1 एस. सी. सी. 614.

प्रत्याशित है, हमारा यह विचार नहीं है कि इन अभियुक्तों के मन में अभियुक्तों के विरुद्ध कोई दुर्भावना है अपितु इन साक्षियों ने नृशंस घटना के साक्षी के रूप में अभिसाक्ष्य दिया है । जैसाकि ऊपर मत व्यक्त किया गया है, हम आगे यह कहना चाहेंगे कि यह न्यायालय साक्षियों के परिसाक्ष्यों की संवीक्षा करने में सतर्कता और सावधानी बरतेगा और हम ऐसा ही कर रहे हैं ।

21. इत्तिलाकर्ता राधे श्याम ने अभियुक्तों द्वारा धमकी दिए जाने, छत पर कुछ अभियुक्तों के चढ़ने, मकान का घेराव करने, पथराव करने, तलवारों, गंडासों, सब्बलों और लाठियों जैसे खतरनाक हथियारों से लैस होने, मकान के भीतर हमला करने, दो मृतकों को घसीटकर लाने तथा अंततः मृतक की मृत्यु हो जाने के संबंध में अभिसाक्ष्य दिया है । यह अभिवाक् विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय द्वारा अविश्वसनीय ठहराया गया है कि यह साक्षी घटना देख ही नहीं सकता था क्योंकि रात्रि का समय था और वह छप्पर के अंदर था, अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री जैन ने यह उजागर करने का तुच्छ प्रयास किया है कि इस साक्षी ने घटना नहीं देखी थी, परंतु साक्ष्य की संवीक्षा किए जाने पर, यह स्पष्ट हो गया है कि घटनास्थल पर पूर्ण अंधकार नहीं था क्योंकि उस समय बिजली का बल्ब जल रहा था और यह साक्षी घटना देख सकता था । यही साक्ष्य अन्य अभियोजन साक्षियों द्वारा भी दिया गया है, जिसका विश्लेषण उच्च न्यायालय द्वारा कड़ी सतर्कता के साथ किया गया है । इस साक्ष्य का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने पर, हमारा यह निष्कर्ष है कि उक्त मूल्यांकन से भिन्न मत व्यक्त करने का इस आधार पर कोई कारण दिखाई नहीं देता है कि साक्षी मृतक के नातेदार हैं या इस आधार पर कि इन साक्षियों ने घटना नहीं देखी है । इस प्रकृति के मामले में, नातेदार ही वास्तविक अपराधियों के विरुद्ध अभिसाक्ष्य देने का साहस करते हैं और वे अन्य व्यक्तियों को अपराध में मिथ्या आलिप्त नहीं करेंगे । इन साक्षियों ने नृशंस अपराध होते देखा है और अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिसके आधार पर इन साक्षियों के परिसाक्ष्य को अविश्वसनीय मानकर त्यक्त किया जा सके । हमारा यह निष्कर्ष है कि इन साक्षियों का साक्ष्य विश्वसनीय और विश्वासप्रद है तथा उनके साक्ष्य के आधार पर कार्यवाही न करना अनुचित होगा । प्रतिपरीक्षा के दौरान ऐसी कोई सामग्री सामने नहीं आई है जिसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि साक्षियों का साक्ष्य असंभावी या संदिग्ध है और वह खारिज किया जाए । साक्षियों का ऐसा कोई हेतु नहीं है जिसके लिए वे अभियुक्तों को मिथ्या फंसाएं और

इसके अतिरिक्त इन साक्षियों के परिसाक्ष्य में महत्वपूर्ण विशिष्टियों को लेकर कड़ी प्रतिपरीक्षा की गई है और चिकित्सक के साक्ष्य से उनके परिसाक्ष्य की संपुष्टि भी होती है । इसके अतिरिक्त, अभिगृहीत किए गए हथियारों से भी अभियोजन साक्ष्य की विश्वसनीयता साबित होती है । उपरोक्त बातों के अतिरिक्त, यह निष्कर्ष निकालना लगभग असंभव है कि साक्षियों की अभियुक्तों से कोई भी शत्रुता थी जिसके आधार पर अभियुक्तों को दोषसिद्ध कराया जाए । इन साक्षियों के परिवार के सदस्यों की बर्बरतापूर्ण रीति में हत्या की गई है और इन परिस्थितियों में यह नहीं माना जा सकता है कि वे किसी भी वास्तविक अपराधी को छोड़कर अभियुक्तों को फंसाएंगे ।

22. श्री जैन ने अगला प्रतिवाद यह किया है कि साक्षियों ने विशिष्ट रूप से प्रत्येक अभियुक्त द्वारा अपराध में निभाई गई भूमिका के संबंध में कथन नहीं किया है क्योंकि उन्होंने यह उल्लेख नहीं किया है कि शरीर के किस भाग पर किस हथियार से हमला किया गया है । साक्ष्य का परिशीलन करने पर, यह प्रतीत होता है कि साक्षियों ने प्रयोग में लाए गए हथियारों का उल्लेख किया है और हमला किए जाने तथा शरीर के अंगों पर क्षतियां कारित होने का भी उल्लेख किया है । यह सत्य है कि साक्ष्य में कुछ विरोधाभास भी हैं किंतु वे तुच्छ हैं । इसके अतिरिक्त, अभियुक्तों ने मृतकों की हत्या करने के सामान्य उद्देश्य के साथ विधिविरुद्ध जमाव गठित किया था । उनका सामान्य उद्देश्य पूर्णतया स्पष्ट है क्योंकि उन्हें ज्ञान था और आरंभ से लेकर अंत तक उन्होंने सामान्य उद्देश्य को बनाए रखा । **मसलती और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1], **लालजी और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[2] और **रामचंद्रन और अन्य** बनाम **केरल राज्य**[3] वाले मामलों में अधिकथित सिद्धांत लागू करते हुए हमारा यह निष्कर्ष है कि सभी अभियुक्तों ने सामान्य उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए विधिविरुद्ध जमाव गठित किया था, तदनुसार हम अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलील का निःसंकोच खंडन करते हैं ।

23. अब हम अपीलों पर विचार करेंगे जिनमें उच्च न्यायालय ने अभियुक्तों को दोषमुक्त किया है । यहां यह उल्लेख करना समुचित होगा कि राज्य ने उच्च न्यायालय के समक्ष ऐसी कोई अपील फाइल नहीं की है

---

[1] ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 202.

[2] (1989) 1 एस. सी. सी. 437.

[3] (2011) 9 एस. सी. सी. 257.

जिसमें विद्वान् विचारण न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के निर्णय को चुनौती दी गई हो । जैसाकि हमें दिखाई देता है, उच्च न्यायालय ने सात अभियुक्तों अर्थात् मोहन, लालचंद, रेवदी लाल, बाबू लाल, मांगी लाल, घनश्याम और राधे श्याम को विभिन्न दांडिक अपीलों में दोषमुक्त किया है । इसके पूर्व कि हम उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत की शुद्धता पर विचार करें, हम दोषमुक्ति के निर्णय पर कार्यवाही करते समय न्यायालय की भूमिका का उल्लेख करना चाहेंगे ।

24. **जादूनाथ सिंह और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई अपील पर विचार करते हुए इस प्रकार मत व्यक्त किया है :–

> "22. इस न्यायालय ने निरंतर यह मत व्यक्त किया है कि दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई अपील में उच्च न्यायालय को पूर्ण शक्ति प्राप्त है कि वह संपूर्ण साक्ष्य का पुनर्विलोकन करे और तब इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ऐसे साक्ष्य के आधार पर दोषमुक्ति उलटी जानी चाहिए । दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई अपील में अपील न्यायालय की यह शक्ति को प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति द्वारा शिव स्वरूप **बनाम** किंग एम्परर [ए. आई. आर. 1934 पी. सी. 227(2)] और नूर मुहम्मद **बनाम** एम्परर [ए. आई. आर. 1945 पी. सी. 151] वाले मामलों में सूत्रबद्ध किया गया है । इन दोनों विनिश्चयों को इस न्यायालय के निर्णयों में निरंतर रूप से दांडिक अपीलों की सुनवाई के संबंध में अपील न्यायालय की शक्ति की वास्तविक परिधि को अधिकथित करते हुए निर्दिष्ट किया गया है । {सूरजपाल सिंह **बनाम** राज्य [1952] एस. सी. आर. 193 = ए. आई. आर. 1952 एस. सी. 52 और सनवत सिंह **बनाम** राजस्थान राज्य [1961] 3 एस. सी. आर. 120 = ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 715} वाले मामले देखिए ।"

25. **सोहराब और एक अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह राय व्यक्त की है कि दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन उच्च न्यायालय को संपूर्ण साक्ष्य का पुनर्विलोकन करने की पूर्ण शक्ति प्राप्त है जिसके आधार पर दोषमुक्ति का आदेश किया गया है ताकि उच्च

---

[1] ए. आई. आर. 1972 एस. सी. 116.

[2] ए. आई. आर. 1972 एस. सी. 2020.

न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंच सके कि साक्ष्य का समुचित मूल्यांकन करने के पश्चात् दोषमुक्ति का आदेश उलटा जाना चाहिए । ऐसी कोई भी परिसीमा नहीं लगाई जा सकती है जिसका उल्लेख संहिता में सुव्यक्त रूप से नहीं किया गया है । यह मत व्यक्त करने के पश्चात् दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इस प्रकार राय व्यक्त की :–

> "किंतु संहिता द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए और तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष निकालने के पूर्व, उच्च न्यायालय को सदैव ऐसे मामलों पर समुचित रूप से विचार करना चाहिए जो इस प्रकार हैं – (1) साक्षियों की विश्वसनीयता के संबंध में विचारण न्यायाधीश द्वारा व्यक्त किए गए मत ; (2) अभियुक्त के पक्ष में निर्दोषिता की उपधारणा, निश्चित रूप से यह उपधारणा इस तथ्य से निर्बल नहीं होंगी कि अभियुक्त को विचारण के दौरान दोषमुक्त किया गया है ; (3) किसी भी संदेह का लाभ पाने का अभियुक्त का अधिकार ; और (4) उस न्यायाधीश द्वारा निकाले गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने के संबंध में अपील न्यायालय द्वारा जल्दबाजी से काम न लिया जाना जिन्होंने साक्षियों को स्वयं देखा है ।"

26. **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **बच्चूलाल** उर्फ **बलराम और अन्य**[1] वाले मामले में **भगवान सिंह** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले और अन्य विनिश्चयों को निर्दिष्ट करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया गया है कि दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध की गई अपील पर विचार करते समय अपील न्यायालय को इस सिद्धांत का अनुपालन करना चाहिए कि ऐसे निर्णय में केवल तब हस्तक्षेप किया जाए जब ऐसा करने के लिए आबद्धकारी और सारभूत कारण हों । यदि आक्षेपित निर्णय स्पष्ट रूप से युक्तियुक्त हो और सुसंगत तथा तर्कसम्मत सामग्री प्रक्रिया में अनुचित रूप से निष्कासित हो गई है तब हस्तक्षेप किए जाने का आबद्धकारी कारण बनता है ।

27. **राजस्थान राज्य द्वारा गृह सचिव** बनाम **अब्दुल मन्नान**[3] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि जब किसी अभियुक्त को आपराधिक आरोप से दोषमुक्त किया जाता है तब उसको

---

[1] (2007) 9 एस. सी. सी. 135.

[2] (2003) 3 एस. सी. सी. 21.

[3] (2011) 8 एस. सी. सी. 65.

यह अधिकार निहित किया जाता है कि वह एक स्वतंत्र नागरिक है और यह न्यायालय उससे यह अधिकार को वापस लेने में अत्यंत सावधान रहता है । अभियुक्त के निर्दोष होने की उपधारणा दांडिक न्यायशास्त्र के अधीन अभियुक्त की दोषमुक्ति के तथ्य से और अधिक प्रबल हो जाती है । न्यायालयों ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि यदि मामले में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर दो मत संभव हैं तब न्यायालय को उस मत को अपनाना चाहिए जो अभियुक्त के पक्ष में जाता है । तथापि, मामले के तथ्य और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इस सिद्धांत को अपनाना चाहिए और महत्वपूर्ण नियम यह है कि क्या अभियोजन पक्ष ने अपना पक्षकथन संदेह के परे सिद्ध कर दिया है या नहीं । यदि अभियोजन पक्ष सबूत के भार का निर्वहन करने में सफल रहता है और साक्ष्य का मूल्यांकन करने में हुई गलती यदि स्पष्ट है तब ऐसी स्थिति में न्यायालय दोषमुक्ति के निर्णय में हस्तक्षेप कर सकता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि न्याय हुआ है । इसी पर दांडिक न्याय प्रशासन आधारित है ।

28. **राजस्थान राज्य** बनाम **शेरा राम** उर्फ **विष्णु दत्त**[1] वाले मामले में पूर्ववर्ती विनिश्चयों पर विचार करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया गया है कि दोषसिद्धि के विरुद्ध की गई अपील और दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई अपील के बीच बहुत कम किंतु स्पष्ट अंतर है । इस न्यायालय की न्यायिक राय की प्रधानता यह है कि दोषसिद्धि के विरुद्ध की गई अपील और दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई अपील के बीच कोई भी सारभूत अंतर नहीं है सिवाय इसके कि जब दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई अपील पर विचार किया जाए तब न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि अभियुक्त के पक्ष में निर्दोषिता की उपधारणा उसकी दोषमुक्ति द्वारा प्रबलित होती है और यदि उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत युक्तियुक्त है और उसके द्वारा निकाले गए निष्कर्ष पूर्णतया अभिलेख पर प्रस्तुत की गई सामग्री के आधार पर है तब दोषमुक्ति के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए । इस प्रकार, न्यायालय को अपीली अधिकारिता का प्रयोग करते समय इस सूक्ष्म अंतर को ध्यान में रखना चाहिए । स्वर्णिम नियम यह है कि न्यायालय का यह कर्तव्य है और उसे अपने इस कर्तव्य से पीछे नहीं हटना चाहिए कि जहां अपील न्यायालय को हस्तक्षेप करना पड़े वहां अन्याय न हो और न्याय ही हो और न्यायिक अंतरात्मा का समाधान होना चाहिए ।

29. उपर्युक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, हम दोषमुक्ति अभिलिखित

---

[1] (2012) 1 एस. सी. सी. 602.

करने में उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों का विश्लेषण करेंगे । लालचंद **उर्फ** रामनिवास वाले मामले में उच्च न्यायालय ने यह राय व्यक्त की है कि यद्यपि उसे अन्य व्यक्तियों के साथ नामित किया गया था जो 25-26 व्यक्तियों का एक समूह था और उन्होंने पुरुषोत्तम के मकान को घेर लिया था, फिर भी किसी भी साक्षी ने यह उल्लेख नहीं किया है कि वह मकान की छत पर गया था और छत को नुकसान पहुंचाया था, अतः अपराध में इस अभियुक्त की भूमिका संदिग्ध हो जाती है । रेवदी लाल की दोषमुक्ति पर विचार करते हुए उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि इस अपीलार्थी के विरुद्ध मात्र यह साक्ष्य है कि वह पुरुषोत्तम के मकान पर गया था और उसने पत्थर फेंके थे किंतु अन्य किसी भी साक्षी ने उसे नामित नहीं किया है सिवाय राम लाल (अभि. सा. 2) के । उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि सभी संभाव्यताओं में अतिश्योक्ति या बनावट प्रतीत होती है, तदनुसार उसे संदेह का लाभ दिया गया है । घनश्याम की दोषसिद्धि के संबंध में खंड न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया है कि उसके विरुद्ध लगाए गए अभिकथन बहुगर्भित हैं और विश्वसनीय प्रतीत नहीं होते हैं, तदनुसार संदेह का लाभ दिया गया है । ऐसे ही विश्लेषण के आधार पर राधे श्याम पुत्र प्रहलाद, मांगी लाल और बाबू लाल पुत्र देव लाल को भी संदेह का लाभ दिया गया है । जहां तक मोहन लाल का संबंध है, उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि मोहन लाल के अपराध में आलिप्त होने के संबंध में साक्षियों के साक्ष्य में महत्वपूर्ण विरोधाभास है, इस प्रकार न्यायालय ने यह महसूस किया है कि उसे दोषसिद्ध करना उचित नहीं होगा, तदनुसार साक्ष्य की समुचित रूप से संवीक्षा करने पर उसे संदेह का लाभ दिया गया । उपर्युक्त निर्णय विधि में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित सिद्धांतों को लागू करते हुए यह अभिनिर्धारित करना अत्यंत दुष्कर होगा कि सारभूत और आबद्धकारी कारण, ठीक और पर्याप्त आधार, अत्यंत ठोस परिस्थितियां, विकृत निष्कर्ष या स्पष्ट भूलें की गई हैं और अभियोजन पक्ष ने सबूत के भार का निर्वहन किया है, अतः हमारी यह सुविचारित राय है कि उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत में कोई भी कमी नहीं है । हमारा यह विचार है कि उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण पूर्णतया अकल्पनीय नहीं हो सकता । न्यायालय ने इस पर विचार किया है कि बहुत से व्यक्तियों ने अपराध में भाग लिया है, और कड़ी संवीक्षा और अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री पर सम्यक् रूप से विचार करने के पश्चात्, उन अभियुक्त व्यक्तियों को संदेह का लाभ दिया है जिन्हें दोषमुक्त किया गया है । इस प्रकार, हम दोषमुक्ति अभिलिखित करने में उच्च न्यायालय

द्वारा निकाले गए निष्कर्ष का खंडन नहीं कर रहे हैं ।

30. विचार के लिए अगला मुद्दा यह सामने आता है कि क्या उच्च न्यायालय ने मृत्युदंड को आजीवन कारावास में बदल कर गलती की है । मृत्यु निर्देश पर विचार करते समय उच्च न्यायालय ने यह राय व्यक्त की है कि जब अपीलार्थियों द्वारा स्पष्ट कृत्य नहीं किया गया है और ऐसा ही कृत्य करने वाले अभियुक्त व्यक्तियों को जब आजीवन कारावास से दंडादिष्ट किया गया है और राम नारायण की, जिसने घटना की योजना बनाई थी, मृत्यु हो चुकी है तब मृत्युदंड अधिरोपित करना उचित नहीं होगा । उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि राम नारायण के तीन पुत्रों को मृत्युदंड अधिनिर्णीत किया गया है और अन्य दो अपीलार्थी ग्रामवासी हैं और इस पृष्ठभूमि में दंडादेश को न्यून करने के संघटक दिखाई देते हैं ।

31. उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए कारणों के अतिरिक्त हम उन परिस्थितियों पर विचार करना उचित समझते हैं कि क्या वर्तमान मामले में मृत्युदंड वांछनीय है । **बचन सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में संविधान न्यायपीठ ने निम्न अभिनिर्धारित किया है :–

> "मानव जीवन की गरिमा के लिए वास्तविक और मूल प्रश्न विधि के माध्यम से बिना सोचे समझे जीवन नष्ट किए जाने पर प्रतिरोध लगाने के संबंध में है । ऐसा केवल विरल से विरलतम मामलों को छोड़कर किसी भी मामले में नहीं किया जाना चाहिए जब कोई भी विकल्प अप्रश्नात्मक रूप से उपलब्ध न हो ।"

32. **माछी सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[2] वाले मामले में न्यायालय ने संप्रदाय की भावनाओं और आत्म संरक्षा की इच्छा का उल्लेख करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया कि प्रत्येक मामले में संप्रदाय मृत्यु-दंड की मंजूरी द्वारा आत्म संरक्षा को प्रत्याहृत करना नहीं चाहता है । ऐसा विरल से विरलतम मामलों में हो सकता है जब उसका संचयी अंतःकरण इतना प्रभावित हो जाए कि न्यायिक शक्ति रखने वाले अधिकारी से यह प्रत्याशा की जाए कि वह अपनी निजी राय से असंबद्ध मृत्युदंड अधिरोपित करे या अन्यथा मृत्यु दंड कायम रखे । ऐसा मत व्यक्त करने के पश्चात्, तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **बचन सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में

---

[1] (1980) 2 एस. सी. सी. 684.

[2] (1983) 3 एस. सी. सी. 470.

परिकल्पित प्रतिपादनाओं को निम्न प्रकार संक्षिप्त किया है :–

> "(i) मृत्यु जैसा चरमदंड अत्यंत अपराधिता वाले मामलों को छोड़कर किसी भी मामले में अधिरोपित नहीं किया जाना चाहिए ।
>
> (ii) मृत्युदंड का विकल्प चुनने के पूर्व 'अपराध' की परिस्थितियों के साथ-साथ 'अपराधी' की परिस्थितियों पर भी विचार किया जाना चाहिए ।
>
> (iii) आजीवन कारावास नियम है और मृत्युदंड अपवाद है । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि मृत्युदंड केवल तब अधिरोपित किया जाना चाहिए जब अपराध की सुसंगत परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आजीवन कारावास पूरी तरह अनुचित दंड प्रतीत होता हो, परंतु यह केवल तब जबकि आजीवन कारावास का दंड अधिरोपित करने के विकल्प का प्रयोग अपराध की प्रकृति और परिस्थितियों तथा सभी सुसंगत परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए भानपूर्ण नहीं किया जा सकता हो ।
>
> (iv) गुरूतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों की एक तालिका बनाई जानी चाहिए और ऐसा करने में न्यूनकारी परिस्थितियों को वरीयता दी जानी चाहिए और विकल्प का प्रयोग किए जाने के पूर्व गुरूतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों के बीच संतुलन बनाया जाना चाहिए ।"

33. **हरेश मोहनदास राजपूत** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में न्यायपीठ ने **बचन सिंह** (उपरोक्त) और **माछी सिंह** (उपरोक्त) वाले मामलों को निर्दिष्ट किया और निम्न मत व्यक्त किया :–

> "'विरल से विरलतम मामला' तब बनता है जब एक अपराधी समाज के सौहार्द और शांति के लिए खतरा हो । अपराध जघन्य या क्रूर हो सकता है किंतु वह 'विरल से विरलतम मामले' की कोटि में नहीं आ सकता । यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं होना चाहिए कि अभियुक्त को सुधारा नहीं जा सकता है या उसे पुनर्वास नहीं किया जा सकता है और यह कि उसके हिंसा से भरे आपराधिक कृत्य करते रहने की संभावना है जिससे समाज पर खतरा बना रहे ।

---

[1] (2011) 12 एस. सी. सी. 56.

अभियुक्त समाज के लिए खतरा हो सकता है और आगे भी बना रह सकता है जिससे समाज की शांति और सौहार्द भंग हो सकता है । जिस रीति में अपराध किया गया है वह ऐसी होनी चाहिए कि समाज का आक्रोश बढ़ जाए और समाज के संचयी अंतःकरण को आघात पहुंचे । यदि अभियुक्त प्रकोपन के परिणामस्वरूप अपराध नहीं करता है और पूरी तरह जानबूझकर नियोजित रूप में तथा बारीकी के साथ अपराध करता है तब ऐसी स्थिति में ऐसे घृणित अपराध के लिए मृत्युदंड दिया जाना अत्यंत उचित होगा । मृत्युदंड वहां भी वांछनीय होता है जहां आहत निर्दोष बच्चे और असहाय महिलाएं हैं । इस प्रकार, यदि अपराध अत्यंत क्रूर और अमानवीय रीति में कारित किया गया है जो कि अत्यधिक बर्बरतापूर्ण प्रतिशोध से भरा हो और अपराधी का कृत्य समाज की सभी नैतिकताओं को प्रभावित करे अर्थात् अपराध शक्ति प्रदर्शन या राजनीतिक उद्देश्य या संगठित आपराधिक क्रियाकलाप के लिए कारित किया गया हो, तब ऐसी स्थिति में मृत्यु दंड अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए [मणीयप्पन **बनाम** तमिलनाडु राज्य (2010) 9 एस. सी. सी. 567, दारा सिंह **बनाम** भारत गणराज्य (2011) 2 एस. सी. सी. 490, सुरेन्द्र कोली **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य (2011) 4 एस. सी. सी. 80, मुहम्मद मन्नान **बनाम** बिहार राज्य (2011) 5 एस. सी. सी. 317 और सुदाम **बनाम** महाराष्ट्र राज्य (2011) 7 एस. सी. सी. 125 वाले मामले देखिए] ।"

34. **राम पाल** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में खंड न्यायपीठ ने इस तथ्य पर विचार किया कि बहुत से व्यक्तियों का जीवन नष्ट हुआ है और यह राय व्यक्त की है कि मृत्यु की संख्या के आधार पर भी मृत्युदंड जैसे अत्यधिक दंड को अधिनिर्णीत नहीं किया जा सकता है । न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया है कि वर्तमान मामले में एक हत्या किए जाने के बावजूद भी मृत्युदंड उचित हो सकता है, इसका यही अर्थ नहीं लगाया जा सकता है कि प्रत्येक बहुसंख्य हत्या के मामले में मृत्युदंड सामान्य नियम होना चाहिए । न्यायालय ने **बचन सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा दिए गए मार्गदर्शक सिद्धांतों, गुरूतरकारी परिस्थितियों और न्यूनकारी परिस्थितियों पर विचार किया है और यह राय व्यक्त की है कि अपीलार्थी के निकट नातेदारों की एक के बाद एक हत्या की गई है और अन्य मुख्य अभियुक्तों की भी हत्या की गई है जिन पर आहत पक्ष के

---

[1] (2003) 7 एस. सी. सी. 141.

लोगों को संदेह था । खंड न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया है कि परिस्थिति पर इस प्रकार विचार किया गया है मानो आहत पक्ष द्वारा प्रकोपन किया गया हो । इसके अतिरिक्त, खंड न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया है कि इस मामले में के अपीलार्थी द्वारा किया गया अपराध अन्य अभियुक्तों के अपराध जैसा है जिनको आजीवन कारावास अधिरोपित किया गया है, और उन्होंने लगभग अभिरक्षा में 17 वर्ष पूरे कर लिए हैं ।

35. वर्तमान मामले में, जैसाकि हमने तथ्यात्मक स्थिति पर विचार किया है, अपराध इसलिए कारित किया गया है कि राम नारायण को यह संदेह था कि मृतकों ने उसके पुत्र की हत्या की है । यह भी देखा गया है कि एक ही जैसा अपराध करने वाले व्यक्तियों को आजीवन कारावास अधिरोपित किया गया है । इस बात से पूर्णतया हटकर, सभी अभियुक्त अभिरक्षा में लगभग 13 वर्ष पूरे कर चुके हैं । संपूर्ण परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह नहीं कहा जा सकता है कि आजीवन कारावास अनुचित है और यह भी नहीं कहा जा सकता है कि परिस्थितियां इतनी गंभीर हैं कि मृत्युदंड दिया जाए । संपूर्ण पृष्ठभूमि का समुचित परिप्रेक्ष्य के साथ न्याय निर्णयन करने पर, हमारा यह विचार है कि यह ऐसा मामला नहीं है जिसे अत्यंत अपराधिता का मामला माना जाए और यह ऐसा मामला नहीं है कि जिसमें मृत्युदंड अधिरोपित किए जाने के सिवाय कोई और दंड अधिरोपित नहीं किया जा सके । इस प्रकार, हमें उच्च न्यायालय के इस विनिश्चय में कोई भी त्रुटि दिखाई नहीं देती है जिसके अनुसार उच्च न्यायालय ने मृत्युदंड को आजीवन कारावास में परिवर्तित किया है ।

36. परिणामतः, अभियुक्त अपीलार्थियों और दंड में वृद्धि तथा अभियुक्तों के पक्ष में किए गए दोषमुक्ति के निर्णयों को उलटने के लिए राज्य द्वारा फाइल की गई अपीलें खारिज की जाती हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

अस./अनू.

प्रेम कौर

बनाम

पंजाब राज्य और अन्य

25 अप्रैल, 2013

न्यायमूर्ति (डा.) बी. एस. चौहान और न्यायमूर्ति फकीर मुहम्मद इब्राहीम खलीफुल्ला

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 354 – निर्णय – कारणों का अभाव – न्यायालय द्वारा विवेक का प्रयोग न किया जाना – निर्णय से यह दर्शित होना चाहिए कि वह विवेक का प्रयोग किए जाने और साक्ष्य का समुचित मूल्यांकन किए जाने के परिणामस्वरूप दिया गया है, अन्यथा ऐसा निर्णय विधिमान्य नहीं होगा ।

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 376 – बलात्संग – पिता और पुत्र का अपराध में एक साथ अंतर्वलित होना – दोषमुक्ति का अनुचित पाया जाना – पिता और पुत्र एक साथ बलात्संग नहीं कर सकते, यह अत्यंत अनधिसंभाव्य नहीं हो सकता, अभिकथन सही है या गलत इसकी परीक्षा अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर की जानी चाहिए और ऐसे बलात्संग को अनधिसंभाव्य विनिश्चित नहीं किया जा सकता, अतः मात्र इस आधार पर अभियुक्तों की दोषमुक्ति उचित नहीं होगी ।

इस मामले में शिकायतकर्ता प्रेम कौर के साथ अभियुक्त पिता और अभियुक्त पुत्र दोनों ने एक साथ बलात्संग किया । विचारण न्यायालय ने इस अपराध को अनधिसंभाव्य मानते हुए दोनों अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया । शिकायतकर्ता ने इस दोषमुक्ति के विरुद्ध पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय में अपील की । उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय को मान्य ठहराते हुए शिकायतकर्ता प्रेम कौर की अपील खारिज कर दी । उच्च न्यायालय के इस निर्णय के विरुद्ध शिकायतकर्ता ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – उच्चतम न्यायालय निचले न्यायालयों के निर्णयों और आदेशों से संतुष्ट नहीं हुआ । चूंकि अपीलार्थी सभी साक्षियों के कथनों की प्रतिलिपियां न्यायालय में प्रस्तुत नहीं कर सका था इसलिए इस न्यायालय

ने तारीख 2 अप्रैल, 2013 के आदेश द्वारा राज्य की ओर से हाजिर होने वाले काउंसेल को यह निदेश दिया है कि वह अभियोजन साक्षियों और प्रतिरक्षा साक्षियों के जो भी अभिसाक्ष्य हैं उनकी प्रतिलिपियों के दो-दो सैट फाइल करें । तथापि, उक्त आदेश का अनुपालन नहीं किया गया है और ऐसा न करने का सही कारण राज्य प्राधिकारियों को ही मालूम होगा । विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि अभियोजन पक्ष प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में हुए असामान्य विलंब को स्पष्ट करने में असफल रहा है क्योंकि यह घटना 7 फरवरी, 1995 को घटित हुई थी अर्थात् प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने के तीन दिन पूर्व । अपीलार्थी-अभियोक्त्री ने स्वयं विलंब को स्पष्ट करते हुए साक्ष्य दिया है । तथाकथित समझौता विलेख भी अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया है । अपीलार्थी ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि जब उसे होश आया था तब तारीख 9 फरवरी, 1995 को उप निरीक्षक द्वारा उसका कथन अभिलिखित किया गया था । यही तथ्य श्री कबाला सिंह (अभि. सा. 13) द्वारा भी स्वीकार किया गया है । विचारण न्यायालय ने पैरा 9 तक पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है और इसके पश्चात् केवल एक पैरा अर्थात् पैरा 10 में संपूर्ण मामले पर विचार किया है । इस पैरा में भी विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभियोक्त्री या अन्य किसी साक्षी के कथन को सरसरी तौर पर निर्दिष्ट तो किया है किंतु उसका समुचित रूप से मूल्यांकन करने में असफल रहा है । जब यह मामला उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया, उच्च न्यायालय ने भी कोई भी उत्तेजना दर्शित नहीं की और अभियुक्तों के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की गंभीरता पर भी विचार नहीं किया है । इस प्रकार ऐसा केवल परिस्थितियों के कारण ही हुआ कि राज्य ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील फाइल नहीं की । पुनरीक्षण आवेदन पर विचार करते समय उच्च न्यायालय द्वारा कोई भी कारण नहीं दिए गए हैं । इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय ने किसी भी चिकित्सा रिपोर्ट पर विचार किए बिना यह मत व्यक्त किया कि अभियोक्त्री के शरीर पर किसी भी प्रकार की कोई भी क्षति कारित नहीं हुई है, यद्यपि निकाला गया निष्कर्ष, अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के स्वीकृत रूप से प्रतिकूल है । न्यायालय ने पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई पारस्परिक विरोधी दलीलों पर विचार किया है किन्तु साक्ष्य की परीक्षा करने का कोई भी अवसर नहीं मिला है क्योंकि राज्य ने तारीख 2 अप्रैल, 2013 को इस

न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुपालन को सुनिश्चित नहीं किया है न ही राज्य ने विचारण न्यायालय द्वारा किए गए दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध कोई अपील प्रस्तुत की है और पता नहीं क्यों इस न्यायालय के समक्ष कोई भी आवेदन नहीं किया है । इस प्रकार, राज्य प्राधिकरण ने अपीलार्थी के प्रति पूर्णतया पक्षपाती व्यवहार किया है जिसका कारण राज्य को ही भली प्रकार मालूम होगा । निचले न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष इस आधार पर अनुचित हो सकते हैं कि विचारण न्यायालय ने दोषमुक्ति के लिए कोई भी ठोस कारण अभिलिखित नहीं किए हैं यद्यपि अभियोक्त्री का यह पक्षकथन है कि वह अस्पताल में भर्ती रही थी । उसने न्यायालय में यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वह उपर्युक्त अपराध का शिकार हुई है । उच्च न्यायालय ने भी मामले में सच्चाई का पता लगाए बिना विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित कारणों को अनदेखा किया है । विचारण न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में 'संहिता' कहा गया है) की धारा 354 के उपबंधों के आधार पर मामले को विनिश्चित नहीं किया है । उक्त उपबंधों के अधीन किसी दांडिक मामले में निर्णय देते समय एक विशिष्ट प्रक्रिया और रीति का उल्लेख किया गया है और ऐसे प्रारूप के अंतर्गत अवधारण किया जाना चाहिए, उसके आधार पर विनिश्चय किया जाना चाहिए और ऐसे विनिश्चय के लिए कारण दिए जाने चाहिएं, युक्तियुक्त निर्णय के बिना दिया गया अंतिम आदेश विधिमान्य और विधि की दृष्टि से शुद्ध नहीं हो सकता है । निर्णय से यह दर्शित होना चाहिए कि वह न्यायालय के पीठासीन अधिकारी द्वारा विवेक का प्रयोग किए जाने के परिणामस्वरूप दिया गया है और यह कि अभिलेख पर प्रस्तुत संपूर्ण साक्ष्य का समुचित मूल्यांकन भी किया गया है और निकाला गया निष्कर्ष साक्ष्य के ऐसे मूल्यांकन पर ही आधारित है । इस प्रकार, प्रत्येक न्यायालय का यह कर्तव्य है कि अपने निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कारणों का उल्लेख करे । इस प्रकार, उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए यह विधि अधिकथित की जा सकती है कि न्यायालय को अपने निष्कर्षों पर पहुंचने के लिए कारण व्यक्त करने चाहिएं । निचले न्यायालयों ने इस मामले में अत्यंत संक्षिप्त रूप से विचार किया है । न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों तक पहुंचने के लिए अत्यंत स्पष्ट कारण दिए जाने चाहिए थे जिनका यहां अभाव है । निचले न्यायालयों के निर्णयों में, दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन अधिकथित कानूनी उपबंधों की अपेक्षाओं का अनुपालन नहीं किया गया है । निचले

न्यायालयों द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से अयुक्तियुक्त है और इससे घोर अन्याय हुआ है । न्यायालयों को त्रुटिपूर्ण और अस्पष्ट निर्णय नहीं देने चाहिए थे । वास्तव में, विधि की दृष्टि से इसे निर्णय कहा ही नहीं जा सकता है । उच्चतम न्यायालय निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों की शुद्धता, वैधता और औचित्य पर विचार करने की स्थिति में नहीं हैं । निचले न्यायालयों के निर्णयों में ठोस कारणों का अभाव ही एकमात्र अनियमितता नहीं है अपितु प्रत्यक्ष अवैधता भी है । (पैरा 3, 4, 5, 8, 9, 10, 18 और 21)

न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा दर्शाई गई न्यायिक अनुभूतिहीनता पर आश्चर्य है और उसके विचार से उच्च न्यायालय ने भी ऐसा करने में कमी नहीं की है । विचारण न्यायालय द्वारा अपनाया गया यह दृष्टिकोण कि पिता और पुत्र एक साथ बलात्संग नहीं कर सकते हैं, स्वयं में अत्यंत असंभाव्यता का आधार नहीं हो सकता, तथापि, यह मामला विरल से विरलतम मामले की कोटि में आ सकता है । अभिकथन सही है या गलत इसकी परीक्षा अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर की जानी चाहिए और ऐसे मुद्दे को मात्र असंभाव्य विनिश्चित नहीं किया जा सकता है । (पैरा 22)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2010]	(2010) 3 एस. सी. सी. 174 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. (सप्ली.) 651 = 2010 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 1442 : **सत्यवीर सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	16
[2001]	ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 386 = 2000 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 4275 : **गया दीन और अन्य** बनाम **हनुमान प्रसाद और अन्य** ;	14
[1999]	ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 677 = 1999 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 129 : **कुलदीप सिंह** बनाम **पुलिस आयुक्त और अन्य** ;	13
[1995]	ए. आई. आर. 1995 एस. सी. 686 = 1995 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 467 : **मुख्तियार सिंह और एक अन्य** बनाम **पंजाब राज्य** ;	20

[1994]	ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 1341 : **त्रिवेणी रबर एंड प्लास्टिक्स** बनाम **कलेक्टर ऑफ सेन्ट्रल एक्साइज, कोच्चि** ;	12
[1992]	(1992) सप्ली. 2 एस. सी. सी. 312 : **एच. बी. गांधी और अन्य** बनाम **गोपी नाथ एंड सन्स** ;	11
[1984]	ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1805 : **राजेन्द्र कुमार किन्द्रा** बनाम **दिल्ली प्रशासन** ;	15
[1973]	ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 2407 : **पंजाब राज्य** बनाम **जागीर सिंह, बलजीत सिंह और करम सिंह** ।	19

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2008 की दांडिक अपील सं. 1364.

2001 की दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 392 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ के तारीख 21 अगस्त, 2006 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री डी. के. ठाकुर, डा. वी. पी. अप्पन और डी. झा

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री मधुकर (अपर महाधिवक्ता), (सुश्री) शिवानी महिपाल, रजत कपूर, अनीस अहमद खां, (सुश्री) अनविता कौशिक और (सुश्री) एस. रंजिता माथुर (कुलदीप सिंह की ओर से)

आदेश

यह अपील 2001 की दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 392 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ के तारीख 21 अगस्त, 2006 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया है और 1995/2000 के सेशन विचारण मामला सं. 9 में प्रत्यर्थी-अभियुक्तों की भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'दंड संहिता' कहा गया है) की धारा 148, 323, 149, 363, 376, 342 और 506 के अधीन दंडनीय अपराध के आरोपों से

दोषमुक्ति के संबंध में सेशन न्यायालय के तारीख 7 जून, 2000 के निर्णय और आदेश की पुष्टि की है ।

2. जिन तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर यह अपील फाइल की गई है, वे निम्न प्रकार हैं :–

(क) तारीख 7 फरवरी, 1995 को अपीलार्थी को जो कि एक महिला श्रमिक है, प्रत्यर्थी-अभियुक्तों द्वारा अपनी कार में खींच लिया गया और उसे डेरा खुशियां दास, ग्राम ठांठा ले जाया गया । प्रत्यर्थी द्वारा अपीलार्थी की पिटाई की गई और उसे चुप रहने तथा कुछ कागजात पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश किया गया । बाबा जागीर सिंह (जिसकी अब मृत्यु हो चुकी है) ने अपीलार्थी के साथ बलात्संग किया था । इसके पश्चात्, इस मामले में के प्रत्यर्थी सं. 3 और 4 ने भी उसके साथ बलात्संग किया था । अपीलार्थी के साथ इस सीमा तक दुर्व्यवहार किया गया कि डेरे में रहने वाली एक महिला ने जिसका नाम सविन्दर कौर है, अपीलार्थी के गुप्तांगों में पिसी हुई मिर्च का प्रयोग किया और उसे कमरे में निरुद्ध कर दिया गया ।

(ख) तारीख 8 फरवरी, 1995 को अपीलार्थी का पति कई व्यक्तियों के साथ आया और उसने अपीलार्थी को डेरे से बचाया । अपीलार्थी को बेहोशी की अवस्था में सिविल अस्पताल, तरनतारन ले जाया गया और पुलिस को सूचना दी गई ।

(ग) तारीख 9 फरवरी, 1995 को अपीलार्थी को होश आया । उसी दिन उप निरीक्षक कबाला सिंह (अभि. सा. 13) द्वारा उसका कथन अभिलिखित किया गया । इसके पश्चात् अपीलार्थी पर प्रत्यर्थियों द्वारा दबाव डाला गया कि वह समझौता कर ले और उन्होंने मामले को रफा-दफा करने का प्रयास किया और उन्होंने समझौते के संबंध में एक हस्ताक्षरित करार भी प्रस्तुत किया । इस बात को दृष्टिगत करते हुए पुलिस ने तारीख 9 फरवरी, 1995 को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने से इनकार कर दिया । अपीलार्थी के कहने पर तारीख 10 फरवरी, 1995 को तरनतारन पुलिस थाने में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज हो सकी ।

(घ) अन्वेषण के पश्चात् प्रत्यर्थी-अभियुक्तों के विरुद्ध इसमें

इसके ऊपर निर्दिष्ट धाराओं के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया और मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया । विचारण न्यायालय ने अपने तारीख 7 जून, 2000 के निर्णय और आदेश द्वारा सभी अभियुक्तों को इस आधार पर दोषमुक्त कर दिया कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में विलंब है और अभियोजन पक्ष इस विलंब को स्पष्ट नहीं कर सका, यद्यपि समझौता अभिलेख फाइल किया गया किंतु न्यायालय ने इस पर इस लिए विचार नहीं किया कि अपराध शमनीय नहीं थे । विचारण न्यायालय इस तथ्य से भ्रमित हो गया कि पिता और पुत्र एक साथ किसी पत्नी के साथ बलात्संग नहीं कर सकते ।

(ङ) विचारण न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष 2001 का दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 392 प्रस्तुत किया और यह आवेदन तारीख 21 अगस्त, 2006 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया । इसलिए यह अपील फाइल की गई है ।

3. यह न्यायालय निचले न्यायालयों के निर्णयों और आदेशों से संतुष्ट नहीं है । चूंकि अपीलार्थी सभी साक्षियों के कथनों की प्रतिलिपियां न्यायालय में प्रस्तुत नहीं कर सका था इसलिए इस न्यायालय ने तारीख 2 अप्रैल, 2013 के आदेश द्वारा राज्य की ओर से हाजिर होने वाले काउंसेल को यह निदेश दिया है कि वह अभियोजन साक्षियों और प्रतिरक्षा साक्षियों के जो भी अभिसाक्ष्य हैं उनकी प्रतिलिपियों के दो-दो सैट फाइल करें । तथापि, उक्त आदेश का अनुपालन नहीं किया गया है और ऐसा न करने का सही कारण राज्य प्राधिकारियों को ही मालूम होगा ।

4. विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि अभियोजन पक्ष प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में हुए असामान्य विलंब को स्पष्ट करने में असफल रहा है क्योंकि यह घटना 7 फरवरी, 1995 को घटित हुई थी अर्थात् प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने के तीन दिन पूर्व । अपीलार्थी-अभियोक्त्री ने स्वयं विलंब को स्पष्ट करते हुए साक्ष्य दिया है । तथाकथित समझौता विलेख भी अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया है । अपीलार्थी ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि जब उसे होश आया था तब तारीख 9 फरवरी, 1995 को उप निरीक्षक द्वारा उसका कथन अभिलिखित किया गया था । यही तथ्य श्री कबाला सिंह (अभि. सा. 13) द्वारा भी

स्वीकार किया गया है ।

5. विचारण न्यायालय ने पैरा 9 तक पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है और इसके पश्चात् केवल एक पैरा अर्थात् पैरा 10 में संपूर्ण मामले पर विचार किया है । इस पैरा में भी विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभियोक्त्री या अन्य किसी साक्षी के कथन को सरसरी तौर पर निर्दिष्ट तो किया है किंतु उसका समुचित रूप से मूल्यांकन करने में असफल रहा है ।

6. विचारण न्यायालय ने अभियोक्त्री के शरीर पर पाई गई क्षतियों के संबंध में, डा. तजविन्दर सिंह (अभि. सा. 1) के कथन पर विचार किया है जो निम्न प्रकार है :–

> "1. दाईं इलियक अस्थि पर 5 इंच x 5 इंच माप की खरोंच जिसका रंग लाल-नीला है । कहीं भी ताजा रक्तस्राव नहीं है ।
>
> 2. सिर की दाईं पार्श्वकपालीय अस्थि में 3 इंच x 3 इंच माप की सूजन है । निचली अस्थि सुरक्षित पाई गई है । क्षति को संप्रेक्षणाधीन रखा गया है ।
>
> 3. बाईं कोहनी के जोड़ के बाहर की ओर 5 इंच x 5 इंच माप की खरोंच है ।
>
> 4. उदर में दर्द की शिकायत की गई है, क्षति को संप्रेक्षणाधीन रखा गया है ।
>
> 5. गला घोंटने का प्रयास किए जाने के परिणामस्वरूप निगलने और बोलने में कठिनाई होने का अभिकथन किया गया है । नाक, कान, गला के विशेषज्ञ की राय मांगी गई है ।
>
> 6. जैसा कि परिवादी ने अभिकथन किया है कि उसके साथ बलात्संग किया गया है इसलिए स्त्री रोग विशेषज्ञ की राय मांगी गई है ।"

डा. करनैल कौर (अभि. सा. 9) ने अपीलार्थी की चिकित्सा परीक्षा की है और उसने निम्न मत व्यक्त किया है :–

> "(i) योनि से रक्तमय धुंधला स्राव निकल रहा है ।
>
> (ii) योनि द्वार पर 6.00 बजे की आकृति में छोटा विदीर्ण घाव

है ।

(iii) परीक्षण के दौरान उंगली डालने पर रक्तस्राव प्रतीत होता है ।

(iv) मेरी राय में मैथुन किए जाने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है ।"

7. विचारण न्यायालय ने चिकित्सक (अभि. सा. 9) के कथन को निम्न प्रकार निर्दिष्ट किया है :–

"डा. करनैल कौर (अभि. सा. 9) जिन्होंने तारीख 9 फरवरी, 1995 को प्रेम कौर की चिकित्सा परीक्षा की है, बाईं इलियक के बाहर की ओर 5 सें मी. x 5 सें मी. माप की खरोंच मौजूद है, अभियोक्त्री की योनि में दो उंगलियां जा सकती है । योनि से धुंधला रक्तमय स्राव निकल रहा है ।"

विचारण न्यायालय ने निम्न कारण देते हुए सभी अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया :–

"इस संबंध में कोई भी तर्कसम्मत साक्ष्य नहीं है कि अभियुक्तों अर्थात् बाबा जागीर सिंह और उसका पुत्र कराज सिंह और जगतार सिंह द्वारा अभियोक्त्री के साथ बलात्संग किया गया है । यह संभव नहीं है कि पिता और पुत्र एक ही समय पर बलात्संग कारित कर सकते हैं ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

8. जब यह मामला उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया, उच्च न्यायालय ने भी कोई भी उत्तेजना दर्शित नहीं की और अभियुक्तों के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की गंभीरता पर भी विचार नहीं किया है । इस प्रकार ऐसा केवल परिस्थितियों के कारण ही हुआ कि राज्य ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील फाइल नहीं की । पुनरीक्षण आवेदन पर विचार करते समय उच्च न्यायालय द्वारा कोई भी कारण नहीं दिए गए हैं । इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय ने किसी भी चिकित्सा रिपोर्ट पर विचार किए बिना यह मत व्यक्त किया कि अभियोक्त्री के शरीर पर किसी भी प्रकार की कोई भी क्षति कारित नहीं हुई है, यद्यपि निकाला गया निष्कर्ष, अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के स्वीकृत

रूप से प्रतिकूल है ।

9. हमने पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई पारस्परिक विरोधी दलीलों पर विचार किया है किन्तु साक्ष्य की परीक्षा करने का कोई भी अवसर नहीं मिला है क्योंकि राज्य ने तारीख 2 अप्रैल, 2013 को इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुपालन को सुनिश्चित नहीं किया है न ही राज्य ने विचारण न्यायालय द्वारा किए गए दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध कोई अपील प्रस्तुत की है और पता नहीं क्यों इस न्यायालय के समक्ष कोई भी आवेदन नहीं किया है । इस प्रकार, राज्य प्राधिकरण ने अपीलार्थी के प्रति पूर्णतया पक्षपाती व्यवहार किया है जिसका कारण राज्य को ही भली प्रकार मालूम होगा ।

10. निचले न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष इस आधार पर अनुचित हो सकते हैं कि विचारण न्यायालय ने दोषमुक्ति के लिए कोई भी ठोस कारण अभिलिखित नहीं किए हैं यद्यपि अभियोक्त्री का यह पक्षकथन है कि वह अस्पताल में भर्ती रही थी । उसने न्यायालय में यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वह उपर्युक्त अपराध का शिकार हुई है । उच्च न्यायालय ने भी मामले में सच्चाई का पता लगाए बिना विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित कारणों को अनदेखा किया है ।

11. **एच. बी. गांधी और अन्य** बनाम **गोपी नाथ एंड सन्स**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि सुसंगत सामग्री को अनदेखा या अपवर्जित करके या असंगत सामग्री पर विचार करके निष्कर्ष निकाला गया है या निष्कर्ष से ऐसी तर्कणा का खंडन होता है जो अयुक्तियुक्तता से ग्रसित हो या अनुचित हो, तब ऐसी स्थिति में निकाला गया निष्कर्ष विधि की दृष्टि से शिथिल होगा ।

12. **त्रिवेणी रबर एंड प्लास्टिक्स** बनाम **कलेक्टर ऑफ सेन्ट्रल एक्साइज, कोच्चि**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि आदेश अनुचितता से ग्रस्त होगा यदि सुसंगत साक्ष्य पर विचार न किया गया हो या कतिपय अग्राह्य साक्ष्य पर विचार किया गया हो या यह कहा जा सकता हो कि प्राधिकरण द्वारा निकाले गए निष्कर्ष बिल्कुल भी किसी भी साक्ष्य पर आधारित नहीं हैं या वे इतने अनुचित हैं कि कोई

---

[1] (1992) सप्ली. 2 एस. सी. सी. 312.

[2] ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 1341.

भी युक्तियुक्त व्यक्ति ऐसे निष्कर्ष पर न पहुंच सके ।

13. **कुलदीप सिंह** बनाम **पुलिस आयुक्त और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने इसी मत को दोहराते हुए यह मत अभिनिर्धारित किया है कि यदि अभिलेख पर ऐसा कोई साक्ष्य है जिसे स्वीकार किया जा सके और जिस पर विश्वास किया जा सके चाहे वह कितना भी संक्षिप्त क्यों न हो, तब ऐसे निकाले गए निष्कर्षों को अनुचित नहीं माना जा सकता और उनमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

14. **गया दीन और अन्य** बनाम **हनुमान प्रसाद और अन्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि कोई आदेश अनुचित माना जाएगा यदि वह प्रक्रियात्मक अनियमितता से ग्रस्त है ।

15. **राजेन्द्र कुमार किन्द्रा** बनाम **दिल्ली प्रशासन**[3] वाले मामले में इस न्यायालय ने एक कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाहियों के मामले पर कार्यवाही करते समय इस मुद्दे पर विचार किया और निम्न अभिनिर्धारित किया :–

> "यह उतना ही सुस्थापित है कि जब न्यायिककल्प ट्राइब्युनल या मध्यस्थ ऐसे निष्कर्षों पर पहुंचता है जो किसी भी विधिक साक्ष्य पर आधारित न हों और ये निष्कर्ष उसके अपने शब्द हों या अनुमान और अटकलों पर आधारित हों तब ऐसी स्थिति में की गई जांच विवेक का प्रयोग न किए जाने जैसी अतिरिक्त शिथिलताओं से ग्रस्त होगी और दूषित मानी जाएगी ..... और इससे पूर्णतया यह प्रकट होता है कि विवेक से काम नहीं लिया गया है..... । हमारी राय में उच्च न्यायालय ने इस दलील पर विचार करने से इनकार करके गलती की है कि निकाले गए निष्कर्ष अधूरे होने के कारण अनुचित हैं और इस आधार पर पूर्ण रूप से कायम रखे जाने योग्य नहीं है कि मामला साक्ष्य के मूल्यांकन पर ही आधारित होता है ।"

---

[1] ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 677 = 1999 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 129.
[2] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 386 = 2000 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 4275.
[3] ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1805.

16. **सत्यवीर सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है :–

> "'अनुचित' को व्यवहार कहा गया है जिसे बहुत से लोग गलत, अस्वीकार्य और अयुक्तियुक्त मानते हैं तथा अनुचित निर्णय को संभवतः इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि वह साक्ष्य के सार के प्रतिकूल ही नहीं अपितु पूर्ण रूप से सार के विरुद्ध होता है । इसके अतिरिक्त, जो निष्कर्ष अनुचित होता है, वह विकृत निष्कर्षों और सुस्पष्ट गलतियों से ग्रसित होता है ।"

17. यदि निचले न्यायालयों के निर्णयों पर उपर्युक्त सुस्थापित विधिक प्रतिपादना के आधार पर विचार किया जाए तो उसे अनुचितता से ग्रसित माना जाएगा ।

18. विचारण न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में 'संहिता' कहा गया है) की धारा 354 के उपबंधों के आधार पर मामले को विनिश्चित नहीं किया है । उक्त उपबंधों के अधीन किसी दांडिक मामले में निर्णय देते समय एक विशिष्ट प्रक्रिया और रीति का उल्लेख किया गया है और ऐसे प्रारूप के अंतर्गत अवधारण किया जाना चाहिए, उसके आधार पर विनिश्चय किया जाना चाहिए और ऐसे विनिश्चय के लिए कारण दिए जाने चाहिएं, युक्तियुक्त निर्णय के बिना दिया गया अंतिम आदेश विधिमान्य और विधि की दृष्टि से शुद्ध नहीं हो सकता है । निर्णय से यह दर्शित होना चाहिए कि वह न्यायालय के पीठासीन अधिकारी द्वारा विवेक का प्रयोग किए जाने के परिणामस्वरूप दिया गया है और यह कि अभिलेख पर प्रस्तुत संपूर्ण साक्ष्य का समुचित मूल्यांकन भी किया गया है और निकाला गया निष्कर्ष साक्ष्य के ऐसे मूल्यांकन पर ही आधारित है । इस प्रकार, प्रत्येक न्यायालय का यह कर्तव्य है कि अपने निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कारणों का उल्लेख करे ।

19. **पंजाब राज्य** बनाम **जागीर सिंह, बलजीत सिंह और करम सिंह**[2]

---

[1] (2010) 3 एस. सी. सी. 174 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. (सप्ली.) 651 = 2010 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 1442.

[2] ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 2407.

वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्न अभिनिर्धारित किया है :–

> "दांडिक विचारण किसी परी की कहानी की तरह नहीं है जिसमें कोई व्यक्ति कोई भी कल्पना कर सके । इसका संबंध इस प्रश्न से होता है कि क्या जिस व्यक्ति का विचारण किया जा रहा है वह उस अपराध का दोषी है या नहीं जिससे उसे आरोपित किया गया है । अपराध वास्तविक जीवन में हुई घटना है और विभिन्न मानवीय भावनाओं के आदान-प्रदान का परिणाम है । किसी अपराध से आरोपित अभियुक्त के दोषी होने से संबंधित निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, न्यायालय को संभाव्यताओं की कसौटी पर साक्ष्य को परखना चाहिए, साक्ष्य के मूल सार और साक्षियों के व्यवहार पर विचार करना चाहिए । अंतिम विश्लेषण के दौरान प्रत्येक मामला अपने ही तथ्यों पर निर्भर होता है । यद्यपि प्रत्येक युक्तियुक्त संदेह का लाभ अभियुक्त को दिया जाना चाहिए और न्यायालयों को ऐसे साक्ष्य को उसी समय खारिज नहीं कर देना चाहिए जो प्रथमदृष्ट्या बनावटी या अटकलों पर आधारित प्रतीत हो ।"

20. **मुख्तियार सिंह और एक अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने संहिता की धारा 354 की कानूनी अपेक्षाओं के अनुपालन पर बल देते हुए निम्न मत व्यक्त किया है :–

> ".....इसका समाधान नहीं किया जा सकता है । विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति तथा दोषसिद्धि दोनों के आदेश अत्यंत लापरवाही से, बिना विचार किए पारित किए गए हैं, यहां तक कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर न तो विचार किया गया है और न ही चर्चा की गई है तथा न्यायालय में दी गई दलीलों पर भी विचार नहीं किया गया है .....। ऊपर उल्लिखित पैरा 28 से 32 में यह पाया गया है कि दोषमुक्ति और दोषसिद्धि के आदेश किए गए हैं । विचारण न्यायालय ने हत्या जैसे गंभीर मामले में कार्यवाही की है । विचारण न्यायालय से यह प्रत्याशा की जाती है कि वह साक्ष्य पर विचार करे और उसकी संवीक्षा करे और न्यायालय में दी गई दलीलों पर विचार करने के पश्चात् समुचित निष्कर्ष पर पहुंचे .....। निर्णय में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है कि विचारण के दौरान

---

[1] ए. आई. आर. 1995 एस. सी. 686 = 1995 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 467.

अनेक साक्षियों ने क्या-क्या अभिसाक्ष्य दिए हैं, सिवाय चिकित्सा साक्षी के । इस निर्णय से यह भी प्रकट नहीं होता है कि अभियोजन पक्ष और प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से न्यायालय के समक्ष क्या दलील दी गई है । यह निर्णय अत्यंत ढुलमुल है .....। यह प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय ने आनंदमय होकर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 354(i)(ख) के अधीन अपेक्षाओं को अनदेखा किया है । चूंकि प्रथम अपील इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई है, इसलिए विचारण न्यायालय को न्यायालय के समक्ष दी गई दलीलों को अभिलिखित करने के अतिरिक्त साक्षियों के साक्ष्य के कम से कम महत्वपूर्ण भाग की ही चर्चा करनी चाहिए थी ताकि अपील न्यायालय को वह आधार प्राप्त हो जाता जिस पर वह निर्णय देता । विनिश्चय का अर्थ मात्र निष्कर्ष से नहीं है – इसके अंतर्गत वे कारण भी आते हैं जिनके आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं । विचारण न्यायालय के निर्णय में केवल निष्कर्ष दिए गए हैं और इसके अतिरिक्त कुछ नहीं । अतः विचारण न्यायालय के निर्णय को कायम नहीं रखा जा सकता है । यह मामला विचारण न्यायालय को वापस भेजने योग्य है ताकि विधि के अनुसरण में नए सिरे से निर्णय देते हुए मामले का निपटारा किया जा सके ।

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

21. इस प्रकार, उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए यह विधि अधिकथित की जा सकती है कि न्यायालय को अपने निष्कर्षों पर पहुंचने के लिए कारण व्यक्त करने चाहिए । निचले न्यायालयों ने इस मामले में अत्यंत संक्षिप्त रूप से विचार किया है । न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों तक पहुंचने के लिए अत्यंत स्पष्ट कारण दिए जाने चाहिए थे जिनका यहां अभाव है । निचले न्यायालयों के निर्णयों में, दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन अधिकथित कानूनी उपबंधों की अपेक्षाओं का अनुपालन नहीं किया गया है । निचले न्यायालयों द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से अयुक्तियुक्त है और इससे घोर अन्याय हुआ है । न्यायालयों को त्रुटिपूर्ण और अस्पष्ट निर्णय नहीं देने चाहिए थे । वास्तव में, विधि की दृष्टि से इसे निर्णय कहा ही नहीं जा सकता है । हम निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों की शुद्धता, वैधता और औचित्य पर विचार करने की स्थिति में नहीं हैं । निचले न्यायालयों के निर्णयों में ठोस कारणों का अभाव

ही एकमात्र अनियमितता नहीं है अपितु प्रत्यक्ष अवैधता भी है ।

22. हमें विचारण न्यायालय द्वारा दर्शाई गई न्यायिक अनुभूतिहीनता पर आश्चर्य है और हमारे विचार से उच्च न्यायालय ने भी ऐसा करने में कमी नहीं की है । विचारण न्यायालय द्वारा अपनाया गया यह दृष्टिकोण कि पिता और पुत्र एक साथ बलात्संग नहीं कर सकते हैं, स्वयं में अत्यंत असंभाव्यता का आधार नहीं हो सकता, तथापि, यह मामला विरल से विरलतम मामले की कोटि में आ सकता है । अभिकथन सही है या गलत इसकी परीक्षा अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर की जानी चाहिए और ऐसे मुद्दे को मात्र असंभाव्य विनिश्चित नहीं किया जा सकता है ।

23. हम निचले न्यायालयों द्वारा मामले पर विचार किए जाने में अपनाई गई रीति का अनुमोदन नहीं कर सकते । अपील सफल होती है और मंजूर की जाती है । इस प्रकार, निचले न्यायालयों के निर्णय अपास्त किए जाते हैं और मामला अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य/सामग्री के आधार पर नए सिरे से विनिश्चित किए जाने के लिए विचारण न्यायालय को भेजा जाता है ।

24. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, विचारण न्यायालय दोनों पक्षकारों की ओर से दी गई दलीलों को सुनेगा और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्तों के कथनों में उनके द्वारा ली गई प्रतिरक्षा पर ध्यान देते हुए प्रत्येक साक्ष्य पर विचार करेगा, और विधि के अनुसरण में निष्कर्ष अभिलिखित करेगा । यह मामला इस आदेश की प्रमाणित प्रतिलिपि की प्राप्ति के तीन मास की अवधि के भीतर विचारण न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया जाएगा ।

तथापि, मामले का निपटारा करने से पूर्व हम यह स्पष्ट करते हैं कि इस आदेश में दी गई किसी भी राय पर, विचारण न्यायालय द्वारा कार्यवाही करते समय मामले के गुणागुणों को ध्यान में रखते हुए विचार नहीं किया जाएगा क्योंकि हमने मामले के गुणागुणों के संबंध में कोई भी राय व्यक्त नहीं की है ।

अपील मंजूर की गई ।

अस./अनू.

एस. अय्यपन

बनाम

मैसर्स यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और एक अन्य

1 जुलाई, 2013

न्यायमूर्ति सुरिन्दर सिंह निज्जर और न्यायमूर्ति एम. वाई. इकबाल

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 149 – बीमाकर्ता का दायित्व – पालिसी की शर्त के अतिक्रमण की प्रतिरक्षा – बीमा पालिसी की किसी शर्त का अतिक्रमण किए जाने पर भी बीमाकर्ता पर-व्यक्ति को प्रतिकर संदत्त करने संबंधी अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता क्योंकि पालिसी की शर्त का अतिक्रमण किए जाने पर बीमाकर्ता कतिपय परिस्थितियों में पर-व्यक्ति को संदत्त की गई प्रतिकर की रकम बीमाकृत व्यक्ति से वसूल कर सकता है ।

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 149 और 146 – बीमाकर्ता का दायित्व – बीमाकर्ता इस आधार पर अपने दायित्व को अस्वीकार नहीं कर सकता कि यद्यपि दुर्घटना में अंतर्वलित यान का चालक हल्का मोटर यान चलाने की विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति धारण किए हुए था किन्तु वाणिज्यिक यान के रूप में प्रयुक्त हल्का मोटर यान चलाने से पूर्व चालन अनुज्ञप्ति में वाणिज्यिक यान चलाने संबंधी पृष्ठांकन नहीं कराया गया था ।

प्रस्तुत मामले में महिन्द्रा वैन और साइकिल की टक्कर के परिणामस्वरूप साइकिल चालक की मृत्यु हो गई थी । मोटर यान निरीक्षक की रिपोर्ट से यह प्रकट होता है कि यह दुर्घटना यांत्रिकी त्रुटि के कारण नहीं घटी थी । मृतक की पत्नी (इस मामले में प्रत्यर्थी सं. 2) द्वारा दावा याचिका फाइल करने पर मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने अभिलेख पर विद्यमान साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् 2,42,400/- रुपए का प्रतिकर अधिनिर्णीत किया जिसका संदाय प्रत्यर्थियों द्वारा अधिकरण के समक्ष संयुक्ततः और पृथक्तः याचिका की तारीख से 12 प्रतिशत वार्षिक ब्याज सहित किया जाना था । अधिकरण का यह मत था कि हल्का मोटर यान चलाने वाली अनुज्ञप्ति धारण करने वाला व्यक्ति महिन्द्रा मैक्सी कैब चलाने का हकदार है । बीमा कंपनी ने अधिकरण के निर्णय और अधिनिर्णय को

चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । बीमा कंपनी ने प्रतिकर की मात्रा के संबंध में विवाद नहीं किया किन्तु यह दलील देते हुए दायित्व को ही प्रश्नगत किया कि यान के चालक के पास उस दिन यान चलाने के लिए विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी । बीमा कंपनी की दलील यह थी कि हल्का मोटर यान चलाने के लिए अनुज्ञप्ति धारण करने वाला व्यक्ति वाणिज्यिक यान चलाने के लिए प्राधिकृत नहीं है । इसके विपरीत, दावेदार की ओर से यह दलील दी गई थी कि ऐसा व्यक्ति, जिसके पास हल्का मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति है, वाणिज्यिक यान भी चला सकता है । उच्च न्यायालय ने दोनों पक्षों के विद्वान काउन्सेलों की सुनवाई करने और विचार करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया कि चूंकि यान का उपयोग एक टैक्सी के रूप में किया जा रहा था, जो कि एक वाणिज्यिक यान है, इसलिए उक्त यान के चालक से समुचित अनुज्ञप्ति धारण करना अपेक्षित था । अतः, चूंकि बीमा संविदा की शर्त का भंग किया गया था इसलिए बीमा कंपनी दावेदार को कोई प्रतिकर संदत्त करने के लिए दायी नहीं है । उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । इस अपील में यही एकमात्र प्रश्न विचारार्थ उद्भूत होता है कि क्या कोई बीमा कंपनी इस आधार पर अपने दायित्व को अस्वीकार कर सकती है कि यद्यपि यान का चालक हल्के मोटर यान चलाने के लिए सम्यक् रूप से अनुज्ञप्त था तथापि, उसकी अनुज्ञप्ति में वाणिज्यिक यान के रूप में उपयोग किया जाने वाला हल्का मोटर यान चलाने के लिए पृष्ठांकन नहीं था । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – किसी सड़क दुर्घटना के शिकार व्यक्ति द्वारा प्रतिकर का दावा करने का अधिकार एक कानूनी अधिकार है । संसद् ने अपने विवेक द्वारा मोटर यान अधिनियम में सुसंगत उपबंध अंतःस्थापित किए हैं जिससे कि यान में यात्रा करने वाले या सड़क का प्रयोग करने वाले सड़क दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान किया जा सके और तद्द्वारा यह आबद्धकर बनाया गया कि किसी भी मोटर यान का तब तक उपयोग नहीं किया जाएगा जब तक कि वह यान पर-व्यक्ति जोखिम के लिए अनिवार्य रूप से बीमाकृत नहीं है । मोटर यान अधिनियम, 1988 के अध्याय 11 (1939 के अधिनियम का अध्याय 8) में दिए गए "मोटर यानों का पर-व्यक्ति जोखिम बीमा" शीर्ष से ही यह दर्शित होता है कि विधान मंडल का आशय पर-व्यक्ति बीमा को अनिवार्य बनाना और यह सुनिश्चित

करना था कि मोटर यानों के उपयोग से होने वाली दुर्घटना का शिकार मृत्यु या पहुंची क्षतियों के लिए प्रतिकर प्राप्त करने में समर्थ होंगे । यह उपबंध यानों में यात्रा करने वाले या सड़क का उपयोग करने वाले व्यक्तियों को सड़क पर मोटर यानों के उपयोग के आनुषंगिक जोखिम से संरक्षा प्रदान करने की दृष्टि से अंतःस्थापित किया गया है । विधान-मंडल ने इस अप्रिय स्थिति से निपटने के लिए यह आबद्धकर बनाया है कि किसी भी मोटर यान का तब तक उपयोग नहीं किया जाएगा जब तक कि पर-व्यक्ति बीमा प्रवृत्त न हो । (पैरा 2 और 17)

मोटर यान अधिनियम की धारा 146 और धारा 147 के उपबंधों का पठन करने पर यह प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट है कि कतिपय परिस्थितियों में बीमाकर्ता के अधिकार को संरक्षित किया जाता है किन्तु बीमाकर्ता को तब हर हालत में जब विधिमान्य बीमा प्रमाणपत्र जारी किया जाता है इस तथ्य के होते हुए प्रतिकर का संदाय करना होगा कि बीमाकर्ता रकम की वसूली के लिए बीमाकृत व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही कर सकेगा । मोटर यान अधिनियम की धारा 149 के अधीन बीमाकर्ता अन्य बातों के साथ-साथ इन आधारों पर कार्यवाही में प्रतिवाद कर सकता है, अर्थात् (i) यान नामित व्यक्ति द्वारा नहीं चलाया गया था, (ii) वह ऐसे व्यक्ति द्वारा चलाया जा रहा था जिसके पास सम्यक् रूप से अनुदत्त अनुज्ञप्ति नहीं थी, और (iii) यान चलाने वाला व्यक्ति कोई चालन अनुज्ञप्ति धारित और अभिप्राप्त करने के लिए निरर्हित था । अतः, हमारी सुविचारित राय में, बीमाकर्ता इस आधार पर अपने दायित्व का परित्याग नहीं कर सकता कि यद्यपि चालक हल्का मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति धारण किए हुए था किन्तु वाणिज्यिक यान के रूप में प्रयुक्त हल्का मोटर यान चलाने से पूर्व चालन अनुज्ञप्ति में वाणिज्यिक यान चलाने संबंधी कोई पृष्ठांकन अभिप्राप्त नहीं किया गया था । किसी भी दशा में, पर-व्यक्ति का यह कानूनी अधिकार है कि वह इस प्रकार अधिनिर्णीत प्रतिकर की रकम बीमाकर्ता से वसूल करे । यदि बीमा पालिसी की किसी शर्त का अतिक्रमण किया गया है तो बीमाकर्ता उस रकम की वसूली के लिए बीमाकर्ता व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र है । (पैरा 18)

वर्तमान मामले में, स्वीकृततः चालक हल्का मोटर यान चलाने के लिए एक विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति धारण किए हुए था । इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि प्रश्नगत मोटर यान जिससे दुर्घटना घटी, महिन्द्रा मैक्सी कैब थी । मात्र इस कारण कि चालक ने महिन्द्रा मैक्सी

कैब चलाने के लिए चालन अनुज्ञप्ति में कोई पृष्ठांकन नहीं कराया था, जो कि एक हल्का मोटर यान है, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके विधि संबंधी गंभीर त्रुटि कारित की है कि बीमाकर्ता इस कारण प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायी नहीं है कि चालक वाणिज्यिक यान चलाने के लिए अनुज्ञप्ति धारण नहीं किए हुए था । अतः, आक्षेपित निर्णय अपास्त किए जाने योग्य है । (पैरा 19)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2008]	(2008) 3 एस. सी. सी. 464 : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **अन्नप्पा इरप्पा नेसरिया** उर्फ **नेसारगी और अन्य** ;	6,16
[2008]	(2008) 1 एस. सी. सी. 696 : **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **प्रभु लाल** ;	5
[2008]	(2008) ए. सी. जे. 1307 : **सरदारी और अन्य** बनाम **सुशील कुमार और अन्य** ;	5,7
[2006]	(2006) 4 एस. सी. सी. 250 : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **कुसुम राय और अन्य** ;	15
[2004]	(2004) 13 एस. सी. सी. 224 : **ओरियंटल इंश्योंरेस कंपनी लिमिटेड** बनाम **नंजप्पन** ;	15
[2004]	(2004) 3 एस. सी. सी. 297 : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य** ;	14
[2001]	(2001) 4 एस. सी. सी. 342 : **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी, शिमला** बनाम **कमला और अन्य** ;	13,15
[1999]	(1999) 6 एस. सी. सी. 620 = ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 3181 : **अशोक गंगाधर मराठा** बनाम **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** ;	6,12

[1996] (1996) 5 एस. सी. सी. 21 :
सोहन लाल पासी बनाम **पी. शेष रेड्डी और अन्य** ; 11

[1987] [1987] 3 उम. नि. प. 544 =
(1987) 2 एस. सी. सी. 654 :
स्कैंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **कोकिलाबेन चन्द्रबदन और अन्य** । 8,10

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2013 की सिविल अपील सं. 4834.

2002 की सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 1016 में मद्रास उच्च न्यायालय की मदुरै न्यायपीठ के तारीख 31 अक्तूबर, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री टी. आर. बी. शिवकुमार और के. वी. विजय कुमार

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री रवि बख्शी, राजीव कुमार बंसल और अक्षय कुमार घई

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. वाई. इकबाल ने दिया ।

न्या. इकबाल – इजाजत दी जाती है ।

2. किसी सड़क दुर्घटना के शिकार व्यक्ति द्वारा प्रतिकर का दावा करने का अधिकार एक कानूनी अधिकार है । संसद् ने अपने विवेक द्वारा मोटर यान अधिनियम में सुसंगत उपबंध अंतःस्थापित किए हैं जिससे कि यान में यात्रा करने वाले या सड़क का प्रयोग करने वाले सड़क दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान किया जा सके और तद्द्वारा यह आबद्धकर बनाया गया कि किसी भी मोटर यान का तब तक उपयोग नहीं किया जाएगा जब तक कि वह यान पर-व्यक्ति जोखिम के लिए अनिवार्य रूप से बीमाकृत नहीं है । इस पृष्ठभूमि में, क्या कोई बीमा कंपनी इस आधार पर अपने दायित्व को अस्वीकार कर सकती है कि यद्यपि यान का चालक हल्के मोटर यान चलाने के लिए सम्यक् रूप से अनुज्ञप्त था तथापि, उसकी अनुज्ञप्ति में वाणिज्यिक यान के रूप में उपयोग किया जाने वाला हल्का मोटर यान चलाने के लिए पृष्ठांकन नहीं था । इस अपील में यही एकमात्र प्रश्न विचारार्थ उद्भूत होता है ।

3. विशेष इजाजत लेकर की गई यह अपील निम्नलिखित

परिस्थितियों में उद्भूत होती है ।

4. तारीख 23 मई, 1998 को लगभग 8.30 बजे अपराह्न जब चार्ल्स नामक मृतक अपनी साइकिल पर पूर्व से पश्चिम की ओर जा रहा था और एक घर के सामने पहुंचा तब शिवननयैथा पेरूमल (यान का चालक, जो कार्यवाहियों में एकपक्षीय रहा) उच्च गति से महिन्द्रा वैन चलाते हुए पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर आया और चार्ल्स को टक्कर मार दी तथा यान को रोके बिना वहां से भाग गया । चार्ल्स की, जिसे अस्पताल में भर्ती कराया गया था, उसे पहुंची क्षतियों के कारण मृत्यु हो गई । मोटर यान निरीक्षक की रिपोर्ट से यह प्रकट होता है कि यह दुर्घटना यांत्रिकी त्रुटि के कारण नहीं घटी थी । मृतक की पत्नी (इस मामले में प्रत्यर्थी सं. 2) द्वारा दावा याचिका फाइल करने पर कन्याकुमारी के मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण (प्रधान जिला न्यायाधीश) (जिसे संक्षेप में 'अधिकरण' कहा गया है) ने अभिलेख पर विद्यमान साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् 2,42,400/- रुपए का प्रतिकर अधिनिर्णीत किया जिसका संदाय प्रत्यर्थियों द्वारा अधिकरण के समक्ष संयुक्ततः और पृथक्तः याचिका की तारीख से 12 प्रतिशत वार्षिक ब्याज सहित किया जाना था । अधिकरण का यह मत था कि हल्का मोटर यान चलाने वाली अनुज्ञप्ति धारण करने वाला व्यक्ति महिन्द्रा मैक्सी कैब चलाने का हकदार है ।

5. बीमा कंपनी ने अधिकरण के निर्णय और अधिनिर्णय को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । बीमा कंपनी ने प्रतिकर की मात्रा के संबंध में विवाद नहीं किया किन्तु यह दलील देते हुए दायित्व को ही प्रश्नगत किया कि यान के चालक के पास उस दिन यान चलाने के लिए विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी । बीमा कंपनी ने **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **प्रभु लाल**[1] और **सरदारी और अन्य** बनाम **सुशील कुमार और अन्य**[2] वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों के प्रति निर्देश किया और यह दलील दी कि हल्का मोटर यान चलाने के लिए अनुज्ञप्ति धारण करने वाला व्यक्ति वाणिज्यिक यान चलाने के लिए प्राधिकृत नहीं है ।

6. इसके विपरीत, दावेदार की ओर से **अशोक गंगाधर मराठा** बनाम

---

[1] (2008) 1 एस. सी. सी. 696.

[2] (2008) ए. सी. जे. 1307.

ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड[1] और **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **अन्नप्पा इरप्पा नेसरिया** उर्फ **नेसारगी और अन्य**[2] वाले मामलों में इस न्यायालय के निर्णयों के प्रति निर्देश किया गया था और यह दलील दी गई थी कि ऐसा व्यक्ति, जिसके पास हल्का मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति है, वाणिज्यिक यान भी चला सकता है ।

7. उच्च न्यायालय ने दोनों पक्षों के विद्वान् काउन्सेलों की सुनवाई करने और उपर्युक्त विनिश्चयों पर विचार करने के पश्चात् **सरदारी लाल** (उपर्युक्त) वाले मामले का अवलंब लेते हुए यह मत व्यक्त किया कि चूंकि यान का उपयोग एक टैक्सी के रूप में किया जा रहा था, जो कि एक वाणिज्यिक यान है, इसलिए उक्त यान के चालक से समुचित अनुज्ञप्ति धारण करना अपेक्षित था । अतः, चूंकि बीमा संविदा की शर्त का भंग किया गया था इसलिए बीमा कंपनी दावेदार को कोई प्रतिकर संदत्त करने के लिए दायी नहीं है । उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया मत इसमें इसके नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "इस संबंध में विवाद नहीं किया गया है कि यान का उपयोग टैक्सी के रूप में किया जा रहा था, जो कि एक वाणिज्यिक यान है । उक्त यान के चालक से इसके लिए समुचित अनुज्ञप्ति धारण करना अपेक्षित था । प्रस्तुत मामले में तृतीय प्रत्यर्थी, जो कि सुसंगत समय पर उक्त यान को चला रहा था, केवल हल्का मोटर यान चलाने का अनुज्ञप्तिधारी था । वह वाणिज्यिक यान चलाने के लिए कोई अनुज्ञप्ति धारण नहीं करता था । प्रस्तुत मामले में, प्रत्यर्थी साक्षी 2 ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि दुर्घटना की तारीख को यान के चालक के पास कोई वाणिज्यिक यान चलाने की अनुज्ञप्ति नहीं थी । अतः, यह स्पष्ट होता है कि चालक के पास दुर्घटना की तारीख को वाणिज्यिक यान चलाने की चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी । अतः, प्रत्यक्षतः, बीमा संविदा की शर्त का भंग हुआ था । प्रस्तुत मामले की परीक्षा ऊपर उद्धृत सरदारी और अन्य **बनाम** सुशील कुमार और अन्य (2008 ए. सी. जे. 1307) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के प्रकाश करने पर इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि चूंकि चालक वाणिज्यिक यान चलाने के लिए चालन अनुज्ञप्ति धारण नहीं

---

[1] (1999) 6 एस. सी. सी. 620 = ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 3181.

[2] (2008) 3 एस. सी. सी. 464.

किए हुए था इसलिए बीमा कंपनी दावेदार को कोई प्रतिकर संदत्त करने के लिए दायी नहीं है और यान का स्वामी ही दावेदार को प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायी है ।"

8. इस न्यायालय ने समय-समय पर विभिन्न अवसरों पर किसी यान को सड़क पर लाने से पूर्व बीमा अनिवार्य बनाने के लक्ष्य और उद्देश्य पर विचार किया है । निर्विवाद रूप से, मोटर यान अधिनियम में सड़क दुर्घटना के शिकार व्यक्ति को दुर्दशा से संरक्षा सुनिश्चित करने के लिए उठाए जाने वाले कल्याणकारी उपायों के आशय से ही एक नया अध्याय अंतःस्थापित किया गया था । **स्कैंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **कोकिलाबेन चन्द्रबदन और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्न प्रकार मत व्यक्त किया है :–

"11. सुसंगत उपबंधों का निर्वचन करते समय विधान-मंडल के आशय को जानने के लिए सुसंगत उपबंधों के हेतु और दार्शनिक सिद्धांत की जांच करने और उनको अधिनियमित करके उनके द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्यों को ध्यान में रखने से बेहतर शायद ही कोई अन्य कसौटी हो सकती है । साधारणतया विधान-मंडल के लिए यह चिंता की बात नहीं है कि क्या यान के स्वामी ने अपने यान का बीमा कराया है या नहीं । यदि यान का बीमा नहीं कराया गया है तो किसी पर-व्यक्ति जोखिम के कारण उद्भूत होने वाला प्रत्येक दायित्व यान के स्वामी का होगा । विधान-मंडल ने तब धारा 94 अधिनियमित करके सार्वजनिक स्थान में मोटर यान का उपयोग करने वाले व्यक्ति पर पर-व्यक्ति जोखिम के विरुद्ध बीमा करने के लिए ही जोर क्यों दिया है । अवश्य ही यह बाध्यता मोटर यान के बीमा के कारबार में लगे बीमाकर्ताओं के कारबार को बढ़ावा देने के लिए अधिरोपित नहीं की गई है । यह उपबंध यानों में यात्रा करने वाले या सड़क का प्रयोग करने वाले समाज के सदस्यों को, सड़कों पर मोटर यानों के उपयोग करने के परिणामस्वरूप उद्भूत जोखिम से संरक्षित करने के लिए ही अंतःस्थापित किया गया है । विधि में उन दुर्घटनाग्रस्त व्यक्तियों को प्रतिकर दिए जाने का उपबंध है जिन्हें मोटर यान दुर्घटना के कारण क्षतियां पहुंचती हैं या किसी घातक दुर्घटना के होने से दुर्घटनाग्रस्त व्यक्तियों के आश्रितों को प्रतिकर देने के लिए उपबंध

---

[1] [1987] 3 उम. नि. प. 544 = (1987) 2 एस. सी. सी. 654.

हो सकता है । तथापि, यह संरक्षा उस समय तक मात्र कागज पर ही रहेगी जब तक कि इस बात के लिए गारंटी नहीं दी जाती कि न्यायालयों द्वारा अधिनिर्णीत प्रतिकर की रकम दुर्घटना के परिणामों के लिए दायी ठहराए गए व्यक्तियों से वसूल की जाएगी । न्यायालय केवल अधिनिर्णय या डिक्री ही पारित कर सकता है । वह इस बात को सुनिश्चित नहीं कर सकता कि अधिनिर्णय या डिक्री के परिणामस्वरूप ऐसी अधिनिर्णीत रकम वास्तव में उस व्यक्ति से वसूल हो गई है जो दायी अभिनिर्धारित किया गया है और जिसके पास संसाधन नहीं हैं । ऐसी स्थिति में न्यायालयों द्वारा की गई कार्यवाही बेकार ही रहेगी । उन विधिक कार्यवाहियों के परिणाम, जिनमें समुदाय के अल्प संसाधनों से विनिहित मूल्यवान धन लगता है और मूल्यवान समय खर्च होता है, दुर्घटनाग्रस्त व्यक्तियों या दुर्घटनाग्रस्त मृतकों के उन आश्रितों को, जिन्हें बाध्य होकर मुकदमेबाजी में काफी समय, धन और ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है, हास्यास्पद स्थिति में लाकर खड़ा कर देंगे । इस विकट स्थिति से बचने के लिए विधान-मंडल ने यह आवश्यक बना दिया है कि किसी भी मोटर यान का उस समय तक उपयोग नहीं किया जाएगा जब तक कि पर-व्यक्ति बीमा प्रवर्तन में न हो । अपेक्षित पर-व्यक्ति बीमा किए बिना यान का उपयोग दंडनीय अपराध है । विधान-मंडल के सामने एक और भी समस्या थी । बीमा पालिसी ऐसी शर्तों के साथ दायित्व के लिए उपबंध कर सकती है जो पालिसी की संविदा में विनिर्दिष्ट हों । संरक्षा को वास्तविक बनाने के लिए विधान-मंडल ने यह भी उपबंधित किया है कि प्राप्त निर्णय धारा 96 द्वारा प्राधिकृत किए गए खंडों के अलावा अपवर्जन खंडों के सम्मिलित किए जाने से विफल नहीं होगा और यह उपबंधित करके कि धारा 96 द्वारा अनुज्ञात सीमा के सिवाय और उसे छोड़कर बीमा कंपनी के लिए यह बाध्यकर होगा कि वह पर-व्यक्ति जोखिमों की बाबत बीमाकृत व्यक्तियों के विरुद्ध अभिप्राप्त निर्णय की तुष्टि करे (देखिए धारा 96) । दूसरे शब्दों में, विधान-मंडल ने किसी मोटर यान का उपयोग करने वाले के लिए पर-व्यक्ति जोखिमों की बाबत बीमा पालिसी कराने के लिए जोर दिया है और उसे आवश्यक बना दिया है और यह बात विधान-मंडल द्वारा अधिनियमित उपबंधों के अनुरूप है । ऐसा यह सुनिश्चित करने के लिए उपबंधित किया गया है कि मोटर यान दुर्घटनाओं के क्षतिग्रस्त व्यक्तियों अथवा घातक दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों के आश्रितों को वास्तव में धनीय रूप

में प्रतिकर दिया जाना चाहिए, न कि वचन देकर । विधान-मंडल द्वारा अधिनियमित यह फायदाप्रद उपबंध इस तथ्य को ध्यान में रखकर अधिनियमित किया गया है कि आधुनिक युग में मोटर यानों का प्रयोग सहवर्ती परिसंकटों के होते हुए भी जीवन का अभिन्न तथ्य बन गया है और इसका निर्वचन ऐसे अर्थपूर्ण रूप से किया जाना चाहिए जो विधान-मंडल का प्रयोजन पूरा करे, न कि उसे विफल करे । अतः इस उपबंध का निर्वचन पूर्वोक्त परिप्रेक्ष्य के प्रकाश में किया जाना चाहिए ।"

9. बीमाकर्ता मोटर यानों की दुर्घटना से उद्भूत होने वाले प्रतिकर के किसी मामले में जो प्रतिरक्षा करने का हकदार है वह पुराने अधिनियम की धारा 96 के अधीन उपबंधित थी जो कि अब 1988 के अधिनियम की धारा 149 है । मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 में बीमाकर्ता की ओर से पर-व्यक्ति जोखिम की बाबत बीमाकृत व्यक्तियों के बारे में दिए निर्णयों और अधिनिर्णयों की तुष्टि करना आज्ञापक बनाया गया है । इसके बेहतर अधिमूल्यन के लिए धारा 149 इसमें इसके नीचे उद्धृत की गई है :–

"(1) यदि किसी व्यक्ति के पक्ष में, जिसने पालिसी कराई है, धारा 147 की उपधारा (3) के अधीन बीमा-प्रमाणपत्र दे दिए जाने के पश्चात् धारा 147 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अधीन पालिसी द्वारा पूरा करने के लिए अपेक्षित दायित्व के संबंध में (जो दायित्व पालिसी के निबंधनों के अंतर्गत है) ऐसे किसी व्यक्ति के विरुद्ध निर्णय या अधिनिर्णय अभिप्राप्त कर लिया जाता है जिसका पालिसी द्वारा बीमा किया हुआ है तो इस बात के होते हुए भी कि बीमाकर्ता पालिसी को शून्य करने या रद्द करने का हकदार है अथवा उसने पालिसी शून्य या रद्द कर दी है, बीमाकर्ता इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए डिक्री का फायदा उठाने के हकदार व्यक्ति को, उस दायित्व के संबंध में उसके अधीन देय राशि, जो बीमाकृत राशि से अधिक न होगी, खर्चों की बाबत देय किसी रकम तथा निर्णयों पर ब्याज संबंधी किसी अधिनियमिति के आधार पर उस राशि पर ब्याज की बाबत देय किसी धनराशि सहित इस प्रकार देगा मानो वह निर्णीतऋणी हो ।

(2) उपधारा (1) के अधीन किसी बीमाकर्ता द्वारा कोई राशि किसी निर्णय या अधिनिर्णय के संबंध में तभी देय होगी जब उन कार्यवाहियों के प्रारंभ के पूर्व जिनमें निर्णय या अधिनिर्णय दिया गया

है, बीमाकर्ता को उन कार्यवाहियों के लाए जाने की अथवा किसी निर्णय या अधिनिर्णय के संबंध में जब तक उसका निष्पादन अपील के लंबित रहने पर रोक दिया गया है, सूचना, यथास्थिति, न्यायालय या दावा अधिकरण के माध्यम से मिल चुकी थी अन्यथा नहीं और कोई बीमाकर्ता जिसे ऐसी किन्हीं कार्यवाहियों के लाए जाने की सूचना इस प्रकार दी गई है, उसका पक्षकार बनाए जाने और निम्नलिखित आधारों में से किसी आधार पर प्रतिवाद करने का हकदार होगा, अर्थात् –

(क) पालिसी की किसी विनिर्दिष्ट शर्त का भंग किया गया है, जो निम्नलिखित शर्तों में से एक है, अर्थात् –

(i) ऐसी शर्त, जो यान का निम्नलिखित दशाओं में उपयोग किया जाना अपवर्जित करती है, अर्थात् –

(क) भाड़े या पारिश्रमिक के लिए, जब वह यान बीमा संविदा की तारीख को ऐसा यान है जो भाड़े या पारिश्रमिक पर चलाने के परमिट के अंतर्गत नहीं है, या

(ख) आयोजित दौड़ और गति परीक्षा के लिए, या

(ग) जिस परमिट के अधीन यान का उपयोग किया जाता है उसके द्वारा अनुज्ञात न किए गए प्रयोजन के लिए जब वह यान परिवहन यान है, या

(घ) साइड कार संलग्न किए बिना, जब यान मोटर साइकिल है, या

(ii) ऐसी शर्त जो नामित व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा या ऐसे किसी व्यक्ति द्वारा जो सम्यक् रूप से अनुज्ञप्त नहीं है या ऐसे किसी व्यक्ति द्वारा, जिसे चालन अनुज्ञप्ति धारण या अभिप्राप्त करने से निरर्हित कर दिया गया है, निरर्हता की अवधि के दौरान, यान का चलाया जाना अपवर्जित करती है ; या

(iii) ऐसी शर्त जो युद्ध, गृहयुद्ध, बल्वे या सिविल अशांति की स्थिति के कारण या उसके योगदान से हुए

क्षति के लिए दायित्व अपवर्जित करती है ; या

(ख) वह पालिसी इस आधार पर शून्य है कि वह किसी तात्विक तथ्य के प्रकट न किए जाने से, अथवा ऐसे तथ्य के व्यपदेशन से, जिसकी कोई तात्विक विशिष्टि मिथ्या है, अभिप्राप्त की गई थी ।

(3) जहां कोई ऐसा निर्णय, जैसा उपधारा (1) में निर्दिष्ट है, किसी व्यतिकारी देश के न्यायालय से अभिप्राप्त किया गया है तथा विदेशी निर्णय की दशा में वह उस विषय की बाबत, जिसका न्यायनिर्णयन उसके द्वारा किया गया है, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) की धारा 13 के उपबंधों के आधार पर निश्चायक है वहां बीमाकर्ता [जो बीमा अधिनियम, 1938 (1938 का 4) के अधीन रजिस्ट्रीकृत बीमाकर्ता है, भले ही वह व्यतिकारी देश की तत्समान विधि के अधीन रजिस्ट्रीकृत हो या न हो] डिक्री का फायदा उठाने के हकदार व्यक्ति के प्रति उस रीति से और उस विस्तार तक जो उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट है, ऐसे दायी होगा मानो वह निर्णय भारत के किसी न्यायालय द्वारा दिया गया है :

परन्तु बीमाकर्ता द्वारा कोई राशि किसी ऐसे निर्णय के संबंध में तभी संदेय होगी जब उन कार्यवाहियों के, जिनमें निर्णय दिया गया है, प्रारंभ के पूर्व बीमाकर्ता को उन कार्यवाहियों के लाए जाने की सूचना संबंधित न्यायालय के माध्यम से मिल चुकी थी, अन्यथा नहीं तथा कोई बीमाकर्ता, जिसे सूचना ऐसे दी गई है व्यतिकारी देश की तत्समान विधि के अधीन उन कार्यवाहियों में पक्षकार बनाए जाने और उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट आधारों के समान आधारों पर प्रतिवाद करने का हकदार है ।

(4) जहां उस व्यक्ति को, जिसने पालिसी कराई है, धारा 147 की उपधारा (3) के अधीन बीमा-प्रमाणपत्र दे दिया गया है वहां पालिसी का उतना भाग, जितना उस पालिसी द्वारा बीमाकृत व्यक्तियों का बीमा उपधारा (2) के खंड (ख) में दी गई शर्तों से भिन्न किन्हीं शर्तों के निर्देश से निर्बंधित करने के लिए तात्पर्यित है, धारा 147 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अधीन पालिसी के द्वारा पूरा करने के लिए अपेक्षित दायित्वों के संबंध में प्रभावहीन होगा :

परन्तु बीमाकर्ता द्वारा किसी व्यक्ति के किसी दायित्व के निर्वहन

में या मद्दे दी गई कोई धनराशि, जो केवल इस उपधारा के आधार पर पालिसी के अंतर्गत है, बीमाकर्ता द्वारा उस व्यक्ति से वसूलीय होगी ।

(5).....

(6).....”

10. धारा 149(2)(क)(ii) बीमाकर्ता को यह प्रतिरक्षा लेने का अधिकार देती है कि दुर्घटना के समय यान चलाने वाला व्यक्ति सम्यक् रूप से अनुज्ञप्त नहीं था । दूसरे शब्दों में, धारा 149(2)(क)(ii) किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा जो सम्यक् रूप से अनुज्ञप्त नहीं है यान चलाना अपवर्जित करने संबंधी शर्त लगाती है । इस न्यायालय के समक्ष इस संबंध में प्रश्न उद्भूत हुआ था कि क्या बीमा कंपनी किसी यान द्वारा दुर्घटना की बाबत यह प्रतिरक्षा लेकर प्रतिकर संदत्त करने संबंधी अपने दायित्व को निराकृत कर सकती है कि सुसंगत समय पर वह यान ऐसे व्यक्ति द्वारा चलाया जा रहा था जिसके पास कोई अनुज्ञप्ति नहीं थी । इस न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार करते समय **स्कैंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** (उपर्युक्त) वाले मामले में निम्न प्रकार मत व्यक्त किया था :–

“10. अपवर्जन खंड के आधार पर निर्मित प्रतिरक्षा इन तीन कारणों से सफल नहीं हो सकती है, अर्थात् –

(1) सुसंगत खंड का वास्तविक निर्वचन करने पर, जो धारा 96 के वास्तविक उद्देश्य के अनुरूप है, सम्यक् रूप में अननुज्ञप्त व्यक्ति द्वारा गाड़ी चलाने का अपवर्जन करने वाली शर्त आत्यंतिक नहीं है और वचनदाता एक बार यह दर्शित किए जाने पर मुक्ति पा जाता है कि उसने अपने वचन को रखने, सम्मान करने और पूरा करने के लिए अपनी शक्ति के अंतर्गत सब कुछ किया है और वह स्वयं जानबूझकर भंग करने का दायी नहीं है ।

(2) यदि इसे आत्यंतिक वचन के रूप में माना भी जाए, तो भी अनुज्ञप्ति चालक को यान को बिना देखभाल के खुला न छोड़े जाने के बारे में, जिससे कि कोई अननुज्ञप्ति चालक उसे न चलाए, अभिव्यक्त या विवक्षित आदेश दिए जाने से इसका सारवान् अनुपालन हो जाता है ।

(3) अपवर्जन खंड का निर्वचन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि यह उन उपबंधों के पास प्रमुख प्रयोजन के विरोध में न हो जो

दुर्घटनाग्रस्त व्यक्तियों की संरक्षा के लिए अधिनियमित किए गए हैं ताकि वचनदाता उस दशा में निरपराध घोषित किया जा सके जब वह वचन रखने के लिए अपनी शक्ति के भीतर सब कुछ करता है ।"

11. बीमा कंपनी द्वारा अपनाए गए इस आधार के कारण कि बीमाकर्ता इस आधार पर कार्यवाही में प्रतिरक्षा का हकदार होगा कि पालिसी की विनिर्दिष्ट शर्त का भंग किया गया था, अर्थात्, यान ऐसे किसी व्यक्ति द्वारा नहीं चलाया जाना चाहिए जो कि सम्यक् रूप से अनुज्ञप्त नहीं है और उस दशा में बीमा कंपनी को यान के स्वामी की क्षतिपूर्ति करने के लिए दायी नहीं ठहराया जा सकता है, उपर्युक्त मत की शुद्धता की परीक्षा करने के लिए मामला तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ को निर्देशित किया गया था । इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **सोहन लाल पासी** बनाम **पी. शेष रेड्डी और अन्य**[1] वाले मामले में अधिनियम की धारा 96(2)(ख)(ii) के उपबंधों का निर्वचन करने के पश्चात्, जो कि नए अधिनियम की धारा 149 की तत्स्थानी है, निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

"12. .....

..... हमारे विचार में धारा 96(2)(ख)(ii) का निर्वचन तकनीकी रीति से नहीं किया जाना चाहिए । धारा 96 की उपधारा (2) बीमा कम्पनी को केवल उपधारा (2) में वर्णित किसी आधार पर प्रतिकर संदाय करने के दायित्व के संबंध में अपनी प्रतिरक्षा करने के लिए समर्थ बनाती है जिसमें यह भी सम्मिलित है कि उस यान को अपवर्जित करते हुए जिसका चालन ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जा रहा है जिसके पास सम्यक् रूप से जारी की गई अनुज्ञप्ति नहीं है, शर्त का उल्लंघन किया गया है । यह वर्जन प्रत्यक्षतः बीमाकृत व्यक्ति के विरुद्ध लागू होता है । यदि वह व्यक्ति, जिसने यान का बीमा करवाया है, यान को ऐसे व्यक्ति द्वारा चलाए जाने की अनुज्ञा प्रदान कर देता है, जिसके पास सम्यक् रूप से जारी की गई अनुज्ञप्ति न हो तो केवल तब ही यह खंड आकृष्ट होगा । ऐसे मामले में जहां कोई व्यक्ति जिसने बीमा कम्पनी से यान का बीमा करवाया है, सम्यक् रूप से अनुज्ञप्ति-प्राप्त चालक को नियोजित करे और उस स्थिति से जब यान को सम्यक् रूप से प्राधिकृत चालक के प्राधिकार के आधार पर एक ऐसे व्यक्ति द्वारा चलाया जा रहा है, जिसके पास

---

[1] (1996) 5 एस. सी. सी. 21.

सम्यक् रूप से जारी की गई अनुज्ञप्ति नहीं है और दुर्घटना हो जाए तो बीमा कम्पनी अपने दायित्व से मुक्त हो जाएगी ? धारा 96(2)(ख) में 'भंग' अभिव्यक्ति का अर्थ वचन या बाध्यता का अतिलंघन या अतिक्रमण है । इस प्रकार बीमा कम्पनी को यह सिद्ध करना पड़ेगा कि बीमाकृत व्यक्ति वचन (वायदे) के अतिलंघन या अतिक्रमण का दोषी है । बीमाकर्ता को न्यायालय या अधिकरण को इस बाबत भी समाधान करना होगा कि बीमाकृत व्यक्ति द्वारा ऐसा अतिलंघन या अतिक्रमण जानबूझकर था । यदि बीमाकृत व्यक्ति ने प्रश्नगत यान चलाने के लिए सम्यक् रूप से अनुज्ञप्ति-प्राप्त चालक की नियुक्ति करने की बाबत सभी पूर्वावधानियां बरती हैं और यह सिद्ध नहीं किया जाता है कि बीमाकृत व्यक्ति ने ही एक ऐसे व्यक्ति को यान चलाने की अनुज्ञा प्रदान की जिसके पास सम्यक् रूप से जारी की गई अनुज्ञप्ति नहीं थी, तो बीमा कम्पनी धारा 96 की उपधारा (1) के अधीन अपने कानूनी दायित्व से बच नहीं सकती है .....।"

12. **अशोक गंगाधर मराठा** बनाम **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड**[1] वाले मामले में अपीलार्थी मोटर यान अधिनियम की धारा 2(21) में विहित अधिकतम सीमा से कम भार वाले ट्रक का स्वामी था । अतः, उक्त ट्रक एक हल्का मोटर यान था । वह प्रत्यर्थी बीमाकर्ता के पास कतिपय रकम के लिए और कतिपय अवधि के लिए रजिस्ट्रीकृत था । बीमे की अवधि के भीतर ट्रक दुर्घटनाग्रस्त हो गया और वह पूर्णतः क्षतिग्रस्त हो गया । प्रत्यर्थी के विरुद्ध अपीलार्थी का दावा राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग द्वारा नामंजूर कर दिया गया था । राष्ट्रीय आयोग ने प्रत्यर्थी की यह दलील स्वीकार कर ली कि ट्रक एक माल वाहक या परिवहन वाहक था और यह कि ट्रक का चालक, जो केवल हल्के मोटर यान चलाने के लिए प्ररूप 6 में चालन अनुज्ञप्ति धारण किए हुए था, परिवहन यान चलाने के लिए प्राधिकृत नहीं था और इसलिए चूंकि बीमाकृत व्यक्ति ने बीमा पालिसी के निबंधनों और अधिनियम के उपबंधों का भंग किया था इसलिए प्रत्यर्थी-बीमाकर्ता बीमाकृत व्यक्ति की क्षतिपूर्ति के लिए दायी नहीं था । इस न्यायालय ने अपील मंजूर करते हुए निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"14. अब प्रस्तुत मामले में यान का भार 5920 किलोग्राम था और

---

[1] (1999) 6 एस. सी. सी. 620 = ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 3181.

चालक के पास कोई हल्का मोटर यान चलाने की चालन अनुज्ञप्ति थी । अतः, यह सही नहीं है कि बीमा पालिसी के अंतर्गत कोई परिवहन यान आता था जिससे माल वाहक अभिप्रेत है । बीमाकर्ता का संपूर्ण मामला गलत आधार पर तैयार किया गया है । बीमाकर्ता का यह पक्षकथन भी है कि ऐसे किसी हल्के मोटर यान की दशा में जो कि गैर-परिवहन यान है, नियमों के अधीन प्ररूप 6 के अधीन चालक की अनुज्ञप्ति पर कोई विनिर्दिष्ट प्राधिकार होने की कोई कानूनी अपेक्षा नहीं है । अतः, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि जाधव दुर्घटना की तारीख को रजिस्ट्रीकरण सं. केए-28-567 वाला हल्का मोटर यान चलाने के लिए प्रभावी विधिमान्य अनुज्ञप्ति धारण किए हुए था ।"

13. **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी, शिमला** बनाम **कमला और अन्य**[1] वाले मामले में कानूनी प्राधिकारियों द्वारा एक जाली अनुज्ञप्ति का नवीकरण किया गया था और प्रश्न यह उद्भूत हुआ था कि क्या बीमा कंपनी उस मोटर दुर्घटना की बाबत, जो तब घटी थी जब यान ऐसी जाली अनुज्ञप्ति धारण करने वाले व्यक्ति द्वारा चलाया जा रहा था, प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायी होगी । इस न्यायालय ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए अधिनियम की धारा 146, 147 और 149 के उपबंधों पर विचार-विमर्श किया और इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

"21. उपधारा (4) के परन्तुक का तथा उपधारा (5) में प्रयुक्त भाषा का पठन करने से यह उपदर्शित होगा कि उनका आशय ऐसे बीमाकर्ता के हित को संरक्षित करना था जिसका अधिनियम के अध्याय 11 में अंतर्विष्ट उपबंधों को छोड़कर, बीमाकृत व्यक्ति को किसी रकम का संदाय करने का कोई दायित्व नहीं है । इसका अभिप्राय यह है कि बीमाकर्ता को पर-व्यक्तियों को केवल इस तथ्य के कारण संदाय करना है कि यान की बाबत एक बीमा पालिसी जारी की गई है किन्तु बीमाकर्ता बीमाकृत व्यक्ति से ऐसी कोई धनराशि वसूल करने का तभी हकदार है यदि बीमाकर्ता पालिसी द्वारा उपदर्शित बीमा संविदा की शर्तों के आधार पर बीमाकृत व्यक्ति को ऐसी धनराशि का संदाय करने के लिए अन्यथा दायी नहीं था ।

22. पुनः, उक्त उपबंधों का प्रभाव यह है : जब किसी यान की बाबत कोई विधिमान्य बीमा पालिसी जारी की गई है, जैसा बीमा-

---

[1] (2001) 4 एस. सी. सी. 342.

प्रमाणपत्र से साक्ष्यित होता है, तब पर-व्यक्तियों को संदाय करने का भार बीमाकर्ता पर है, चाहे पालिसी की शर्तों का कोई भंग या अतिक्रमण किया गया है अथवा नहीं । किन्तु बीमाकर्ता द्वारा पर-व्यक्तियों को इस प्रकार संदत्त की गई रकम बीमाकृत व्यक्ति से उस दशा में वसूल करने की अनुज्ञा दी जा सकती है यदि पालिसी की शर्तों के अनुसार बीमाकर्ता का बीमाकृत व्यक्ति को ऐसी धनराशि का संदाय करने का कोई दायित्व नहीं था ।

23. स्कैंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** कोकिलाबेन चन्द्रबदन {[1987] 3 उम. नि. प. 544 = (1987) 2 एस. सी. सी. 654} वाले मामले में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ के निर्णय के प्रति निर्देश करना उपयोगी है । यद्यपि उक्त विनिश्चय का संबंध पूर्ववर्ती अधिनियम (मोटर यान अधिनियम, 1939) के तत्स्थानी उपबंधों से है तथापि, इस निर्णय में की गई मताभिव्यक्तियां अब सुसंगत हैं क्योंकि तत्स्थानी उपबंध तात्विक रूप से वही हैं जो वर्तमान अधिनियम में हैं । विद्वान् न्यायाधीशों ने यह इंगित किया है कि विधान-मंडल द्वारा इस बात पर बल देने का किसी मोटर यान का उपयोग किसी सार्वजनिक स्थान पर केवल तभी किया जा सकता है यदि वह यान किसी बीमा पालिसी के अंतर्गत आता है, बीमा कंपनी के कारबार को बढ़ाने के प्रयोजन के लिए नहीं है बल्कि समुदाय के उन सदस्यों को संरक्षा देने के लिए है जो मोटर यानों के उपयोग द्वारा होने वाली दुर्घटनाओं के शिकार हो जाते हैं । उस विनिश्चय में यह इंगित किया गया है कि ऐसा संरक्षण केवल कागजी संरक्षण ही बनकर रह गया होता यदि न्यायालयों द्वारा अधिनिर्णीत प्रतिकर दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों (या शिकार व्यक्तियों के आश्रितों) द्वारा वसूल नहीं किया जा सकता । विधान-मंडल द्वारा मोटर यानों को किसी बीमा पालिसी द्वारा पर-व्यक्ति जोखिमों के अंतर्गत लाए बिना सार्वजनिक स्थानों पर उपयोग करने के लिए प्रतिषेधात्मक बनाने का यही मुख्य प्रयोजन है ।

24. उक्त विनिश्चय में अधिकथित सिद्धांत का इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा सोहन लाल पासी **बनाम** पी. शेष रेड्डी (उपर्युक्त) वाले मामले में सानुमोदन अनुसरण किया गया है ।

25. स्थिति का सार इस प्रकार निकाला जा सकता है –

बीमाकर्ता और बीमाकृत व्यक्ति पालिसी में दी गई शर्तों द्वारा आबद्ध हैं, यदि किसी पालिसी की शर्त का अतिक्रमण होता है तो बीमाकर्ता बीमाकृत व्यक्ति के प्रति दायी नहीं है किन्तु बीमाकर्ता जिसे जारी किए गए बीमा-प्रमाणपत्र के कारण पर-व्यक्तियों के प्रतिकर का संदाय करने को कानूनन दायी बनाया गया है, पर-व्यक्तियों को संदत्त धनराशि बीमाकृत व्यक्ति से वसूल करने का हकदार होगा यदि किसी विधिमान्य यान चालन अनुज्ञप्ति के बिना यान चलाए जाने के कारण पालिसी की शर्तों का कोई भंग होता है । बीमाकृत व्यक्ति के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि इतना ही पर्याप्त है यदि वह यह सिद्ध कर देता है कि उसने सम्यक् रूप से सम्पूर्ण पूछताछ की और सद्भाविक रूप से यह विश्वास किया कि उसके द्वारा नियोजित चालक के पास विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति थी, इस मामले में पालिसी की शर्तों का कोई भंग नहीं हुआ । चूंकि हमने इस दलील की बाबत विनिश्चय नहीं किया है, बीमाकृत व्यक्ति इसे दावा अधिकरण के समक्ष उठाने के लिए स्वतंत्र है । वर्तमान मामलों में यदि बीमा कम्पनी यह सिद्ध करने में सफल रहती है कि पालिसी की शर्त का भंग हुआ है तो दावा अधिकरण बीमाकर्ता को उस धनराशि का संदाय करने के लिए बीमाकृत व्यक्ति को निदेश देगा । व्यतिक्रम में बीमाकर्ता को बीमाकृत व्यक्ति से उस धनराशि (जिसका दावाकर्ता पर-व्यक्तियों को संदाय करने के लिए बीमाकर्ता को निदेश किया गया है) को वसूल करने की अनुज्ञा होगी ।"

14. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"44. यदि किसी व्यक्ति को विशिष्ट प्रकार के यान के लिए अनुज्ञप्ति दी गई है, जैसा कि अनुज्ञप्ति में विनिर्दिष्ट है, तो यह नहीं कहा जा सकता कि उसको किसी अन्य प्रकार का यान चलाने की अनुज्ञप्ति दी गई है जो उसी प्रवर्ग का किन्तु भिन्न प्रकार का है । उदाहरण के लिए, जब किसी व्यक्ति को हल्का मोटर यान चलाने के लिए अनुज्ञप्ति प्रदान की जाती है, तो वह या तो कार या जीप चला सकता है और यह आवश्यक नहीं है कि उसके पास कार और जीप दोनों चलाने के लिए अवश्य ही अलग-अलग चालन

---

[1] (2004) 3 एस. सी. सी. 297.

अनुज्ञप्ति हों ।

45. तथापि, बीमा कम्पनी के लिए अपने दायित्व से बचने के लिए न केवल यह दर्शित करने की अपेक्षा की जाती है कि धारा 149(2)(क) के अधीन अधिकथित शर्तों को पूरा किया जाए बल्कि उससे यह सिद्ध करने की भी अपेक्षा की जाती है कि बीमाकृत व्यक्ति द्वारा भंग किया गया है । 1988 के अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों के कारण उन व्यक्तियों को अति व्यापक उपचार प्रदान किया गया है जिन्होंने किसी यान के उपयोक्ता के विरुद्ध निर्णय प्राप्त कर लिया है और धारा 147(3) के निबंधनों के अनुसार बीमा-प्रमाणपत्र प्रदान कर दिए जाने के उपरांत पर-व्यक्ति ने धारा 145 के अंतर्गत आने वाले दायित्व के संबंध में पालिसी द्वारा बीमाकृत किसी व्यक्ति के विरुद्ध निर्णय प्राप्त कर लिया है, तो बीमाकर्ता द्वारा इसे इस बात के होते हुए कि बीमाकर्ता पालिसी को टालने या उसे रद्द करने का हकदार हो सकता है या वह वास्तव में ऐसा कर सकता है, अवश्य ही पूरा किया जाना चाहिए । यही बाध्यता ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध लागू होती है जो ऐसे दायित्व के संबंध में पालिसी द्वारा तो बीमाकृत नहीं है किन्तु यदि पालिसी में मृत्यु या शारीरिक क्षति के दायित्व को छोड़कर सभी व्यक्तियों का दायित्व रहा होता तो वह भी समाविष्ट होता ।

* * * * * *

68. बीमाकर्ता का दायित्व कानूनी दायित्व है । पर-व्यक्ति के पक्ष में पारित अनुज्ञप्ति की तुष्टि करने का बीमाकर्ता का दायित्व भी कानूनी दायित्व है ।

* * * * * *

105. इन याचिकाओं में उठे विभिन्न विवाद्यकों से संबंधित हमारे निष्कर्षों का सारांश इस प्रकार है –

(i) मोटर यान अधिनियम, 1988 का अध्याय 11 जिसमें पर-व्यक्तियों के जोखिमों के विरुद्ध यानों के अनिवार्य बीमा के लिए उपबंध है, मोटर यानों के प्रयोग के द्वारा कारित दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों को प्रतिकर द्वारा अनुतोष प्रदान करने के लिए एक समाज कल्याणकारी विधान है । सभी यानों का अनिवार्य बीमा सुरक्षा उपबंध इस सर्वोपरि उद्देश्य की दृष्टि से है और अधिनियम के उपबंधों का निर्वचन उक्त उद्देश्य को प्रभावी बनाने के लिए किया जाना चाहिए ।

(ii) बीमाकर्ता मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 163-क या धारा 166 के अधीन फाइल दावा याचिका में, अन्य बातों के साथ-साथ, उक्त अधिनियम की धारा 149(2)(क)(ii) के निबंधनों के अनुसार प्रतिरक्षा प्रस्तुत करने का हकदार है ।

(iii) बीमाकर्ता द्वारा दायित्व से बचने के लिए पालिसी की शर्त का भंग, अर्थात् अधिनियम की धारा 149 की उपधारा 2(क)(ii) में यथाअंतर्विष्ट चालक अयोग्यता या चालक द्वारा अविधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति को बीमाकृत व्यक्ति द्वारा किया गया साबित होना चाहिए । मात्र चालन अनुज्ञप्ति का न होना, उसका जाली या अविधिमान्य होना या सुसंगत समयबिंदु पर यान चलाने के लिए चालक की अयोग्यता स्वयमेव ही बीमाकृत व्यक्ति या पर-व्यक्ति के विरुद्ध बीमाकर्ता को उपलब्ध प्रतिरक्षाएं नहीं है । बीमाकृत व्यक्ति के विरुद्ध अपने दायित्व से बचने के लिए बीमाकर्ता को यह साबित करना चाहिए कि बीमाकृत व्यक्ति उपेक्षा का दोषी था और वह सम्यक् रूप से अनुज्ञप्ति प्राप्त चालक या ऐसे व्यक्ति द्वारा जो सुसंगत समय पर यान चलाने के लिए अयोग्य नहीं था, यानों के उपयोग के संबंध में पालिसी की शर्तों को पूरा करने के मामले में युक्तियुक्त सावधानी बरतने में विफल रहा ।

(iv) तथापि, बीमा कंपनियों को अपने दायित्व को टालने के लिए न केवल उक्त कार्यवाहियों में उपलब्ध प्रतिरक्षा(ओं) को सिद्ध करना चाहिए अपितु यान के स्वामी की ओर से 'भंग' को भी सिद्ध करना चाहिए ; जिसके सबूत का भार उन पर होगा ।

(v) न्यायालय इस प्रकार का कोई मानदंड अधिकथित नहीं कर सकता है कि उक्त भार का किस प्रकार निर्वहन किया जाएगा क्योंकि यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा ।

(vi) यहां तक कि जहां बीमाकर्ता चालक द्वारा विधिमान्य अनुज्ञप्ति धारण करने या सुसंगत अवधि के दौरान यान चलाने की अपनी अर्हता से संबंधित पालिसी की शर्त से संबंधित बीमाकृत व्यक्ति के भंग को साबित कर देता है तो उसे (बीमाकर्ता को) उस समय तक बीमाकृत व्यक्ति के प्रति अपने दायित्व को टालने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाएगा जब तक कि चालन अनुज्ञप्ति की शर्तों के उक्त भंग इतने मौलिक न हों कि उनके बारे में यह पाया जाए

कि उनके कारण वह दुर्घटना हुई है । पालिसी की शर्तों का निर्वचन करते समय अधिकरण अधिनियम की धारा 149(3) के अधीन बीमाकृत व्यक्ति को उपलब्ध प्रतिरक्षाओं को अनुज्ञात करने से संबंधित "मूल भंग" की संकल्पना और "मुख्य प्रयोजन के नियम को लागू करेंगे" ।

(vii) यह प्रश्न प्रत्येक मामले में अवधारित किया जाएगा कि क्या स्वामी ने यह पता लगाने के लिए युक्तियुक्त सावधानी बरती है कि क्या चालक द्वारा प्रस्तुत चालन अनुज्ञप्ति (जाली अनुज्ञप्ति या अन्यथा) विधि की अपेक्षा को पूरा करती है अथवा नहीं ।

(viii) यदि यान दुर्घटना के समय ऐसे व्यक्ति द्वारा चलाया जा रहा था जिसके पास शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति थी तो बीमा कंपनियां डिक्री की तुष्टि करने की दायी होंगी ।

(ix) धारा 168 के साथ पठित धारा 165 के अधीन गठित दावा अधिकरण मोटर यान के उपयोग के कारण होने वाली दुर्घटनाओं, जिनमें पर-व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति या उसकी संपत्ति को नुकसान अंतर्वलित होता है, के संबंध में सभी दावों का न्यायनिर्णयन करने के लिए सक्षम है । अधिकरण की उक्त शक्ति एक ओर दावाकर्ता या दावाकर्ताओं और दूसरी ओर बीमाकृत व्यक्ति बीमाकर्ता और चालक के मध्य के आंतरिक दावों का विनिश्चय करने तक निर्बंधित नहीं है । प्रतिकर के दावे का न्यायनिर्णयन और बीमाकर्ता को उपलब्ध प्रतिरक्षा या प्रतिरक्षाओं की उपलब्धता का विनिश्चय करने के दौरान अधिकरण को बीमाकर्ता और बीमाकृत व्यक्ति के मध्य के परस्पर विवादों का विनिश्चय करने की अवश्यमेव ही शक्ति और अधिकारिता प्राप्त है । दावाकर्ता द्वारा प्रतिकर के दावे के न्यायनिर्णयन और इस पर किए गए अधिनिर्णय के दौरान बीमाकर्ता और बीमाकृत व्यक्ति के मध्य के परस्पर दावों और विवादों पर दिया गया विनिश्चय दावाकर्ताओं के पक्ष में अधिनिर्णय के प्रवर्तन और निष्पादन के लिए अधिनियम की धारा 174 में यथाउपबंधित रीति में प्रवर्तनीय और निष्पादनीय है ।

(x) जहां अधिनियम के अधीन दावे का न्यायनिर्णयन करने पर अधिकरण का यह निष्कर्ष हो कि बीमाकर्ता ने उपधारा (7) के साथ पठित धारा 149(2) के उपबंधों के अनुसार अपनी प्रतिरक्षा को

संतोषप्रद रूप से साबित कर दिया है, जैसाकि इस न्यायालय द्वारा ऊपर निर्वचन किया गया, अधिकरण यह निदेश दे सकता है कि बीमाकर्ता प्रतिकर और उन धनराशियों के संबंध में जिनका संदाय करने के लिए उस अधिकरण के अधिनिर्णय के अधीन पर-व्यक्ति को संदाय करने के लिए बाध्य किया गया है बीमाकृत व्यक्ति को प्रतिपूर्ति करने के लिए दायी है । अधिकरण द्वारा दावे का इस प्रकार अवधारण प्रवर्तनीय होगा और बीमाकृत व्यक्ति से बीमाकर्ता को देय ठहराई गई धनराशि राजस्व के रूप में अधिनियम की धारा 174 के अधीन दी गई रीति में अधिकरण द्वारा कलक्टर को जारी प्रमाणपत्र पर वसूल की जाएगी । प्रमाणपत्र भू-राजस्व के बकाए के रूप में वसूली के लिए केवल तभी जारी किया जाएगा यदि जैसा कि अधिनियम की धारा 168 की उपधारा (3) द्वारा यथा अपेक्षित है, बीमाकृत व्यक्ति अधिकरण द्वारा अधिनिर्णय की घोषणा की तारीख से बीस दिनों के भीतर बीमाकर्ता के पक्ष में अधिनिर्णीत धनराशि जमा करने में असफल रहता है ।

(xi) उपधारा (4) के परंतुक के साथ इसके उपबंधों और उपधारा (5) जिनमें बीमाकृत व्यक्ति की ओर से बीमा की संविदा के अधीन संदत्त धनराशि वसूल करने के लिए बीमाकर्ता को समर्थ बनाने के लिए इसमें उल्लिखित विनिर्दिष्ट आकस्मिकता आशयित है, का आश्रय अधिकरण द्वारा लिया जा सकता है और इन्हें ऐसे मामलों में जहां दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के पारस्परिक दावों के न्यायनिर्णयन में विलंब होगा, बीमाकृत व्यक्ति के विरुद्ध बीमाकर्ता की प्रतिरक्षाओं और दावों को नियमित न्यायालय में उपचार माना जा सकता है ।"

15. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **कुसुम राय और अन्य**[1] वाले मामले में प्रत्यर्थी उस जीप का स्वामी था जिसका उपयोग स्वीकृत रूप से टैक्सी और इस प्रकार एक वाणिज्यिक यान के रूप में किया गया था । उक्त टैक्सी में राम लाल नामक व्यक्ति खलासी के रूप में काम कर रहा था और वह कभी-कभी यान चलाया करता था । उसके पास हल्का मोटर यान चलाने की चालन अनुज्ञप्ति थी । वह टैक्सी दुर्घटनाग्रस्त हो गई जिसके परिणामस्वरूप एक अवयस्क लड़की की मृत्यु हो गई । इस मामले

---

[1] (2006) 4 एस. सी. सी. 250.

में उठाए गए मुद्दों में से एक मुद्दा यह था कि क्या उक्त जीप के चालक के पास विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति थी । अधिकरण ने **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी, शिमला** बनाम **कमला** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि बीमा कंपनी अपने पर-व्यक्ति दायित्व से छुटकारा नहीं पा सकती । इसके अलावा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि बीमा कंपनी इस रकम की वसूली यान के स्वामी से कर सकती है । बीमा कंपनी द्वारा फाइल की गई अपील उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दी गई थी । बीमा कंपनी ने इस न्यायालय के समक्ष अपील में **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **नंजप्पन**[1] वाले विनिश्चय का अवलंब लेते हुए यह तर्क दिया कि अधिनिर्णीत रकम का संदाय किया जा सकता है और उस यान के स्वामी से वसूला जा सकता है । बीमा कंपनी ने उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध इस न्यायालय में अपील फाइल की जो कि खारिज कर दी गई थी ।

16. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **अन्नप्पा इरप्पा नेसरिया** उर्फ **नेसारगी और अन्य**[2] वाले मामले में दुर्घटना में अंतर्वलित यान एक मैटाडोर थी जिसे माल वाहक परमिट मिला हुआ था और वह बीमा कंपनी के पास बीमाकृत थी । यह मुद्दा उठाया गया था कि यान के चालक के पास परिवहन यान चलाने की चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी । अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि चालक के पास विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति थी और उसने दावा मंजूर कर दिया । बीमा कंपनी द्वारा फाइल की गई अपील में उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए अपील खारिज कर दी कि दावेदार पर-व्यक्ति हैं और इस आधार पर भी कि पालिसी के निबंधनों और शर्तों का अतिक्रमण हुआ है बीमा कंपनी को यह दलील देने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है कि उसका कोई दायित्व नहीं है । इस न्यायालय ने अधिनियम के सुसंगत उपबंधों और परिभाषा और हल्का माल वाहक, हल्का मोटर यान, भारी माल यान की परिभाषा पर विचार करने के पश्चात् अंततः यह निष्कर्ष निकाला कि वह चालक, जो हल्का मोटर यान चलाने के लिए सम्यक् रूप से अनुदत्त अनुज्ञप्ति धारण किए हुए था, हल्का यात्री वाहक यान, अर्थात्, मैटाडोर चलाने के लिए हकदार था । इस न्यायालय ने निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

"20. इसमें इसके पूर्व जो कुछ अवेक्षा की गई है उससे यह

---

[1] (2004) 13 एस. सी. सी. 224.

[2] (2008) 3 एस. सी. सी. 464.

स्पष्ट है कि परिवहन यान के स्थान पर मध्यम माल यान और भारी माल यान प्रतिस्थापित किए गए हैं । हल्का मोटर यान के अंतर्गत सुसंगत समय पर हल्का यात्री वाहक यान और हल्का माल वाहक यान बना हुआ है । अतः, ऐसा चालक जिसके पास कोई हल्का मोटर यान चलाने की विधिमान्य अनुज्ञप्ति है, हल्का माल यान चलाने के लिए भी प्राधिकृत था ।"

17. मोटर यान अधिनियम, 1988 के अध्याय 11 (1939 के अधिनियम का अध्याय 8) में दिए गए "मोटर यानों का पर-व्यक्ति जोखिम बीमा" शीर्ष से ही यह दर्शित होता है कि विधान-मंडल का आशय पर-व्यक्ति बीमा को अनिवार्य बनाना और यह सुनिश्चित करना था कि मोटर यानों के उपयोग से होने वाली दुर्घटना का शिकार मृत्यु या पहुंची क्षतियों के लिए प्रतिकर प्राप्त करने में समर्थ होंगे । यह उपबंध यानों में यात्रा करने वाले या सड़क का उपयोग करने वाले व्यक्तियों को सड़क पर मोटर यानों के उपयोग के आनुषंगिक जोखिम से संरक्षा प्रदान करने की दृष्टि से अंतःस्थापित किया गया है । विधान-मंडल ने इस अप्रिय स्थिति से निपटने के लिए यह आबद्धकर बनाया है कि किसी भी मोटर यान का तब तक उपयोग नहीं किया जाएगा जब तक कि पर-व्यक्ति बीमा प्रवृत्त न हो ।

18. मोटर यान अधिनियम की धारा 146 और धारा 147 के उपबंधों का पठन करने पर यह प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट है कि कतिपय परिस्थितियों में बीमाकर्ता के अधिकार को संरक्षित किया जाता है किन्तु बीमाकर्ता को तब हर हालत में जब विधिमान्य बीमा-प्रमाणपत्र जारी किया जाता है इस तथ्य के होते हुए प्रतिकर का संदाय करना होगा कि बीमाकर्ता रकम की वसूली के लिए बीमाकृत व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही कर सकेगा । मोटर यान अधिनियम की धारा 149 के अधीन बीमाकर्ता अन्य बातों के साथ-साथ इन आधारों पर कार्यवाही में प्रतिवाद कर सकता है, अर्थात – (i) यान नामित व्यक्ति द्वारा नहीं चलाया गया था, (ii) वह ऐसे व्यक्ति द्वारा चलाया जा रहा था जिसके पास सम्यक् रूप से अनुदत्त अनुज्ञप्ति नहीं थी, और (iii) यान चलाने वाला व्यक्ति कोई चालन अनुज्ञप्ति धारित और अभिप्राप्त करने के लिए निरर्हित था । अतः, हमारी सुविचारित राय में, बीमाकर्ता इस

आधार पर अपने दायित्व का परित्याग नहीं कर सकता कि यद्यपि चालक हल्का मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति धारण किए हुए था किन्तु वाणिज्यिक यान के रूप में प्रयुक्त हल्का मोटर यान चलाने से पूर्व चालन अनुज्ञप्ति में वाणिज्यिक यान चलाने संबंधी कोई पृष्ठांकन अभिप्राप्त नहीं किया गया था । किसी भी दशा में, पर-व्यक्ति का यह कानूनी अधिकार है कि वह इस प्रकार अधिनिर्णीत प्रतिकर की रकम बीमाकर्ता से वसूल करे । यदि बीमा पालिसी की किसी शर्त का अतिक्रमण किया गया है तो बीमाकर्ता उस रकम की वसूली के लिए बीमाकर्ता व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र है ।

19. वर्तमान मामले में, स्वीकृततः चालक हल्का मोटर यान चलाने के लिए एक विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति धारण किए हुए था । इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि प्रश्नगत मोटर यान जिससे दुर्घटना घटी, महिन्द्रा मैक्सी कैब थी । मात्र इस कारण कि चालक ने महिन्द्रा मैक्सी कैब चलाने के लिए चालन अनुज्ञप्ति में कोई पृष्ठांकन नहीं कराया था, जो कि एक हल्का मोटर यान है, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके विधि संबंधी गंभीर त्रुटि कारित की है कि बीमाकर्ता इस कारण प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायी नहीं है कि चालक वाणिज्यिक यान चलाने के लिए अनुज्ञप्ति नहीं धारण किए हुए था । अतः, आक्षेपित निर्णय अपास्त किए जाने योग्य है ।

20. अतः, हम यह अपील मंजूर करते हैं, उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय अपास्त करते हैं और यह अभिनिर्धारित करते हैं कि बीमाकर्ता घातक दुर्घटना के शिकार व्यक्ति के आश्रितों को इस प्रकार अधिनिर्णीत प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायी है । तथापि, खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

ग्रो.

कमल जोरा

बनाम

उत्तराखंड राज्य और एक अन्य

1 जुलाई, 2013

न्यायमूर्ति ए. के. पटनायक और न्यायमूर्ति (श्रीमती) ज्ञान सुधा मिश्रा

उत्तर प्रदेश नगर निगम अधिनियम, 1959 (1959 का 2) – धारा 8-कक – नगरपालिक परिषद् का विघटन – नगरपालिक परिषद् को विघटन से पूर्व सुनवाई का अवसर दिया जाना – चूंकि राज्य सरकार ने नगरपालिक परिषद् का विघटन करके नगर निगम का गठन करने से पूर्व नगरपालिक परिषद् के अध्यक्ष, पार्षदों और साधारण जनता से आक्षेप आमंत्रित करते हुए लोक सूचना जारी की थी और कई पार्षदों की व्यक्तिगत रूप से सुनवाई भी की गई थी इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि उन सभी व्यक्तियों को जिन पर नगरपालिक परिषद् के विघटन से प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना थी, वास्तव में सुनवाई का कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया था तथा नगरपालिक परिषद् का विघटन करने वाली अधिसूचना को भी नैसर्गिक न्याय के नियमों का अतिक्रमण करने वाली नहीं कहा जा सकता है ।

अपीलार्थी को हरिद्वार नगरपालिक परिषद् के अध्यक्ष के रूप में निर्वाचित किया गया था । जब वह हरिद्वार नगरपालिक परिषद् के अध्यक्ष के रूप में कार्य कर रहा था तब उत्तराखंड सरकार द्वारा तारीख 20 मई, 2011 को यह अधिसूचित करते हुए एक अधिसूचना जारी की गई थी कि उत्तराखंड के राज्यपाल ने संविधान के अनुच्छेद 243थ(2) और उत्तर प्रदेश नगर निगम अधिनियम, 1959 की धारा 8-कक के साथ पठित अधिनियम की धारा 3(2) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए हरिद्वार नगरपालिक परिषद् का विघटन कर दिया है और हरिद्वार नगर निगम के क्षेत्र का प्रशासन करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट, हरिद्वार को प्रशासक के रूप में नियुक्त किया है । अपीलार्थी ने उपर्युक्त अधिसूचना को उत्तराखंड उच्च न्यायालय में मुख्यतः इस आधार पर चुनौती देते हुए रिट याचिका फाइल की कि अधिसूचना जारी किए जाने से पूर्व हरिद्वार नगरपालिक परिषद् को

सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था और उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया था कि हरिद्वार नगरपालिक परिषद् का विघटन और हरिद्वार नगर निगम क्षेत्रों का प्रशासन करने के लिए प्रशासक की नियुक्ति अधिनियम की धारा 8-कक के अधीन नगरपालिक परिषद् को सुनवाई का कोई अवसर प्रदान किए बिना या कारण दर्शित किए बिना की गई थी इसलिए तारीख 20 मई, 2011 की अधिसूचना से भारत के संविधान का स्पष्टतः अतिक्रमण होता है । इसलिए, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका मंजूर कर ली और तारीख 20 मई, 2011 की अधिसूचना अभिखंडित कर दी । इससे व्यथित होकर उत्तराखंड राज्य ने उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष यह दलील देते हुए विशेष अपील फाइल की कि हरिद्वार नगरपालिक परिषद् का हरिद्वार नगर निगम के रूप में उन्नयन राज्य सरकार द्वारा संविधान के अनुच्छेद 243थ में दी गई आज्ञा के अनुसार किया गया था और हरिद्वार नगरपालिक परिषद् का विघटन ऐसे उन्नयन का मात्र एक परिणाम था और इसलिए विघटन से पूर्व और हरिद्वार नगर निगम के क्षेत्रों को प्रशासित करने के लिए किसी प्रशासक की नियुक्ति करने से पूर्व हरिद्वार नगरपालिक परिषद् को कोई कारण दर्शित करने वाली सूचना या सुनवाई का कोई अवसर देना आवश्यक नहीं था । तथापि, उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 8-कक में नगरपालिक परिषद् का नगर निगम के रूप में उन्नयन होने पर नगरपालिक परिषद् के स्वतः विघटन हो जाने का उपबंध नहीं है और चूंकि विधि में किसी नगरपालिक परिषद् के स्वतः विघटन का उपबंध नहीं है इसलिए उन व्यक्तियों को, जिन पर नगरपालिक परिषद् के विघटन द्वारा प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना थी, सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए था । अतः, उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने विद्वान् एकल न्यायाधीश के आदेश को कायम रखा और अपील खारिज कर दी किन्तु विद्वान् महाधिवक्ता की प्रार्थना पर विद्वान् एकल न्यायाधीश के तारीख 23 जून, 2011 के आदेश के प्रवर्तन पर तीन सप्ताह की अवधि के लिए रोक लगा दी । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के निर्णय के तुरंत पश्चात् उत्तराखंड सरकार ने एक लोक सूचना जारी की जिसमें यह कहा गया था कि राज्य सरकार की राय में हरिद्वार नगरपालिक परिषद् के लघु शहरी क्षेत्र को बृहत्तर शहरी क्षेत्र और परिणामस्वरूप हरिद्वार नगर निगम में संपरिवर्तित करना आवश्यक

है । तारीख 29 जून, 2011 की लोक सूचना द्वारा हरिद्वार नगरपालिक परिषद् के अध्यक्ष और पार्षदों तथा हरिद्वार नगरपालिक परिषद् के शहरी क्षेत्र में निवास करने वाली समस्त जनता को अपने आक्षेप और सुझाव देने के लिए आमंत्रित किया गया था । अपीलार्थी ने अपने आक्षेप फाइल किए और यह कथन भी किया कि उसके आक्षेपों के संबंध में उसकी व्यक्तिगत रूप से सुनवाई की जाए । इसके पश्चात्, तारीख 21 जुलाई, 2011 को उत्तराखंड सरकार ने दो अधिसूचनाएं जारी कीं । तारीख 21 जुलाई, 2011 की एक अधिसूचना में यह कहा गया था कि राज्यपाल संविधान के अनुच्छेद 243थ(2) के साथ पठित अधिनियम की धारा 3(2) के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए हरिद्वार शहर के समग्र विकास के लिए विद्यमान लघु शहरी क्षेत्र का बृहत्तर शहरी क्षेत्र में संपरिवर्तन अधिसूचित करते हैं और यह भी अधिसूचित करते हैं कि बृहत्तर शहरी क्षेत्र में सम्मिलित क्षेत्र हरिद्वार नगर निगम का कुल क्षेत्रफल होगा । तारीख 21 जुलाई, 2011 की दूसरी अधिसूचना में यह कहा गया था कि राज्यपाल ने अधिनियम की धारा 8-कक(1) के अधीन यह निदेश दिया है कि विद्यमान हरिद्वार नगरपालिक परिषद् इस अधिसूचना के जारी किए जाने की तारीख से विघटित हो जाएगी और हरिद्वार नगर निगम के बृहत्तर शहरी क्षेत्र के प्रशासन के लिए हरिद्वार के जिला मजिस्ट्रेट को प्रशासक नियुक्त किया जाता है । अपीलार्थी ने तारीख 21 जुलाई, 2011 की इन दो अधिसूचनाओं से व्यथित होकर यह दलील देते हुए पुनः 2011 की रिट याचिका (सिविल) सं. 1533 फाइल की है कि नगरपालिक परिषद् को विघटित करने और नगर निगम के बृहत्तर शहरी क्षेत्र के लिए प्रशासक नियुक्त करने से पूर्व हरिद्वार नगरपालिक परिषद् को सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था और इसलिए दोनों अधिसूचनाएं अभिखंडित किए जाने योग्य हैं । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका मंजूर कर ली और तारीख 21 जुलाई, 2011 की दोनों अधिसूचनाएं अभिखंडित कर दीं । इससे व्यथित होकर उत्तराखंड राज्य और हरिद्वार के जिला मजिस्ट्रेट ने उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष विशेष अपील फाइल की और उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने आक्षेपित निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया कि उन सभी व्यक्तियों को, जो हरिद्वार नगरपालिक परिषद् की विनिश्चयकारक प्रक्रिया में हितबद्ध थे, सुनवाई का अवसर दिया गया था । अतः, उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने आक्षेपित निर्णय द्वारा अपील मंजूर कर ली और विद्वान् एकल

न्यायाधीश के आदेश को अपास्त कर दिया और रिट याचिका खारिज कर दी । इससे व्यथित होकर अपीलार्थी ने यह अपील फाइल की है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यद्यपि उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ का तारीख 23 जून, 2011 वाला पूर्ववर्ती निर्णय, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उन व्यक्तियों को सुनवाई का अवसर अवश्य दिया जाना चाहिए जिन पर हरिद्वार नगरपालिक परिषद् के विघटन द्वारा प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है, इस न्यायालय पर आबद्धकर नहीं है तथापि, वह 2011 की विशेष अपील सं. 104 में के पक्षकारों पर जिसमें उपर्युक्त निर्णय दिया गया था पूर्वन्याय के सिद्धांत के कारण आबद्धकर है । उत्तराखंड राज्य सरकार 2011 की उपर्युक्त विशेष अपील सं. 104 में अपीलार्थी थी और इसलिए अब वह यह दलील नहीं दे सकती कि उसके द्वारा तारीख 21 जुलाई, 2011 की दोनों अधिसूचनाएं जारी करने से पूर्व, जिनके द्वारा हरिद्वार नगरपालिक परिषद् का विघटन किया गया था और प्रशासक की नियुक्ति की गई थी, हरिद्वार नगरपालिक परिषद् को सुनवाई का अवसर देना आवश्यक नहीं था । (पैरा 11)

प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की ओर से उपाबंध ग-1 के रूप में फाइल किए गए प्रति-शपथपत्र से उपाबद्ध तारीख 19 जुलाई, 2011 के आदेश के पैरा 4 से यह प्रकट होता है कि प्रधान सचिव, शहरी विकास विभाग, उत्तराखंड सरकार ने आक्षेपकर्ताओं को उनके अपने-अपने आक्षेपों के संबंध में तारीख 16 जुलाई, 2011 को 11.00 बजे पूर्वाह्न से 3.00 बजे अपराह्न के बीच कुंभ मेला नियंत्रण हाउस, हरिद्वार में सुनवाई का अवसर प्रदान किया है और आक्षेपकर्ताओं में से हरिद्वार नगरपालिका के अनेक नगर पार्षद थे, अर्थात्, दिनेश जोशी, राकेश प्रजापति, यशोदा देवी, लीला देवी, अशोक शर्मा, जगधीर सिंह, निखिल मेहता, इदरीस अंसारी, सत्य नारायण, करुणा शर्मा, संजय शर्मा, राधे कृष्ण, प्रभा घई और राम आहूजा । अतः, अपीलार्थी भी, जो कि हरिद्वार नगरपालिका परिषद् का अध्यक्ष था, अपने आक्षेपों के समर्थन में सुनवाई में भाग ले सकता था । अतः, हमें उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के आक्षेपित निर्णय में कोई त्रुटि प्रतीत नहीं होती है कि उन सभी व्यक्तियों को, जिन पर तारीख 21 जुलाई, 2011 की दोनों अधिसूचनाओं द्वारा प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना थी, वास्तव में सुनवाई का अवसर दिया गया था । (पैरा 12)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	2009 की रिट याचिका (सिविल) सं. 56954 जिसका विनिश्चय तारीख 26 फरवरी, 2010 को किया गया : **नगरपालिका परिषद् और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** ;	10
[2003]	(2003) 9 एस. सी. सी. 731 : **महाराष्ट्र राज्य और अन्य** बनाम **जलगांव नगरपालिक परिषद् और अन्य** ;	10
[1981]	(1981) 1 एस. सी. सी. 664 : **स्वदेशी काटन मिल्स** बनाम **भारत संघ** ;	8
[1980]	(1980) 4 एस. सी. सी. 379 : **एस. एल. कपूर** बनाम **जगमोहन और अन्य** ;	8
[1978]	(1978) 1 एस. सी. सी. 405 : **मोहिन्दर सिंह गिल और एक अन्य** बनाम **मुख्य निर्वाचन आयुक्त, नई दिल्ली और अन्य** ।	8

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2013 की सिविल अपील सं. 4835.

2011 की विशेष अपील सं. 289 में उत्तराखंड उच्च न्यायालय की नैनीताल न्यायपीठ के तारीख 21 दिसम्बर, 2011 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री विजय हंसारिया, ज्येष्ठ अधिवक्ता, नगेन्द्र सिंह और विश्व पाल सिंह

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री डा. अभिषेक अत्रे, ब्रजेश पंचाल और ऐश्वर्या शंडालिया

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए. के. पटनायक ने दिया ।

न्या. पटनायक – इजाजत दी जाती है ।

2. यह अपील 2011 की विशेष अपील सं. 289 में उत्तराखंड उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के तारीख 21 दिसम्बर, 2011 के निर्णय के विरुद्ध संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाजत लेकर की गई है ।

मामले के तथ्य :

3. सुसंगत तथ्य अत्यंत संक्षेप में ये हैं कि अपीलार्थी को मई, 2008 में हरिद्वार नगरपालिक परिषद् के अध्यक्ष के रूप में निर्वाचित किया गया था । जब वह हरिद्वार नगरपालिक परिषद् के अध्यक्ष के रूप में कार्य कर रहा था तब उत्तराखंड सरकार द्वारा तारीख 20 मई, 2011 को यह अधिसूचित करते हुए एक अधिसूचना जारी की गई थी कि उत्तराखंड के राज्यपाल ने संविधान के अनुच्छेद 243थ(2) और उत्तर प्रदेश नगर निगम अधिनियम, 1959 (जिसे संक्षेप में ''अधिनियम'' कहा गया है) की धारा 8-कक के साथ पठित अधिनियम की धारा 3(2) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए हरिद्वार नगरपालिक परिषद् का विघटन कर दिया है और हरिद्वार नगर निगम के क्षेत्र का प्रशासन करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट, हरिद्वार को प्रशासक के रूप में नियुक्त किया है । अपीलार्थी ने उपर्युक्त अधिसूचना को उत्तराखंड उच्च न्यायालय में मुख्यतः इस आधार पर चुनौती देते हुए तारीख 20 मई, 2011 को 2011 की रिट याचिका सं. 1031 फाइल की कि अधिसूचना जारी किए जाने से पूर्व हरिद्वार नगरपालिक परिषद् को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था और उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने, जिसने रिट याचिका की सुनवाई की थी, तारीख 9 जून, 2011 के अपने आदेश में यह अभिनिर्धारित किया था कि हरिद्वार नगरपालिक परिषद् का विघटन और हरिद्वार नगर निगम क्षेत्रों का प्रशासन करने के लिए प्रशासक की नियुक्ति अधिनियम की धारा 8-कक के अधीन नगरपालिक परिषद् को सुनवाई का कोई अवसर प्रदान किए बिना या कारण दर्शित किए बिना की गई थी इसलिए तारीख 20 मई, 2011 की अधिसूचना से भारत के संविधान का स्पष्टतः अतिक्रमण होता है । इसलिए, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने तारीख 9 जून, 2011 के आदेश द्वारा रिट याचिका मंजूर कर ली और तारीख 20 मई, 2011 की अधिसूचना अभिखंडित कर दी और हरिद्वार के जिला मजिस्ट्रेट को यह निदेश दिया कि वह हरिद्वार नगरपालिका के निर्वाचित प्रतिनिधियों को तुरंत कार्यभार सौंप दे ।

4. इससे व्यथित होकर उत्तराखंड राज्य ने उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष यह दलील देते हुए 2011 की विशेष अपील फाइल की कि हरिद्वार नगरपालिक परिषद् का हरिद्वार नगर निगम के रूप में उन्नयन राज्य सरकार द्वारा संविधान के अनुच्छेद 243थ में दी गई आज्ञा के अनुसार किया गया था और हरिद्वार नगरपालिक परिषद् का विघटन ऐसे उन्नयन का

मात्र एक परिणाम था और इसलिए विघटन से पूर्व और हरिद्वार नगर निगम के क्षेत्रों को प्रशासित करने के लिए किसी प्रशासक की नियुक्ति करने से पूर्व हरिद्वार नगरपालिक परिषद् को कोई कारण दर्शित करने वाली सूचना या सुनवाई का कोई अवसर देना आवश्यक नहीं था । तथापि, उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने तारीख 23 जून, 2011 के अपने निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 8-कक में नगरपालिक परिषद् का नगर निगम के रूप में उन्नयन होने पर नगरपालिक परिषद् के स्वतः विघटन हो जाने का उपबंध नहीं है और चूंकि विधि में किसी नगरपालिक परिषद् के स्वतः विघटन का उपबंध नहीं है इसलिए उन व्यक्तियों को, जिन पर नगरपालिक परिषद् के विघटन द्वारा प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना थी, सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए था । अतः, उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने विद्वान् एकल न्यायाधीश के तारीख 23 जून, 2011 के आदेश को कायम रखा और अपील खारिज कर दी किन्तु विद्वान् महाधिवक्ता की प्रार्थना पर विद्वान् एकल न्यायाधीश के तारीख 23 जून, 2011 के आदेश के प्रवर्तन पर तीन सप्ताह की अवधि के लिए रोक लगा दी ।

5. उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के तारीख 23 जून, 2011 के निर्णय के तुरंत पश्चात् उत्तराखंड सरकार ने तारीख 29 जून, 2011 की एक लोक सूचना जारी की जिसमें यह कहा गया था कि राज्य सरकार की राय में हरिद्वार नगरपालिक परिषद् के लघु शहरी क्षेत्र को बृहत्तर शहरी क्षेत्र और परिणामस्वरूप हरिद्वार नगर निगम में संपरिवर्तित करना आवश्यक है । तारीख 29 जून, 2011 की लोक सूचना द्वारा हरिद्वार नगरपालिक परिषद् के अध्यक्ष और पार्षदों तथा हरिद्वार नगरपालिक परिषद् के शहरी क्षेत्र में निवास करने वाली समस्त जनता को अपने आक्षेप और सुझाव देने के लिए आमंत्रित किया गया था । तारीख 29 जून, 2011 की लोक सूचना में यह भी कहा गया था कि तारीख 13 जुलाई, 2011 को उत्तराखंड सरकार के शहरी विभाग के प्रधान सचिव द्वारा 1.30 बजे अपराह्न से 4.00 बजे अपराह्न के बीच एक सुनवाई की जाएगी जिसमें व्यक्तियों को उनके आक्षेपों और सुझावों के संबंध में व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर प्रदान किया जाएगा और इसके पश्चात् ही राज्य सरकार द्वारा अंतिम विनिश्चय किया जाएगा । राज्य सरकार द्वारा जारी किए गए तारीख 8 जुलाई, 2011 के शुद्धिपत्र द्वारा सुनवाई की तारीख बदलकर 16 जुलाई, 2011 कर दी गई । अपीलार्थी ने शहरी विकास निदेशक के समक्ष जुलाई, 2011 में अपने आक्षेप फाइल किए और अपने आक्षेप में यह कथन भी किया कि उसके

आक्षेपों के संबंध में उसकी व्यक्तिगत रूप से सुनवाई की जाए । इसके पश्चात्, तारीख 21 जुलाई, 2011 को उत्तराखंड सरकार ने दो अधिसूचनाएं जारी कीं । तारीख 21 जुलाई, 2011 की एक अधिसूचना में यह कहा गया था कि राज्यपाल संविधान के अनुच्छेद 243थ(2) के साथ पठित अधिनियम की धारा 3(2) के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए हरिद्वार शहर के समग्र विकास के लिए विद्यमान लघु शहरी क्षेत्र का बृहत्तर शहरी क्षेत्र में संपरिवर्तन अधिसूचित करते हैं और यह भी अधिसूचित करते हैं कि बृहत्तर शहरी क्षेत्र में सम्मिलित क्षेत्र हरिद्वार नगर निगम का कुल क्षेत्रफल होगा । तारीख 21 जुलाई, 2011 की दूसरी अधिसूचना में यह कहा गया था कि राज्यपाल ने अधिनियम की धारा 8-कक(1) के अधीन यह निदेश दिया है कि विद्यमान हरिद्वार नगरपालिक परिषद् इस अधिसूचना के जारी किए जाने की तारीख से विघटित हो जाएगी और हरिद्वार नगर निगम के बृहत्तर शहरी क्षेत्र के प्रशासन के लिए हरिद्वार के जिला मजिस्ट्रेट को प्रशासक नियुक्त किया जाता है ।

6. अपीलार्थी ने तारीख 21 जुलाई, 2011 की इन दो अधिसूचनाओं से व्यथित होकर यह दलील देते हुए पुनः 2011 की रिट याचिका (सिविल) सं. 1533 फाइल की है कि नगरपालिक परिषद् को विघटित करने और नगर निगम के बृहत्तर शहरी क्षेत्र के लिए प्रशासक नियुक्त करने से पूर्व हरिद्वार नगरपालिक परिषद् को सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था और इसलिए दोनों अधिसूचनाएं अभिखंडित किए जाने योग्य हैं । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने तारीख 15 दिसम्बर, 2011 के अपने आदेश द्वारा रिट याचिका मंजूर कर ली और तारीख 21 जुलाई, 2011 की दोनों अधिसूचनाएं अभिखंडित कर दीं । इससे व्यथित होकर उत्तराखंड राज्य और हरिद्वार के जिला मजिस्ट्रेट ने उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष 2011 की विशेष अपील सं. 289 फाइल की और उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने तारीख 21 दिसम्बर, 2011 के आक्षेपित निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया कि उन सभी व्यक्तियों को, जो हरिद्वार नगरपालिक परिषद् की विनिश्चयकारक प्रक्रिया में हितबद्ध थे, सुनवाई का अवसर दिया गया था । अतः, उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने आक्षेपित निर्णय द्वारा अपील मंजूर कर ली और विद्वान् एकल न्यायाधीश के आदेश को अपास्त कर दिया और रिट याचिका खारिज कर दी । इससे व्यथित होकर अपीलार्थी ने यह अपील फाइल की है ।

पक्षकारों के विद्वान् काउन्सेलों की दलीलें :

7. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल श्री विजय हंसारिया ने यह दलील दी कि संविधान के अनुच्छेद 243प(1) के अधीन और उत्तर प्रदेश नगरपालिका अधिनियम, 1916 की धारा 10-क के अधीन प्रत्येक नगरपालिका का यह अधिकार है कि वह अपनी पहली बैठक की तारीख से तब तक पांच वर्ष की अवधि के लिए बनी रहे जब तक कि तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन उसे इससे पहले विघटित न कर दिया जाए । उसने यह दलील दी कि संविधान के अनुच्छेद 243प(1) के परन्तुक में यह कहा गया है कि किसी नगरपालिका का विघटन करने से पूर्व उसे सुनवाई का अवसर दिया जाएगा । उसने यह निवेदन किया कि उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने 2011 की रिट याचिका सं. 1031 में अपने तारीख 9 जून, 2011 के निर्णय में और उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने 2011 की विशेष अपील सं. 103 में तारीख 23 जून, 2011 के अपने निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया कि हरिद्वार नगरपालिक परिषद् तारीख 20 मई, 2011 की अधिसूचना द्वारा अपने विघटन से पूर्व और प्रशासक नियुक्त करने से पूर्व सुनवाई का अवसर दिए जाने की हकदार थी । उसने यह दलील दी कि तारीख 23 जून, 2011 को उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के निर्णय के पश्चात् उत्तराखंड सरकार ने तारीख 29 जून, 2011 की लोक सूचना द्वारा आक्षेप/सुझाव आमंत्रित किए थे किन्तु नगरपालिका को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था और फिर भी उत्तराखंड सरकार की तारीख 21 जुलाई, 2011 की आक्षेपित अधिसूचना द्वारा हरिद्वार नगरपालिका का पुनः विघटन कर दिया गया था और उसके स्थान पर एक प्रशासक की नियुक्ति कर दी गई थी ।

8. श्री हंसारिया ने यह दलील दी कि विधि की यह स्थापित प्रतिपादना है कि यदि किसी प्राधिकारी को ऐसा विनिश्चय करने की शक्ति प्रदान करने वाले किसी कानून में, जिसके सिविल परिणाम हैं, विनिश्चय किए जाने से पूर्व व्यक्तिगत सुनवाई को अभिव्यक्त रूप से प्रतिषिद्ध नहीं किया गया है तो ऋजु व्यवहार का नियम यह अपेक्षा करता है कि उन व्यक्तियों को, जिन पर उस विनिश्चय से प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है, व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर प्रदान किया जाए । इस प्रतिपादना के समर्थन में उसने **मोहिन्दर सिंह गिल और एक अन्य** बनाम

मुख्य निर्वाचन आयुक्त, नई दिल्ली और अन्य[1], **एस. एल. कपूर** बनाम **जगमोहन और अन्य**[2] और **स्वदेशी काटन मिल्स** बनाम **भारत संघ**[3] वाले विनिश्चयों को उद्धृत किया । उसने यह दलील दी कि अधिनियम की धारा 8-कक में, जो राज्य सरकार को किसी नगरपालिक परिषद् के स्थान पर किसी नगर निगम का गठन करने के प्रयोजनार्थ उसका विघटन करने के लिए सशक्त करती है, उसके विघटन से पूर्व नगरपालिक परिषद् को सुनवाई का अवसर देने से अभिव्यक्ततः प्रतिषिद्ध नहीं किया गया है और इसलिए नगरपालिक परिषद् को वहां व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए जहां राज्य सरकार की यह राय हो कि नगरपालिक परिषद् के स्थान पर नगर निगम का गठन करने के प्रयोजनार्थ उसका विघटन किया जाना है ।

9. इसके बाद, श्री हंसारिया ने यह दलील दी कि अधिनियम की धारा 8-कक की उपधारा (1) की भाषा से यह स्पष्ट होगा कि किसी नगरपालिक परिषद् का विघटन केवल तभी किया जाना है यदि राज्य सरकार की यह राय हो कि बृहत्तर शहरी क्षेत्र के लिए नगर निगम का गठन किए जाने तक नगरपालिक परिषद् को किसी विनिर्दिष्ट तारीख से विघटित करना और यह निदेश देना समीचीन है कि विनिर्दिष्ट तारीख से निगम की सभी शक्तियां, कृत्य और कर्तव्य प्रशासक में निहित होंगे और उनका प्रयोग, पालन और निर्वहन उसके द्वारा किया जाएगा । उसने यह दलील दी कि राज्य सरकार की तारीख 21 जुलाई, 2011 की अधिसूचनाओं में यह दर्शित करने वाली कोई बात नहीं है कि राज्य सरकार ने यह राय बना ली थी कि नगरपालिक परिषद् को विघटित करना और प्रशासक की नियुक्ति करना समीचीन था ।

10. दूसरी ओर, उत्तराखंड राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल डा. अभिषेक अत्रे ने इसके उत्तर में, प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की ओर से फाइल किए गए प्रति-शपथपत्र तथा प्रति-शपथपत्र के साथ उपाबंध ग-1 के रूप में उपाबद्ध उत्तराखंड सरकार के तारीख 19 जुलाई, 2011 के आदेश का अवलंब लेते हुए यह दलील दी कि उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने आक्षेपित निर्णय में ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि

---

[1] (1978) 1 एस. सी. सी. 405.

[2] (1980) 4 एस. सी. सी. 379.

[3] (1981) 1 एस. सी. सी. 664.

तारीख 29 जून, 2011 की लोक सूचना द्वारा समस्त संबंधित व्यक्तियों को, जिसमें हरिद्वार नगरपालिक परिषद् भी है, व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर प्रदान किया गया था । उसने **महाराष्ट्र राज्य और अन्य** बनाम **जलगांव नगरपालिक परिषद् और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय को उद्धृत किया जिसमें तारीख 15 नवम्बर, 2001 की अधिसूचना द्वारा यथा-संशोधित तारीख 16 अक्तूबर, 2001 की अधिसूचना के बारे में, जिसके द्वारा जलगांव नगरपालिक परिषद् का विघटन किया गया था, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वह नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों की अपेक्षा को पूरा करती है । उसने आगे यह दलील दी कि **नगरपालिका परिषद् और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[2] वाले मामले के निर्णय में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि किसी लघुतर शहरी क्षेत्र की नगरपालिका का किसी बृहत्तर शहरी क्षेत्र के नगर निगम में उन्नयन के प्रयोजनार्थ किया जाने वाला विघटन संविधान के अनुच्छेद 243प के अधीन यथा-परिकल्पित विघटन नहीं कहा जा सकता है और अनुच्छेद 243प के परन्तुक का तब अतिक्रमण नहीं होगा यदि ऐसे विघटन से पूर्व नगरपालिका को सुनवाई का अवसर प्रदान नहीं किया जाता है । उसने यह दलील दी कि यद्यपि 2010 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 13400 इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 26 फरवरी, 2010 के उपर्युक्त निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई थी, तथापि, इस न्यायालय ने तारीख 25 अगस्त, 2010 के आदेश द्वारा विशेष इजाजत याचिका खर्चों सहित खारिज कर दी ।

न्यायालय के निष्कर्ष :

11. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउन्सेलों की दलीलों पर विचार किया है और हमारी यह राय है कि यद्यपि उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ का तारीख 23 जून, 2011 वाला पूर्ववर्ती निर्णय, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उन व्यक्तियों को सुनवाई का अवसर अवश्य दिया जाना चाहिए जिन पर हरिद्वार नगरपालिक परिषद् के विघटन द्वारा प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है, इस न्यायालय पर आबद्धकर नहीं है तथापि, वह 2011 की विशेष अपील सं. 104 में के पक्षकारों पर जिसमें उपर्युक्त निर्णय दिया गया था पूर्वन्याय के सिद्धांत के कारण आबद्धकर है ।

---

[1] (2003) 9 एस. सी. सी. 731.

[2] 2009 की रिट याचिका (सिविल) सं. 56954 जिसका विनिश्चय तारीख 26 फरवरी, 2010 को किया गया ।

उत्तराखंड राज्य सरकार 2011 की उपर्युक्त विशेष अपील सं. 104 में अपीलार्थी थी और इसलिए अब वह यह दलील नहीं दे सकती कि उसके द्वारा तारीख 21 जुलाई, 2011 की दोनों अधिसूचनाएं जारी करने से पूर्व, जिनके द्वारा हरिद्वार नगरपालिक परिषद् का विघटन किया गया था और प्रशासक की नियुक्ति की गई थी, हरिद्वार नगरपालिक परिषद् को सुनवाई का अवसर देना आवश्यक नहीं था ।

12. अतः, हमें जिस प्रथम प्रश्न का विनिश्चय करना है वह यह है कि क्या हरिद्वार नगरपालिका का विघटन करने और अधिनियम की धारा 8-कक के अधीन प्रशासक की नियुक्ति करने के लिए तारीख 21 जुलाई, 2011 की दोनों अधिसूचनाएं जारी करने से पूर्व हरिद्वार नगरपालिक परिषद् को सुनवाई का अवसर प्रदान किया गया था । वह लोक सूचना, जो 2011 की विशेष अपील सं. 104 में उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के तारीख 23 जून, 2011 के निर्णय के तुरंत पश्चात् तारीख 29 जून, 2011 को जारी की गई थी, इसमें इसके नीचे उद्धृत की जाती है :–

> "संविधान के अनुच्छेद 243प के साथ पठित उत्तर प्रदेश नगर निगम अधिनियम, 1959 (1959 का उत्तर प्रदेश अधिनियम सं. 2) (उत्तराखंड राज्य में यथा लागू) की धारा 3 की उपधारा (2) के अधीन राज्य सरकार की यह सुविचारित राय है कि हरिद्वार नगरपालिका परिषद् के लघुतर शहरी क्षेत्र को बृहत्तर शहरी क्षेत्र में और परिणामस्वरूप हरिद्वार नगर निगम में संपरिवर्तित किया जाए ।
>
> उपर्युक्त कारणों से हरिद्वार नगरपालिका परिषद् के अध्यक्ष, हरिद्वार नगरपालिका परिषद् के पार्षदों और ऐसी समस्त जनता से जो साधारणतया उक्त क्षेत्र में निवास करती हैं, अपने आक्षेप और सुझाव देने के लिए आमंत्रित किया जाता है । लिखित आक्षेप और सुझाव निदेशक, शहरी विकास विभाग, उत्तराखंड, 43/6, माता मंदिर मार्ग, धर्मपुर, देहरादून के कार्यालय में तारीख 11 जुलाई, 2011 तक पहुंच जाने चाहिएं । उक्त अधिसूचित तारीख के पश्चात् प्राप्त किसी सुझाव और आक्षेप को स्वीकार नहीं किया जाएगा । लिखित आक्षेप और सुझाव प्राप्त होने पर प्रधान सचिव, शहरी विकास विभाग, उत्तराखंड सरकार द्वारा निदेशक, शहरी विकास विभाग, उत्तराखंड, 43/6, माता मंदिर मार्ग, धर्मपुर, देहरादून के कार्यालय में तारीख 13 जुलाई, 2011 को सुनवाई की जाएगी । सुनवाई का समय 1.30 बजे अपराह्न से 4.00 बजे अपराह्न के बीच होगा । सुनवाई के दौरान

> व्यक्तियों को व्यक्तिगत रूप से सुनवाई का अवसर भी दिया जाएगा । ऐसे आक्षेप और सुझाव प्राप्त होने के पश्चात् और उन पर विचार करने के पश्चात् इस स्थान पर बृहत्तर शहरी क्षेत्र में संपरिवर्तित करने संबंधी अंतिम विनिश्चय किया जाएगा ।"

उत्तराखंड सरकार द्वारा जारी की गई तारीख 20 जून, 2011 की उपर्युक्त लोक सूचना से यह स्पष्ट होगा कि हरिद्वार नगरपालिका के अध्यक्ष, हरिद्वार नगरपालिका के पार्षदों और ऐसी समस्त जनता को, जो साधारणतया उस क्षेत्र में निवास करती थी, अपने आक्षेप और सुझाव देने के लिए आमंत्रित किया गया था । ऊपर उद्धृत तारीख 29 अगस्त, 2011 की लोक सूचना से यह भी स्पष्ट होगा कि लिखित आक्षेप और सुझाव प्राप्त होने पर प्रधान सचिव, शहरी विकास विभाग, उत्तराखंड सरकार द्वारा तारीख 13 जुलाई, 2011 को 1.30 बजे अपराह्न से 4.00 बजे अपराह्न के बीच सुनवाई की जानी थी और सुनवाई के दौरान व्यक्तियों को आक्षेपों के संबंध में व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर दिया जाना था । पश्चात्वर्ती शुद्धिपत्र द्वारा सुनवाई की तारीख बदलकर 16 जुलाई, 2011 कर दी गई थी । हमें, इसके अलावा प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की ओर से उपाबंध ग-1 के रूप में फाइल किए गए प्रति-शपथपत्र से उपाबद्ध तारीख 19 जुलाई, 2011 के आदेश के पैरा 4 से यह प्रकट होता है कि प्रधान सचिव, शहरी विकास विभाग, उत्तराखंड सरकार ने आक्षेपकर्ताओं को उनके अपने-अपने आक्षेपों के संबंध में तारीख 16 जुलाई, 2011 को 11.00 बजे पूर्वाह्न से 3.00 बजे अपराह्न के बीच कुंभ मेला नियंत्रण हाउस, हरिद्वार में सुनवाई का अवसर प्रदान किया है और आक्षेपकर्ताओं में से हरिद्वार नगरपालिका के अनेक नगर पार्षद थे, अर्थात्, दिनेश जोशी, राकेश प्रजापति, यशोदा देवी, लीला देवी, अशोक शर्मा, जगधीर सिंह, निखिल मेहता, इदरीस अंसारी, सत्य नारायण, करुणा शर्मा, संजय शर्मा, राधे कृष्ण, प्रभा घई और राम आहूजा । अतः, अपीलार्थी भी, जो कि हरिद्वार नगरपालिका परिषद् का अध्यक्ष था, अपने आक्षेपों के समर्थन में सुनवाई में भाग ले सकता था । अतः, हमें उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के आक्षेपित निर्णय में कोई त्रुटि प्रतीत नहीं होती है कि उन सभी व्यक्तियों को, जिन पर तारीख 21 जुलाई, 2011 की दोनों अधिसूचनाओं द्वारा प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना थी, वास्तव में सुनवाई का अवसर दिया गया था ।

13. इस अपील की सुनवाई के समय हम श्री हंसारिया की इस दूसरी दलील पर विचार करने के लिए तैयार थे कि राज्य सरकार को यह राय बनानी चाहिए थी कि किसी क्षेत्र के लिए नगर निगम का सम्यक् रूप से गठन होने तक किसी विनिर्दिष्ट तारीख से नगरपालिका परिषद् का विघटन करना और यह निदेश देना समीचीन है कि निगम की सभी शक्तियां, कृत्य और कर्तव्य विनिर्दिष्ट तारीख से अधिनियम की धारा 8-कक की उपधारा (1) की भाषा को ध्यान में रखते हुए राज्य सरकार द्वारा नियुक्त प्रशासक में निहित होंगे और उसके द्वारा उनका प्रयोग, पालन और निर्वहन किया जाएगा । किन्तु हमें यह प्रतीत होता है कि यह आधार न तो उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका में और न ही इस न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत याचिका में उठाया गया था । इसके अलावा, हमें यह प्रतीत होता है कि तारीख 21 जुलाई, 2011 की दोनों अधिसूचनाओं के अनुसरण में नगर निगम के निर्वाचन अधिसूचित किए गए हैं और वे 30 अप्रैल, 2013 तक पूरे कर लिए गए हैं । अतः, भले ही अपीलार्थी इस मुद्दे पर सफल हो जाता है तो भी हम नगर निगम के गठन के पश्चात् हरिद्वार नगरपालिका के प्रत्यावर्तन का निदेश नहीं दे सकते हैं । इन कारणों से, हम इस अपील में इस प्रश्न पर विचार करने से प्रविरत रहते हैं और इस प्रश्न को किसी अन्य समुचित मामले में विनिश्चित किए जाने के लिए छोड़ देते हैं ।

14. परिणामतः, हमें इस अपील में कोई सार प्रतीत नहीं होता है और हम तदनुसार उसे खारिज करते हैं किन्तु खर्चे के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

ग्रो.

संसद् के अधिनियम

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005

(2005 का अधिनियम संख्यांक 22)

[15 जून, 2005]

प्रत्येक लोक प्राधिकारी के कार्यकरण में पारदर्शिता और उत्तरदायित्व के संवर्धन के लिए, लोक प्राधिकारियों के नियंत्रणाधीन सूचना तक पहुंच सुनिश्चित करने के लिए नागरिकों के सूचना के अधिकार की व्यावहारिक शासन पद्धति स्थापित करने, एक केन्द्रीय सूचना आयोग तथा राज्य सूचना आयोग का गठन करने और उनसे संबंधित या उनसे आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत के संविधान ने लोकतंत्रात्मक गणराज्य की स्थापना की है ;

और लोकतंत्र शिक्षित नागरिक वर्ग तथा ऐसी सूचना की पारदर्शिता की अपेक्षा करता है, जो उसके कार्यकरण तथा भ्रष्टाचार को रोकने के लिए भी और सरकारों तथा उनके परिकरणों को शासन के प्रति उत्तरदायी बनाने के लिए अनिवार्य है ;

और वास्तविक व्यवहार में सूचना के प्रकटन से संभवत: अन्य लोक हितों, जिनके अन्तर्गत सरकारों के दक्ष प्रचालन, सीमित राज्य वित्तीय संसाधनों के अधिकतम उपयोग और संवेदनशील सूचना की गोपनीयता को बनाए रखना भी है, के साथ विरोध हो सकता है ;

और लोकतंत्रात्मक आदर्श की प्रभुता को बनाए रखते हुए इन विरोधी हितों के बीच सामंजस्य बनाना आवश्यक है ;

अत:, अब यह समीचीन है कि ऐसे नागरिकों को, कतिपय सूचना देने के लिए, जो उसे पाने के इच्छुक हैं, उपबंध किया जाए ;

भारत गणराज्य के छप्पनवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो : –

अध्याय 1
प्रारम्भिक

1. **संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ** – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय सम्पूर्ण भारत पर है ।

(3) धारा 4 की उपधारा (1) धारा 5 की उपधारा (1) और उपधारा (2), धारा 12, धारा 13, धारा 15, धारा 16, धारा 24, धारा 27 और धारा 28 के उपबंध तुरंत प्रभावी होंगे और इस अधिनियम के शेष उपबंध इसके अधिनियमन के एक सौ बीसवें दिन* को प्रवृत्त होंगे ।

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "समुचित सरकार" से किसी ऐसे लोक प्राधिकरण के संबंध में जो –

(i) केन्द्रीय सरकार या संघ राज्यक्षेत्र द्वारा स्थापित, गठित, उसके स्वामित्वाधीन, नियंत्रणाधीन या उसके द्वारा प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध कराई गई निधियों द्वारा पूर्णतया वित्तपोषित किया जाता है, केन्द्रीय सरकार अभिप्रेत है ;

(ii) राज्य सरकार द्वारा स्थापित, गठित उसके स्वामित्वाधीन, नियंत्रणाधीन या उसके द्वारा प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध कराई गई निधियों द्वारा सारभूत रूप से वित्तपोषित किया जाता है, राज्य सरकार अभिप्रेत है ;

(ख) "केन्द्रीय सूचना आयोग" से धारा 12 की उपधारा (1) के अधीन गठित केन्द्रीय सूचना आयोग अभिप्रेत है ;

(ग) "केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी" से उपधारा (1) के अधीन पदाभिहित केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत धारा 5 की उपधारा (2) के अधीन इस प्रकार पदाभिहित कोई केन्द्रीय सहायक लोक सूचना अधिकारी भी है ;

(घ) "मुख्य सूचना आयुक्त" और "सूचना आयुक्त" से धारा 12 की उपधारा (3) के अधीन नियुक्त मुख्य सूचना आयुक्त और सूचना

---

* 12 अक्तूबर, 2005.

आयुक्त अभिप्रेत है ;

(ङ) "सक्षम प्राधिकारी" से अभिप्रेत है –

(i) लोक सभा या किसी राज्य की विधान सभा की या किसी ऐसे संघ राज्यक्षेत्र की, जिसमें ऐसी सभा है, दशा में अध्यक्ष और राज्य सभा या किसी राज्य की विधान परिषद् की दशा में सभापति ;

(ii) उच्चतम न्यायालय की दशा में भारत का मुख्य न्यायमूर्ति ;

(iii) किसी उच्च न्यायालय की दशा में उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति ;

(iv) संविधान द्वारा या उसके अधीन स्थापित या गठित अन्य प्राधिकरणों की दशा में, यथास्थिति, राष्ट्रपति या राज्यपाल ;

(v) संविधान के अनुच्छेद 239 के अधीन नियुक्त प्रशासक ;

(च) "सूचना" से किसी इलैक्ट्रानिक रूप में धारित अभिलेख, दस्तावेज, ज्ञापन, ई-मेल, मत, सलाह, प्रैस विज्ञप्ति, परिपत्र, आदेश, लागबुक, संविदा, रिपोर्ट, कागजपत्र, नमूने, माडल, आंकड़ों संबंधी सामग्री और किसी प्राइवेट निकाय से संबंधित ऐसी सूचना सहित, जिस तक तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन किसी लोक प्राधिकारी की पहुंच हो सकती है, किसी रूप में कोई सामग्री, अभिप्रेत है ;

(छ) "विहित" से, यथास्थिति, समुचित सरकार या सक्षम प्राधिकारी द्वारा अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(ज) "लोक प्राधिकारी" से, –

(क) संविधान द्वारा या उसके अधीन ;

(ख) संसद् द्वारा बनाई गई किसी अन्य विधि द्वारा ;

(ग) राज्य विधान-मंडल द्वारा बनाई गई किसी अन्य विधि द्वारा ;

(घ) समुचित सरकार द्वारा जारी की गई अधिसूचना या

किए गए आदेश द्वारा, स्थापित या गठित कोई प्राधिकारी या निकाय या स्वायत्त सरकारी संस्था अभिप्रेत है,

और इसके अन्तर्गत, –

(i) कोई ऐसा निकाय है जो समुचित सरकार के स्वामित्वाधीन, नियंत्रणाधीन या उसके द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध कराई गई निधियों द्वारा सारभूत रूप से वित्तपोषित है ;

(ii) कोई ऐसा गैर-सरकारी संगठन है जो समुचित सरकार,

द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध कराई गई निधियों द्वारा वित्तपोषित है ।

(झ) "अभिलेख" में निम्नलिखित सम्मिलित हैं –

(क) कोई दस्तावेज, पाण्डुलिपि और फाइल ;

(ख) किसी दस्तावेज की कोई माइक्रोफिल्म, माइक्रोफिशे और प्रतिकृति प्रति ;

(ग) ऐसी माइक्रोफिल्म में सन्नविष्ट प्रतिबिम्ब या प्रतिबिम्बों का पुनरुत्पादन (चाहे वर्धित रूप में हो या न हो) ; और

(घ) किसी कम्प्यूटर द्वारा या किसी अन्य युक्ति द्वारा उत्पादित कोई अन्य सामग्री ;

(ञ) "सूचना का अधिकार" से इस अधिनियम के अधीन पहुंच योग्य सूचना का, जो किसी लोक प्राधिकारी द्वारा या उसके नियंत्रणाधीन धारित है, अधिकार अभिप्रेत है और जिसमें निम्नलिखित का अधिकार सम्मिलित है –

(i) कृति, दस्तावेजों, अभिलेखों का निरीक्षण ;

(ii) दस्तावेजों या अभिलेखों के टिप्पण, उद्धरण या प्रमाणित प्रतिलिपि लेना ;

(iii) सामग्री के प्रमाणित नमूने लेना ;

(iv) डिस्केट, फ्लापी, टेप, वीडियो कैसेट के रूप में या किसी अन्य इलैक्ट्रानिक रीति में या प्रिंटआऊट के माध्यम से

सूचना को, जहां ऐसी सूचना किसी कम्प्यूटर या किसी अन्य युक्ति में भण्डारित है, अभिप्राप्त करना ;

(ट) "राज्य सूचना आयोग" से धारा 15 की उपधारा (1) के अधीन गठित राज्य सूचना आयोग अभिप्रेत है ;

(ठ) "राज्य मुख्य सूचना आयुक्त" और "राज्य सूचना आयुक्त" से धारा 15 की उपधारा (3) के अधीन नियुक्त राज्य मुख्य सूचना आयुक्त और राज्य सूचना आयुक्त अभिप्रेत है ;

(ड) "राज्य लोक सूचना अधिकारी" से उपधारा 1 के अधीन पदाभिहित राज्य लोक सूचना अधिकारी अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत धारा 5 की उपधारा (2) के अधीन उस रूप में पदाभिहित राज्य सहायक लोक सूचना अधिकारी भी है ;

(ढ) "पर व्यक्ति" से सूचना के लिए अनुरोध करने वाले नागरिक से भिन्न कोई व्यक्ति अभिप्रेत है, और इसके अंतर्गत कोई लोक प्राधिकारी भी है ।

अध्याय 2
सूचना का अधिकार और लोक प्राधिकारियों की बाध्यताएं

3. **सूचना का अधिकार** – इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, सभी नागरिकों को सूचना का अधिकार होगा ।

4. **लोक प्राधिकारियों की बाध्यताएं** – (1) प्रत्येक लोक प्राधिकारी –

(क) अपने सभी अभिलेखों को सम्यक् रूप से सूचीपत्रित और अनुक्रमणिकाबद्ध ऐसी रीति और रूप में रखेगा, जो इस अधिनियम के अधीन सूचना के अधिकार को सुकर बनाता है और सुनिश्चित करेगा कि ऐसे सभी अभिलेख, जो कंप्यूटरीकृत किए जाने के लिए समुचित हैं, युक्तियुक्त समय के भीतर और संसाधनों की उपलभ्यता के अधीन रहते हुए, कंप्यूटरीकृत और विभिन्न प्रणालियों पर संपूर्ण देश में नेटवर्क के माध्यम से संबद्ध हैं जिससे कि ऐसे अभिलेख तक पहुंच को सुकर बनाया जा सके ;

(ख) इस अधिनियम के अधिनियमन से एक सौ बीस दिन के भीतर,-

(i) अपने संगठन की विशिष्टियां, कृत्य और कर्तव्य ;

(ii) अपने अधिकारियों और कर्मचारियों की शक्तियां और कर्तव्य ;

(iii) विनिश्चय करने की प्रक्रिया में पालन की जाने वाली प्रक्रिया जिसमें पर्यवेक्षण और उत्तरदायित्व के माध्यम सम्मिलित हैं ;

(iv) अपने कृत्यों के निर्वहन के लिए स्वयं द्वारा स्थापित मापमान ;

(v) अपने द्वारा या अपने नियंत्रणाधीन धारित या अपने कर्मचारियों द्वारा अपने कृत्यों के निर्वहन के लिए प्रयोग किए गए नियम, विनियम, अनुदेश, निर्देशिका और अभिलेख ;

(vi) ऐसे दस्तावेजों के, जो उसके द्वारा धारित या उसके नियंत्रणाधीन हैं, प्रवर्गों का विवरण ;

(vii) किसी व्यवस्था की विशिष्टियां, जो उसकी नीति की संरचना या उसके कार्यान्वयन के संबंध में जनता के सदस्यों से परामर्श के लिए या उनके द्वारा अभ्यावेदन के लिए विद्यमान हैं ;

(viii) ऐसे बोर्डों, परिषदों, समितियों और अन्य निकायों के, जिनमें दो या अधिक व्यक्ति हैं, जिनका उसके भागरूप में या इस बारे में सलाह देने के प्रयोजन के लिए गठन किया गया है और इस बारे में कि क्या उन बोर्डों, परिषदों, समितियों और अन्य निकायों की बैठकें जनता के लिए खुली होंगी या ऐसी बैठकों के कार्यवृत्त तक जनता की पहुंच होगी, विवरण ;

(ix) अपने अधिकारियों और कर्मचारियों की निर्देशिका ;

(x) अपने प्रत्येक अधिकारी और कर्मचारी द्वारा प्राप्त मासिक पारिश्रमिक, जिसके अंतर्गत प्रतिकर की प्रणाली भी है, जो उसके विनियमों में यथाउपबंधित हो ;

(xi) सभी योजनाओं, प्रस्तावित व्ययों और किए गए संवितरणों पर रिपोर्टों की विशिष्टियां उपदर्शित करते हुए अपने प्रत्येक अभिकरण को आबंटित बजट ;

(xii) सहायिका कार्यक्रमों के निष्पादन की रीति जिसमें आबंटित राशि और ऐसे कार्यक्रमों के फायदाग्राहियों के ब्योरे

सम्मिलित हैं ;

(xiii) अपने द्वारा अनुदत्त रियायतों, अनुज्ञापत्रों या प्राधिकारों के प्राप्तिकर्ताओं की विशिष्टियां ;

(xiv) किसी इलैक्ट्रानिक रूप में सूचना के संबंध में ब्यौरे, जो उसको उपलब्ध हों या उसके द्वारा धारित हों ;

(xv) सूचना अभिप्राप्त करने के लिए नागरिकों को उपलब्ध सुविधाओं की विशिष्टियां, जिनमें किसी पुस्तकालय या वाचन कक्ष के, यदि लोक उपयोग के लिए अनुरक्षित हैं तो, कार्यकरण घंटे सम्मिलित हैं ;

(xvi) लोक सूचना अधिकारियों के नाम, पदनाम और अन्य विशिष्टियां ;

(xvii) ऐसी अन्य सूचना, जो विहित की जाए,

प्रकाशित करेगा और तत्पश्चात् इन प्रकाशनों को प्रत्येक वर्ष में अद्यतन करेगा ;

(ग) महत्वपूर्ण नीतियों की विरचना करते समय या ऐसे विनिश्चयों की घोषणा करते समय, जो जनता को प्रभावित करते हों, सभी सुसंगत तथ्यों को प्रकाशित करेगा ;

(घ) प्रभावित व्यक्तियों को अपने प्रशासनिक या न्यायिककल्प विनिश्चयों के लिए कारण उपलब्ध कराएगा ।

(2) प्रत्येक लोक अधिकारी का निरंतर यह प्रयास होगा कि वह उपधारा (1) के खंड (ख) की अपेक्षाओं के अनुसार, स्वप्ररेणा से, जनता को नियमित अन्तरालों पर संसूचना के विभिन्न संसाधनों के माध्यम से, जिनके अंतर्गत इंटरनेट भी है, इतनी अधिक सूचना उपलब्ध कराने के लिए उपाय करे जिससे कि जनता को सूचना प्राप्त करने के लिए इस अधिनियम का कम से कम अवलंब लेना पड़े ।

(3) उपधारा (1) के प्रयोजन के लिए प्रत्येक सूचना को विस्तृत रूप से और ऐसे प्ररूप और रीति में प्रसारित किया जाएगा, जो जनता के लिए सहज रूप से पहुंच योग्य हो ।

(4) सभी सामग्री को, लागत प्रभावशीलता, स्थानीय भाषा और उस क्षेत्र में संसूचना की अत्यंत प्रभावी पद्धति को ध्यान में रखते हुए, प्रसारित

किया जाएगा तथा सूचना यथास्थिति केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी के पास इलैक्ट्रानिक रूप में संभव सीमा तक निःशुल्क या माध्यम की ऐसी लागत पर या ऐसी मुद्रण लागत कीमत पर, जो विहित की जाए, सहज रूप से पहुंच योग्य होनी चाहिए ।

स्पष्टीकरण – उपधारा (3) और उपधारा (4) के प्रयोजनों के लिए, "प्रसारित" से सूचना पट्टों, समाचारपत्रों, लोक उद्घोषणाओं, मीडिया प्रसारणों, इंटरनेट या किसी अन्य माध्यम से, जिसमें किसी लोक प्राधिकारी के कार्यालयों का निरीक्षण सम्मिलित है, जनता को सूचना की जानकारी देना या संसूचित कराना अभिप्रेत है ।

5. **लोक सूचना अधिकारियों का पदनाम** – (1) प्रत्येक लोक प्राधिकारी, इस अधिनियम के अधिनियमन के सौ दिन के भीतर सभी प्रशासनिक एककों या उसके अधीन कार्यालयों में, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारियों या राज्य सूचना अधिकारियों के रूप में उतने अधिकारियों को अभिहित करेगा, जितने इस अधिनियम के अधीन सूचना के लिए अनुरोध करने वाले व्यक्तियों को सूचना प्रदान करने के लिए आवश्यक हों ।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, प्रत्येक लोक प्राधिकारी, इस अधिनियम के अधिनियमन के सौ दिन के भीतर किसी अधिकारी को प्रत्येक उपमंडल स्तर या अन्य उप जिला स्तर पर यथास्थिति, केन्द्रीय सहायक लोक सूचना अधिकारी या किसी राज्य सहायक लोक सूचना अधिकारी के रूप में इस अधिनियम के अधीन सूचना के लिए आवेदन या अपील प्राप्त करने और उसे तत्काल, यथास्थिति, केंद्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी या धारा 19 की उपधारा (1) के अधीन विनिर्दिष्ट वरिष्ठ अधिकारी या केन्द्रीय सूचना आयोग अथवा राज्य सूचना आयोग को भेजने के लिए, पदाभिहित करेगा :

परंतु यह कि जहां सूचना या अपील के लिए कोई आवेदन यथास्थिति, किसी केन्द्रीय सहायक लोक सूचना अधिकारी या किसी राज्य सहायक लोक सूचना अधिकारी को दिया जाता है, वहां धारा 7 की उपधारा (1) के अधीन विनिर्दिष्ट उत्तर के लिए अवधि की संगणना करने में पांच दिन की अवधि जोड़ दी जाएगी ।

(3) यथास्थिति, प्रत्येक, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी, सूचना की मांग करने वाले व्यक्तियों के अनुरोधों

पर कार्रवाई करेगा और ऐसी सूचना की मांग करने वाले व्यक्तियों को युक्तियुक्त सहायता प्रदान करेगा ।

(4) यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी, ऐसे किसी अन्य अधिकारी की सहायता की मांग कर सकेगा, जिसे वह अपने कृत्यों के समुचित निर्वहन के लिए आवश्यक समझे ।

(5) कोई अधिकारी, जिसकी उपधारा (4) के अधीन सहायता चाही गई है, उसकी सहायता चाहने वाले यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी को सभी सहायता प्रदान करेगा और इस अधिनियम के उपबंधों के किसी उल्लंघन के प्रयोजनों के लिए ऐसे अन्य अधिकारी को, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी समझा जाएगा ।

6. **सूचना अभिप्राप्त करने के लिए अनुरोध** – (1) कोई व्यक्ति, जो इस अधिनियम के अधीन कोई सूचना अभिप्राप्त करना चाहता है, लिखित में या इलैक्ट्रानिक युक्ति के माध्यम से अंग्रेजी या हिन्दी में या उस क्षेत्र की, जिसमें आवेदन किया जा रहा है, राजभाषा में ऐसी फीस के साथ, जो विहित की जाए, –

(क) संबंधित लोक प्राधिकरण के, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी ;

(ख) यथास्थिति, केन्द्रीय सहायक लोक सूचना अधिकारी या राज्य सहायक लोक सूचना अधिकारी,

को, उसके द्वारा मांगी गई सूचना की विशिष्टियां विनिर्दिष्ट करते हुए अनुरोध करेगा :

परंतु जहां ऐसा अनुरोध लिखित में नहीं किया जा सकता है, वहां, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी अनुरोध करने वाले व्यक्ति को सभी युक्तियुक्त सहायता मौखिक रूप से देगा, जिससे कि उसे लेखबद्ध किया जा सके ।

(2) सूचना के लिए अनुरोध करने वाले आवेदक से सूचना का अनुरोध करने के लिए किसी कारण को या किसी अन्य व्यक्तिगत ब्यौरे को, सिवाय उसके जो उससे संपर्क करने के लिए आवश्यक हों, देने की अपेक्षा नहीं की जाएगी ।

(3) जहां, कोई आवेदन किसी लोक प्राधिकारी को किसी ऐसी सूचना के लिए अनुरोध करते हुए किया जाता है, –

(i) जो किसी अन्य लोक प्राधिकारी द्वारा धारित है ; या

(ii) जिसकी विषय-वस्तु किसी अन्य लोक प्राधिकारी के कृत्यों से अधिक निकट रूप से संबंधित है,

वहां, वह लोक प्राधिकारी, जिसको ऐसा आवेदन किया जाता है, ऐसे आवेदन या उसके ऐसे भाग को, जो समुचित हो, उस अन्य लोक प्राधिकारी को अंतरित करेगा और ऐसे अंतरण के बारे में आवेदक को तुरंत सूचना देगा :

परंतु यह कि इस उपधारा के अनुसरण में किसी आवेदन का अंतरण यथासाध्य शीघ्रता से किया जाएगा, किन्तु किसी भी दशा में आवेदन की प्राप्ति की तारीख से पांच दिनों के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

7. **अनुरोध का निपटारा** – (1) धारा 5 की उपधारा (2) के परंतुक या धारा 6 की उपधारा (3) के परंतुक के अधीन रहते हुए, धारा 6 के अधीन अनुरोध के प्राप्त होने पर, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी, यथासंभवशीघ्रता से, और किसी भी दशा में अनुरोध की प्राप्ति के तीस दिन के भीतर, ऐसी फीस के संदाय पर, जो विहित की जाए, या तो सूचना उपलब्ध कराएगा या धारा 8 और धारा 9 में विनिर्दिष्ट कारणों में से किसी कारण से अनुरोध को अस्वीकार करेगा :

परंतु जहां मांगी गई जानकारी का संबंध किसी व्यक्ति के जीवन या स्वतंत्रता से है, वहां वह अनुरोध प्राप्त होने के अड़तालीस घंटे के भीतर उपलब्ध कराई जाएगी ।

(2) यदि, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी उपधारा (1) के अधीन विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर सूचना के लिए अनुरोध पर विनिश्चय करने में असफल रहता है तो, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी, के बारे में यह समझा जाएगा कि उसने अनुरोध को नामंजूर कर दिया है ।

(3) जहां, सूचना उपलब्ध कराने की लागत के रूप में किसी और फीस के संदाय पर सूचना उपलब्ध कराने का विनिश्चय किया जाता है, वहां यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना

अधिकारी अनुरोध करने वाले व्यक्ति को, –

(क) सूचना उपलब्ध कराने के लागत के रूप में उसके द्वारा यथाअवधारित और फीस के ब्यौरे, जिसके साथ उपधारा (1) के अधीन विहित फीस के अनुसार रकम निकालने के लिए की गई संगणनाएं होंगी, देते हुए उससे उस फीस को जमा करने का अनुरोध करते हुए कोई संसूचना भेजेगा और उक्त संसूचना के प्रेषण और फीस के संदाय के बीच मध्यवर्ती अवधि को उस धारा में निर्दिष्ट तीस दिन की अवधि की संगणना करने के प्रयोजन के लिए अपवर्जित किया जाएगा ;

(ख) प्रभारित फीस की रकम या उपलब्ध कराई गई पहुंच के प्ररूप के बारे में, जिसके अंतर्गत अपील प्राधिकारी की विशिष्टियां, समय-सीमा, प्रक्रिया और कोई अन्य प्ररूप भी हैं, विनिश्चय का पुनर्विलोकन करने के संबंध में उसके अधिकार से संबंधित सूचना देते हुए, कोई संसूचना भेजेगा ।

(4) जहां, इस अधिनियम के अधीन अभिलेख या उसके किसी भाग तक पहुंच अपेक्षित है और ऐसा व्यक्ति, जिसको पहुंच उपलब्ध कराई जानी है, संवेदनात्मक रूप से निःशक्त है, वहां यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी सूचना तक पहुंच को समर्थ बनाने के लिए सहायता उपलब्ध कराएगा जिसमें निरीक्षण के लिए ऐसी सहायता कराना भी सम्मिलित है, जो समुचित हो ।

(5) जहां, सूचना तक पहुंच मुद्रित या किसी इलैक्ट्रानिक रूपविधान में उपलब्ध कराई जानी है, वहां आवेदक, उपधारा (6) के अधीन रहते हुए, ऐसी फीस का संदाय करेगा, जो विहित की जाए :

परन्तु धारा 6 की उपधारा (1) और धारा 7 की उपधारा (1) और उपधारा (5) के अधीन विहित फीस युक्तियुक्त होगी और ऐसे व्यक्तियों से, जो गरीबी की रेखा के नीचे हैं, जैसा समुचित सरकार द्वारा अवधारित किया जाए, कोई फीस प्रभारित नहीं की जाएगी ।

(6) उपधारा (5) में किसी बात के होते हुए भी, जहां कोई लोक प्राधिकारी उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट समय-सीमा का अनुपालन करने में असफल रहता है, वहां सूचना के लिए अनुरोध करने वाले व्यक्ति को प्रभार के बिना सूचना उपलब्ध कराई जाएगी ।

(7) उपधारा (1) के अधीन कोई विनिश्चय करने से पूर्व, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी धारा 11 के अधीन पर व्यक्ति द्वारा किए गए अभ्यावेदन को ध्यान में रखेगा ।

(8) जहां, किसी अनुरोध को उपधारा (1) के अधीन अस्वीकृत किया गया है, वहां, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी अनुरोध करने वाले व्यक्ति को, –

(i) ऐसी अस्वीकृति के लिए कारण ;

(ii) वह अवधि, जिसके भीतर ऐसी अस्वीकृति के विरुद्ध कोई अपील की जा सकेगी ; और

(iii) अपील प्राधिकारी की विशिष्टियां,

संसूचित करेगा ।

(9) किसी सूचना को साधारणतया उसी प्ररूप में उपलब्ध कराया जाएगा, जिसमें उसे मांगा गया है, जब तक कि वह लोक प्राधिकारी के स्रोतों को अननुपाती रूप से विचलित न करता हो या प्रश्नगत अभिलेख की सुरक्षा या संरक्षण के प्रतिकूल न हो ।

8. **सूचना के प्रकट किए जाने से छूट** – (1) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, व्यक्ति को निम्नलिखित सूचना देने की बाध्यता नहीं होगी –

(क) सूचना, जिसके प्रकटन से भारत की प्रभुता और अखण्डता, राज्य की सुरक्षा, रणनीति, वैज्ञानिक या आर्थिक हित, विदेश से संबंध पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो या किसी अपराध को करने का उद्दीपन होता हो ;

(ख) सूचना, जिसके प्रकाशन को किसी न्यायालय या अधिकरण द्वारा अभिव्यक्त रूप से निषिद्ध किया गया है या जिसके प्रकटन से न्यायालय का अवमान होता है ;

(ग) सूचना, जिसके प्रकटन से संसद् या किसी राज्य के विधान-मंडल के विशेषाधिकार का भंग कारित होगा ;

(घ) सूचना, जिसमें वाणिज्यिक विश्वास, व्यापार गोपनीयता या बौद्धिक संपदा सम्मिलित है, जिसके प्रकटन से किसी पर व्यक्ति की प्रतियोगी स्थिति को नुकसान होता है, जब तक कि सक्षम प्राधिकारी

का यह समाधान नहीं हो जाता है कि ऐसी सूचना के प्रकटन से विस्तृत लोक हित का समर्थन होता है ;

(ङ) किसी व्यक्ति को उसकी वैश्वासिक नातेदारी में उपलब्ध सूचना, जब तक कि सक्षम प्राधिकारी का यह समाधान नहीं हो जाता है कि ऐसी सूचना के प्रकटन से विस्तृत लोक हित का समर्थन होता है ;

(च) किसी विदेशी सरकार से विश्वास में प्राप्त सूचना ;

(छ) सूचना जिसकी प्रकट करना किसी व्यक्ति के जीवन या शारीरिक सुरक्षा को खतरे में डालेगा या जो विधि प्रवर्तन या सुरक्षा प्रयोजनों के लिए विश्वास में दी गई किसी सूचना या सहायता के स्रोत की पहचान करेगा ;

(ज) सूचना, जिससे अपराधियों के अन्वेषण, पकड़े जाने या अभियोजन की प्रक्रिया में अड़चन पड़ेगी ;

(झ) मंत्रिमंडल के कागजपत्र, जिसमें मंत्रिपरिषद्, सचिवों और अन्य अधिकारियों के विचार-विमर्श के अभिलेख सम्मिलित हैं :

परन्तु यह कि मंत्रिपरिषद् के विनिश्चय, उनके कारण तथा वह सामग्री जिसके आधार पर विनिश्चय किए गए थे, विनिश्चय किए जाने और विषय के पूरा या समाप्त होने के पश्चात् जनता को उपलब्ध कराए जाएंगे :

परन्तु यह और कि वे विषय, जो इस धारा में विनिर्दिष्ट छूटों के अंतर्गत आते हैं, प्रकट नहीं किए जाएंगे ;

(ञ) सूचना, जो व्यक्तिगत सूचना से संबंधित है, जिसका प्रकटन किसी लोक क्रियाकलाप या हित से संबंध नहीं रखता है या जिससे व्यष्टि की एकांतता पर अनावश्यक अतिक्रमण होगा, जब तक कि, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी या अपील प्राधिकारी का यह समाधान नहीं हो जाता है कि ऐसी सूचना का प्रकटन विस्तृत लोक हित में न्यायोचित है :

परन्तु ऐसी सूचना के लिए, जिसको, यथास्थिति, संसद् या किसी राज्य विधान-मंडल को देने से इंकार नहीं किया जा सकता है, किसी व्यक्ति को इंकार नहीं किया जा सकेगा ।

(2) शासकीय गुप्त बात अधिनियम, 1923 (1923 का 19) में, उपधारा (1) के अनुसार अनुज्ञेय किसी छूट में किसी बात के होते हुए भी, किसी लोक प्राधिकारी को सूचना तक पहुंच अनुज्ञात की जा सकेगी, यदि सूचना के प्रकटन में लोक हित, संरक्षित हितों के नुकसान से अधिक है ।

(3) उपधारा (1) के खण्ड (क), खंड (ग) और खण्ड (झ) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी ऐसी घटना, वृत्तांत या विषय से संबंधित कोई सूचना, जो उस तारीख से, जिसको धारा 6 के अधीन कोई अनुरोध किया जाता है, बीस वर्ष पूर्व घटित हुई थी या हुआ था, उस धारा के अधीन अनुरोध करने वाले किसी व्यक्ति को उपलब्ध कराई जाएगी :

परन्तु यह कि जहां उस तारीख के बारे में, जिससे बीस वर्ष की उक्त अवधि को संगणित किया जाता है, कोई प्रश्न उद्भूत होता है, वहां इस अधिनियम में उसके लिए उपबंधित प्रायिक अपीलों के अधीन रहते हुए केन्द्रीय सरकार का विनिश्चय अंतिम होगा ।

9. **कतिपय मामलों में पहुंच के लिए अस्वीकृति के आधार** – धारा 8 के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, यथास्थिति, कोई केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या कोई राज्य लोक सूचना अधिकारी सूचना के किसी अनुरोध को वहां अस्वीकार कर सकेगा जहां पहुंच उपलब्ध कराने के लिए ऐसा अनुरोध राज्य से भिन्न किसी व्यक्ति के अस्तित्वयुक्त प्रतिलिप्यधिकार का उल्लंघन अंतर्वलित करेगा ।

10. **पृथक्करणीयता** – (1) जहां सूचना तक पहुंच के अनुरोध को इस आधार पर अस्वीकार किया जाता है वह ऐसी सूचना के संबंध में है जो प्रकट किए जाने से छूट प्राप्त है वहां इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी, पहुंच अभिलेख के उस भाग तक उपलब्ध कराई जा सकेगी जिसमें कोई ऐसी सूचना अंतर्विष्ट नहीं है, जो इस अधिनियम के अधीन प्रकट किए जाने से छूट प्राप्त है और जो किसी ऐसे भाग से, जिसमें छूट प्राप्त सूचना अंतर्विष्ट है, युक्तियुक्त रूप से पृथक् की जा सकती है ।

(2) जहां उपधारा (1) के अधीन अभिलेख के किसी भाग तक पहुंच अनुदत्त की जाती है, वहां, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी निम्नलिखित सूचना देते हुए, आवेदक को एक सूचना देगा कि –

(क) अनुरोध किए गए अभिलेख का केवल एक भाग ही, उस अभिलेख से उस सूचना को, जो प्रकटन से छूट प्राप्त है पृथक् करने के पश्चात् उपलब्ध कराया जा रहा है ;

(ख) विनिश्चय के लिए कारण, जिनके अंतर्गत तथ्य के किसी महत्वपूर्ण प्रश्न पर उस सामग्री के प्रति, जिस पर वे निष्कर्ष आधारित थे, निर्देश करते हुए कोई निष्कर्ष भी हैं ;

(ग) विनिश्चय करने वाले व्यक्ति का नाम और पदनाम ;

(घ) उसके द्वारा संगणित फीस के ब्यौरे और फीस की वह रकम जिसकी आवेदक से निक्षेप करने की अपेक्षा की जाती है ; और

(ङ) सूचना के भाग को प्रकट न किए जाने के संबंध में विनिश्चय के पुनर्विलोकन के बारे में उसके अधिकार, प्रभारित फीस की रकम या उपलब्ध कराया गया पहुंच का प्ररूप, जिसके अंतर्गत यथास्थिति, धारा 19 की उपधारा (1) के अधीन विनिर्दिष्ट वरिष्ठ अधिकारी या केन्द्रीय सूचना अधिकारी या राज्य सूचना अधिकारी की विशिष्टियां, समय-सीमा, प्रक्रिया और कोई अन्य पहुंच का प्ररूप भी है ।

11. **पर व्यक्ति सूचना** – (1) जहां, यथास्थिति, किसी केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी का, इस अधिनियम के अधीन किए गए अनुरोध पर कोई ऐसी सूचना या अभिलेख या उसके किसी भाग को प्रकट करने का आशय है, जो किसी पर व्यक्ति से संबंधित है या उसके द्वारा इसका प्रदाय किया गया है और उस पर व्यक्ति द्वारा उसे गोपनीय माना गया है, वहां यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी अनुरोध प्राप्त होने से पांच दिन के भीतर, ऐसे पर व्यक्ति को अनुरोध की और इस तथ्य की लिखित रूप में सूचना देगा कि, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी का उक्त सूचना या अभिलेख या उसके किसी भाग को प्रकट करने का आशय है, और इस बारे में कि सूचना प्रकट की जानी चाहिए या नहीं, लिखित में या मौखिक रूप से निवेदन करने के लिए पर व्यक्ति को आमंत्रित करेगा तथा सूचना के प्रकटन के बारे में कोई विनिश्चय करते समय पर व्यक्ति के ऐसे निवेदन को ध्यान में रखा जाएगा :

परन्तु विधि द्वारा संरक्षित व्यापार या वाणिज्यिक गुप्त बातों की दशा में के सिवाय, यदि ऐसे प्रकटन में लोकहित, ऐसे पर व्यक्ति के हितों की

किसी संभावित अपहानि या क्षति से अधिक महत्वपूर्ण है तो प्रकटन अनुज्ञात किया जा सकेगा ।

(2) जहां उपधारा (1) के अधीन, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी द्वारा पर व्यक्ति पर किसी सूचना या अभिलेख या उसके किसी भाग के बारे में किसी सूचना की तामील की जाती है, वहां ऐसे पर व्यक्ति को, ऐसी सूचना की प्राप्ति की तारीख से दस दिन के भीतर, प्रस्तावित प्रकटन के विरुद्ध अभ्यावेदन करने का अवसर दिया जाएगा ।

(3) धारा 7 में किसी बात के होते हुए भी, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी धारा 6 के अधीन अनुरोध प्राप्त होने के पश्चात् चालीस दिन के भीतर, यदि पर व्यक्ति को उपधारा (2) के अधीन अभ्यावेदन करने का अवसर दे दिया गया है, तो इस बारे में विनिश्चय करेगा कि उक्त सूचना या अभिलेख या उसके भाग का प्रकटन किया जाए या नहीं और अपने विनिश्चय की सूचना लिखित में पर व्यक्ति को देगा ।

(4) उपधारा (3) के अधीन दी गई सूचना में यह कथन भी सम्मिलित होगा कि वह पर व्यक्ति, जिसे सूचना दी गई है, धारा 19 के अधीन उक्त विनिश्चय के विरुद्ध अपील करने का हकदार है ।

अध्याय 3
केन्द्रीय सूचना आयोग

12. **केन्द्रीय सूचना आयोग का गठन** – (1) केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, केन्द्रीय सूचना आयोग के नाम से ज्ञात एक निकाय का गठन करेगी, जो ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कृत्यों का पालन करेगा, जो उसे इस अधिनियम के अधीन सौंपे जाएं ।

(2) केन्द्रीय सूचना आयोग निम्नलिखित से मिलकर बनेगा –

(क) मुख्य सूचना आयुक्त ; और

(ख) दस से अनधिक उतनी संख्या में केन्द्रीय सूचना आयुक्त, जितने आवश्यक समझे जाएं ।

(3) मुख्य सूचना आयुक्त और सूचना आयुक्तों की नियुक्ति, राष्ट्रपति

द्वारा निम्नलिखित से मिलकर बनी समिति की सिफारिश पर की जाएगी –

(i) प्रधानमंत्री, जो समिति का अध्यक्ष होगा ;

(ii) लोकसभा में विपक्ष का नेता ; और

(iii) प्रधानमंत्री द्वारा नामनिर्दिष्ट संघ मंत्रिमंडल का एक मंत्री ।

स्पष्टीकरण – शंकाओं के निवारण के लिए यह घोषित किया जाता है कि जहां लोक सभा में विपक्ष के नेता को उस रूप में मान्यता नहीं दी गई है, वहां लोक सभा में सरकार के विपक्षी एकल सबसे बड़े समूह के नेता को विपक्ष का नेता समझा जाएगा ।

(4) केन्द्रीय सूचना आयोग के कार्यों का साधारण अधीक्षण, निदेशन और प्रबंधन, मुख्य सूचना आयुक्त में निहित होगा, जिसकी सहायता सूचना आयुक्तों द्वारा की जाएगी और वह ऐसी सभी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे सभी कार्य और बातें कर सकेगा, जिनका केन्द्रीय सूचना आयोग द्वारा स्वतंत्र रूप से इस अधिनियम के अधीन किसी अन्य प्राधिकारी के निदेशों के अधीन रहे बिना प्रयोग किया जा सकता है या जो की जा सकती है ।

(5) मुख्य सूचना आयुक्त और सूचना आयुक्त विधि, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, समाज सेवा, प्रबंध, पत्रकारिता, जनसंपर्क माध्यम या प्रशासन तथा शासन का व्यापक ज्ञान और अनुभव रखने वाले जनजीवन में प्रख्यात व्यक्ति होंगे ।

(6) मुख्य सूचना आयुक्त या कोई सूचना आयुक्त, यथास्थिति, संसद् का सदस्य या किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के विधान-मंडल का सदस्य नहीं होगा या कोई अन्य लाभ का पद धारित नहीं करेगा या किसी राजनैतिक दल से संबद्ध नहीं होगा अथवा कोई कारबार नहीं करेगा या कोई वृत्ति नहीं करेगा ।

(7) केन्द्रीय सूचना आयोग का मुख्यालय, दिल्ली में होगा और केन्द्रीय सूचना आयोग, केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन से, भारत में अन्य स्थानों पर कार्यालय स्थापित कर सकेगा ।

13. **पदावधि और सेवा शर्तें** – (1) सूचना आयुक्त, उस तारीख से, जिसको वह अपना पद ग्रहण करता है पांच वर्ष की अवधि के लिए पद धारण करेगा और पुनर्नियुक्ति के लिए पात्र नहीं होगा :

परन्तु यह कि कोई मुख्य सूचना आयुक्त पैंसठ वर्ष की आयु प्राप्त

करने के पश्चात् उस रूप में पद धारण नहीं करेगा ।

(2) प्रत्येक सूचना आयुक्त, उस तारीख से, जिसको वह अपना पद ग्रहण करता है, पांच वर्ष की अवधि के लिए या पैंसठ वर्ष की आयु प्राप्त करने तक, इनमें से जो भी पूर्वतर हो, पद धारण करेगा और ऐसे सूचना आयुक्त के रूप में पुनर्नियुक्ति के लिए पात्र नहीं होगा :

परन्तु प्रत्येक सूचना आयुक्त, इस उपधारा के अधीन अपना पद रिक्त करने पर, धारा 12 की उपधारा (3) में विनिर्दिष्ट रीति से मुख्य सूचना आयुक्त के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र होगा :

परन्तु यह और कि जहां सूचना आयुक्त को मुख्य सूचना आयुक्त के रूप में नियुक्त किया जाता है वहां उसकी पदावधि सूचना आयुक्त और मुख्य सूचना आयुक्त के रूप में कुल मिलाकर पांच वर्ष से अधिक नहीं होगी ।

(3) मुख्य सूचना आयुक्त या कोई सूचना आयुक्त, अपना पद ग्रहण करने से पूर्व राष्ट्रपति या उनके द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी अन्य व्यक्ति के समक्ष, पहली अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए उपवर्णित प्ररूप के अनुसार एक शपथ या प्रतिज्ञान लेगा और उस पर हस्ताक्षर करेगा ।

(4) मुख्य सूचना आयुक्त या कोई सूचना आयुक्त, किसी भी समय, राष्ट्रपति को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा अपना पद त्याग सकेगा :

परन्तु मुख्य सूचना आयुक्त या किसी सूचना आयुक्तों को धारा 14 में विनिर्दिष्ट रीति से हटाया जा सकेगा ।

(5) संदेय वेतन और भत्ते तथा सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें –

(क) मुख्य सूचना आयुक्त की वही होंगी, जो मुख्य निर्वाचन आयुक्त की हैं ;

(ख) सूचना आयुक्त की वही होंगी, जो निर्वाचन आयुक्त की हैं :

परन्तु यदि मुख्य सूचना आयुक्त या कोई सूचना आयुक्त, अपनी नियुक्ति के समय, भारत सरकार के अधीन या किसी राज्य सरकार के अधीन किसी पूर्व सेवा के संबंध में कोई पेंशन, अक्षमता या क्षति पेंशन से भिन्न प्राप्त कर रहा है तो मुख्य सूचना आयुक्त या सूचना आयुक्त के रूप में सेवा के संबंध में उसके वेतन में से, उस पेंशन की, जिसके अन्तर्गत पेंशन का ऐसा कोई भाग, संराशिकृत किया गया था और सेवानिवृत्ति

उपदान के समतुल्य पेंशन को छोड़ कर, सेवानिवृत्ति फायदों के अन्य रूपों के समतुल्य पेंशन भी है, रकम को कम कर दिया जाएगा :

परन्तु यह और कि यदि मुख्य सूचना आयुक्त या कोई सूचना आयुक्त, अपनी नियुक्ति के समय, किसी केन्द्रीय अधिनियम या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित किसी नियम में या केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन किसी सरकारी कंपनी में की गई किसी पूर्व सेवा के संबंध में सेवानिवृत्ति फायदे प्राप्त कर रहा है, तो मुख्य सूचना आयुक्त या सूचना आयुक्त के रूप में सेवा के संबंध में उसके वेतन में से, सेवानिवृत्ति फायदों के समतुल्य पेंशन की रकम कम कर दी जाएगी :

परन्तु यह भी कि मुख्य सूचना आयुक्त या सूचना आयुक्त के वेतन, भत्तों और सेवा की अन्य शर्तों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके अलाभकर रूप में कोई परिवर्तन नहीं किया जाएगा ।

(6) केन्दीय सरकार, मुख्य सूचना आयुक्त या सूचना आयुक्तों को उतने अधिकारी और कर्मचारी उपलब्ध कराएगी, जितने इस अधिनियम के अधीन उनके कृत्यों के दक्ष पालन के लिए आवश्यक हों और इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए नियुक्त किए गए अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते तथा सेवा के निबंधन और शर्तें ऐसी होंगी, जो विहित की जाएं ।

14. **सूचना आयुक्त या मुख्य सूचना आयुक्त का हटाया जाना** – (1) उपधारा (3) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, मुख्य सूचना आयुक्त या किसी सूचना आयुक्त को राष्ट्रपति के आदेश द्वारा साबित कदाचार या असमर्थता के आधार पर उसके पद से तभी हटाया जाएगा, जब उच्चतम न्यायालय ने, राष्ट्रपति द्वारा उसे किये गये किसी निर्देश पर जाँच के पश्चात् यह रिपोर्ट दी हो कि, यथास्थिति, मुख्य सूचना आयुक्त या सूचना आयुक्त को उस आधार पर हटा दिया जाना चाहिए ।

(2) राष्ट्रपति, उस मुख्य सूचना आयुक्त या सूचना आयुक्त को, जिसके विरुद्ध उपधारा (1) के अधीन उच्चतम न्यायालय को निर्देश किया गया है, ऐसे निर्देश पर उच्चतम न्यायालय की रिपोर्ट प्राप्त होने पर राष्ट्रपति द्वारा आदेश पारित किए जाने तक पद से निलंबित कर सकेगा और यदि आवश्यक समझे तो, जांच के दौरान कार्यालय में उपस्थित होने से भी प्रतिषिद्ध कर सकेगा ।

(3) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी राष्ट्रपति, मुख्य सूचना आयुक्त या किसी सूचना आयुक्त को आदेश द्वारा पद से हटा सकेगा, यदि, यथास्थिति, मुख्य सूचना आयुक्त या सूचना आयुक्त, –

(क) दिवालिया न्यायनिर्णीत किया गया है ; या

(ख) वह ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्ध ठहराया गया है, जिसमें राष्ट्रपति की राय में, नैतिक अधमता अन्तर्वलित है ; या

(ग) अपनी पदावधि के दौरान, अपने पद के कर्तव्यों से परे किसी वैतनिक नियोजन में लगा हुआ है ; या

(घ) राष्ट्रपति की राय में, मानसिक या शारीरिक अक्षमता के कारण पद पर बने रहने के अयोग्य है ; या

(ङ) उसने ऐसे वित्तीय और अन्य हित अर्जित किए हैं, जिनसे मुख्य सूचना आयुक्त या किसी सूचना आयुक्त के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है ।

(4) यदि मुख्य सूचना आयुक्त या कोई सूचना आयुक्त, किसी प्रकार भारत सरकार द्वारा या उसकी ओर से की गई किसी संविदा या करार से संबद्ध या उसमें हितबद्ध है या किसी निगमित कंपनी के किसी सदस्य के रूप में से अन्यथा और उसके अन्य सदस्यों के साथ सामान्यतः उसके लाभ में या उससे प्रोद्भूत होने वाले किसी फायदे या परिलब्धियों में हिस्सा लेता है तो वह, उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए, कदाचार का दोषी समझा जाएगा ।

क्रमशः आगामी अंक में